नया युग : नया मानव

[सामाजिक उपन्यास]

लेखक

मोहनलाल महतो 'वियोगी'

प्रकाशक

राष्ट्रीय प्रकाशन मंडल

मछुआ टोली, पटना–४

नई दुनिया, नया मानव

दुनिया की सभी खिड़कियाँ बहुत युगों से बंद थीं ।

एक-से-एक पराक्रमी संसार में पधारे और चले गए, किंतु किसी में इतना साहस न था कि उन खिड़कियों को खोलता । वे आए और घर के भीतर ही रहकर काम करते रहे ।

उन बंद खिड़कियों के उस पार क्या है, यह जानने की कोशिश तो विचारवानों ने की, जाना भी, किंतु खिड़कियों को हाथ नहीं लगाया, उन्होंने ऊमस का भी अनुभव नहीं किया, और प्रकाश की कमी की ही शिकायत की । शायद उनके फेफड़े बहुत मजबूत थे, और आँखों की रोशनी तेज़ थी । वे आराम से साँस ले सकते थे, और देखने का काम भी अच्छी तरह चल जाता था । खिड़कियाँ बंद थीं, बंद ही रहीं ।

अनगिनत आँधियाँ उठीं, तूफान आए, किंतु खिड़कियों के किवाड़ खड़खड़ाए भी नहीं—वे मज़बूती से बंद थे ।

जो इस घर में आते, वे अपने काम में ही लगे रहते । करने के लिए कामों की कमी कभी संसार में नहीं रही है । यदि कोई उनसे कहता भी कि इन खिड़कियों को खोलकर ताज़ी बयार अंदर आने दो, नई रोशनी को अंदर झाँकने दो, तो उसको कोई उत्साह-वर्धक उत्तर किसी ओर से भी नहीं मिलता, और सम्मति देनेवाले की बात लौटकर उसी के कान में गूंजती रह जाती ।

बहुत दिनों बाद नई दुनिया पुरानी दुनिया के दरवाज़े पर आई । वह अपने साथ नई रोशनी और नई हवा लेकर आई थी, उसके कंठ में नया स्वर और दिल में नए तरह का जोश था । उसने आकर पुरानी दुनिया को हुक्म दिया कि तुम अपना बिस्तर गोल करो ।

पुरानी दुनिया अपने पुराने संस्कारों और विचारों की कथरी पर लेटी हुई थी—वह जीर्ण थी, शीर्ण थी, पर निर्बल नहीं थी।

वह उठी, और विधि के विधान के सामने सिर झुकाया। वह जानती थी, अब उसके लिए यहाँ स्थान नहीं है, इतिहास के पृष्ठ भी उसे शरण देने में असमर्थ हैं।

उसने अपना किसी तरह का दावा पेश नहीं किया, और न बहाना ही बनाया। वह उठी, सदा के लिए उठी और बोली—"मैं तो चली, किंतु तू भी ज़रा सँभलकर रहना। मानव बड़ा विस्मृतिशील प्राणी होता है। वह अपनी नाक के आगे कुछ भी देखना पसंद नहीं करता।"

नई दुनिया बोली—"मैं किसी की परवा नहीं करती। मेरे साथ विज्ञान है, तर्क है, कानून है, सुधारक हैं, और धन है।"

पुरानी दुनिया ने चुप लगा जाने में ही अपना हित समझा। वह चली गई। कहाँ चली गई, इसका पता किसी को नहीं चला, और न किसी ने यह जानने ही का प्रयत्न किया कि वह किधर गई।

नई दुनिया आई, उसका स्वागत हुआ—पुरानी दुनिया के आँगन में। कवियों ने प्रगतिशील कविताएँ लिखीं, और कलाकारों ने अपनी प्रगतिशील कूची से कलाकार का शृंगार किया। गायकों ने प्रगतिशील स्वर में गान किया। उत्सव का तूल-तूफान कुछ दिन हाहाकार करता रहा, फिर समाप्त हो गया। अब असली काम की बात सामने आई। नई दुनिया का नएपन का परिचय देना था—यदि वह ऐसा न करती, तो जनता का विश्वास खो देती।

उसने झाड़ू सँभाली और कहा—"चलो, पुराने कूड़े-कचरे हम साफ़ करें। गंदी आदतोंवाली पुरानी दुनिया ने जो गंदगी लगा रक्खी थी, उसे तो हटाना ही उचित है।"

झाड़ू का नग्न नृत्य शुरू हुआ। वह झाड़ू न केवल धरती पर ही चली, बल्कि लोगों के दिलों और दिमागों का भी कूड़ा उसने साफ

करना शुरू कर दिया। नई दुनिया के पुजारियों ने कंटकित गात से घोषणा की—"साधु, साधु! यह तो चमत्कार है, चमत्कार!"

नई दुनिया चमत्कार दिखलाने तो आई ही थी, उसने चमत्कार दिखलाना शुरू कर दिया। कुछ लोगों ने उन पुरानी बंद खिड़कियों पर धावा बोल दिया। धक्के मारे गए और अंत में, उत्साह की अधिकता के कारण, कुल्हाड़े का प्रयोग किया जाने लगा। देखते-देखते खिड़कियों के किवाड़ टुकड़े-टुकड़े होकर घर में बिखर गए।

खिड़कियाँ खुल गईं।

नई हवा आई, नूतन प्रकाश आया। नई दुनिया के मानवों ने उस नई हवा में जी भरकर साँस लेने के साथ-ही-साथ अपना पसीना भी सुखाया। नई रोशनी में अपने आपको देखा, अपने घर को देखा, एक दूसरे को देखा। वे प्रसन्न हुए, और गर्व से छाती फुलाकर कहा—"हम किसी से पीछे नहीं रह सकते।"

नई रोशनी के प्रकाश में नए मानव ने कमर बाँधकर पुरानी दुनिया के एक-एक स्मृति-चिन्ह को समाप्त करने का परम प्रगतिशील काम हाथ में लिया। आवाज़ लगाई गई—"नए खून की ज़रूरत है। यह काम पुराने मरियल लोग नहीं कर सकते।"

नया खून उमड़ पड़ा। स्कूलों, विद्यालयों, सिनेमाघरों, पार्कों और सड़कों पर जहाँ भी नए खून का अस्तित्व था, तमाम युग की पुकार पहुँची। यह आह्वान असर रखता था, बेकार कैसे जाता। नया खून उमड़ता हुआ, उफनता हुआ, उबलता हुआ आ गया।

इसके बाद से ही असली सुधार का श्रीगणेश हुआ।

आँखें बंद करके सबने झाड़ू सँभाली। सुधार का कार्य आसान तो नहीं होता, और न वह एक-दो आदमियों का ही है। सबके लिए सबको मिल-जुलकर हल्ला बोल देना ही सच्चा सुधार है, जिसके लिए सच्ची लगन चाहिए, सच्चा जोश चाहिए।

इन गुणों की कमी नए खून में तो थी नहीं। सुधार का काम चलने लगा। आँखें बंद करके झाड़ू चलानेवालों ने एक साँस में ही सब कुछ झाड़-बुहारकर साफ़ कर दिया—न तो पुरानी परंपराएँ बचीं, और न पुरानी मानवता की ही रक्षा हुई। सबके लिए समान व्यवहार किया गया, जो नई दुनिया का आदेश था।

यहीं से मेरे इस उपन्यास का श्रीगणेश होता है। भवानी बाबू, जॉर्ज साहब और चम्पा ने जिस शानदार सुधार का झंडा फहराया था, वह तो फहराता ही रहेगा, तथा इन युग-पुरुषों और नारियों ने जिन परंपराओं की स्थापना की थी, वे नई दुनिया में नई जान डालनेवाली ही सिद्ध होंगी। पुरानी दुनिया के लिए रोनेवालों की लाश पड़ी-पड़ी सड़ जायगी, और कोई उठानेवाला भी नज़र नहीं आएगा—जल-तर्पण की मूर्खता कौन करेगा।

इस उपन्यास का लेखक यह कभी नहीं चाहता कि वह जान-बूझकर पुराने चीथड़ों में लिपटा रहे, जिनमें चीलर और गंध भरी हो। प्रगतिशीलता की ओर से आँखें बंद कर लेने का मतलब होगा आत्मघात। आत्मघात-जैसा घोर पाप किसी को आकर्षित नहीं कर सकता, बशर्ते उसका दिमाग सही हालत में काम कर रहा हो।

हाँ, तो लेखक भी चाहता है कि वह प्रगतिशीलता का स्वागत करे। वह एक तस्वीर अपने उपन्यास में देता है ज्ञानदेव की, दूसरी तस्वीर देता है शास्त्रीजी की। एक स्त्री की तस्वीर भी है, और वह है पद्मा की।

ज्ञानदेव, शास्त्रीजी और पद्मा, इन तीनों को लेखक प्रगतिशील मानता है, और दूसरी ओर नई दुनिया के मसीहा भवानी बाबू, चम्पा, जॉर्ज साहब आदि। नई दुनिया निश्चय ही भवानी बाबू को प्यार करेगी, और चम्पा को सराहेगी।

भवानी बाबू और चम्पा बनने के लिए नई दुनिया के बहुत-से नए मानव ललच भी सकते हैं, किंतु ज्ञानदेव तो अंत तक अकेला ही रहेगा,

पद्मा का साथ भी दुनिया नहीं दे सकती, शास्त्रीजी भी अछूत ही बने रहेंगे। यह कुछ ऐसी विचित्र बात है, जिस पर अधिक प्रकाश न डालना ही सुरुचिकर होगा।

यह ज़ाहिर है कि पुरानी दुनिया बराबर अपने भीतर के साधनों का विकास करने पर ज़ोर देती थी। वह चाहती थी, मानव बाहर के साधनों की गुलामी स्वीकार न करे, तो अच्छा।

नई दुनिया के भीतर कुछ है ही नहीं, जैसे हवा से फूले हुए बच्चों के बेलून के भीतर कुछ भी नहीं रहता। वह भीतर की बात सोच ही नहीं सकती, और अगर सोचे भी, तो उसके लिए मूर्खता और ततोधिक अप्रगतिशीलता होगी। ईंट, पत्थर, कोयला तेल, सोरा-गंधक, चाँदी, सोना आदि जीवन-हीन द्रव्यों के बल पर संसार को स्वर्ग बनाने की ज़ोरदार कल्पना करनेवाली नई दुनिया के इस अहंकार को चुनौती नहीं दी जा सकती। उसके हाथ में अणुबम हैं, ऑक्सीजन बम है, मशीनें हैं, हवाई जहाज़ हैं, और न-जाने क्या-क्या है। उसे समझना खतरे से खाली नहीं है। नई दुनिया पावर और पेट से अधिक दूर जाने को भी तैयार नहीं है। भवानी बाबू ही उसके आदर्श पुरुषोत्तम हैं। चंपा नई दुनिया की आदरणीया देवी है, और बहुत-से लोग भी हैं, जो इन्हें घेरे रहते हैं। सभाएँ होती हैं, जनता को उच्च स्तर की बातें बताई जाती हैं, नए युग के प्राणप्रद संदेश भवानी बाबू देते हैं, जो इस काम के लिए ही धरती पर आए हैं। इधर नई नारी-जाति में अपने आदर्श की स्थापना चंपा उत्साह से करती है—नए युग की विजय-यात्रा कहीं भी भंग नहीं होती। किसी में इतना दम नहीं कि वह अश्वमेध के घोड़े को रोककर युद्ध मोल ले। सभी को अपनी जान प्यारी होती है।

मानव ने विरासत में केवल उन्हीं दोषों को नहीं पाया था, जिन्हें नई और सभ्य दुनिया मानवीय दुर्बलताएँ कहती है। उसने अपनी जंगली अवस्था के बहुत-से गुण भी पाये थे, जिनकी गणना नहीं की जा सकती। ये गुण तो सहजात माने गए हैं, और क्षमा-दया आदि दोष संस्कारगत हैं।

नई दुनिया मानव को उसका असली रूप प्रदान करने में ही अपनी सार्थकता का अनुभव को उसका असली रूप प्रदान करने में ही अपनी सार्थकता का अनुभव करती है, जो वाजिब भी है, और युग-धर्म के लिए हितकर भी।

असली रूप में मानव फिर वहीं लौटकर पहुँच जाता है, जहाँ से उसने यात्रा की थी, और लाखों साल तक इधर-उधर भटकता रहा। दुनिया गोल है—इस सूत्र के अनुसार नई दुनिया मानव के आदि युग को फिर लौटाकर लाने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है। आँधी आने के कुछ पहले ही से उसका हाहाकार सुनाई पड़ने लग जाता है। आज जो कुछ हम देख रहे हैं, वह आदि युग के तूफ़ानी आगमन का हाहाकार ही तो है। अभी वह आया नहीं है, किंतु आने ही वाला है।

इस उपन्यास में वही हाहाकार संचित हैं। नई दुनिया स्वागत के लिए नए खून की माँग कर रही है। नया खून ही आदि युग का स्वागत करेगा, और यह उचित भी है, साथ ही नीतिसम्मत भी।

नीरज, करोड़पति इस उपन्यास के नए खून हैं। ज्ञानदेव भी नया खून है, किंतु वह अप्रगतिशीलता का गंदा कीड़ा है, जो धर्म, सदाचार आदि की गुलामी में ही सुख मानता है, किंतु नीरज-जैसे नए खून पूर्णतः मुक्त हैं, और इनकी धमनियों में नया खून है, वाणी में नए युग की पुकार है, व्यवहार में नए युग की जीती-जागती तस्वीर है। ये हीरो हैं इस नए युग के, जिनके ऊपर नए युग का दारोमदार है। ज्ञानदेव-जैसे नवयुवक तो मरने ही के लिए जन्म लेते हैं—नवयुग

के निर्माण में और नए समाज को विकसित करने में इनसे ज़रा भी सहायता या सहयोग नहीं मिल सकता ।

शास्त्रीजी, जो एक श्रेष्ठ विद्वान् हैं, इस धरती के भार-मात्र हैं । हाँ, जॉर्ज साहब में दम है; क्योंकि वह विलायती चश्मा पहनते हैं, जो वाजिब है ।. जब तक हम अपने इतिहास, अपने पूर्वज, अपनी तहज़ीब और अंत में अपने आपसे भी घृणा नहीं करने लगेंगे, तब तक क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं ला सकते, और न देश या समाज को ही पुरानेपन की गंदगी से उबार सकेंगे ।

इन्हीं सारी बातों को अपने सामने रखकर लेखक ने इस उपन्यास में जो कुछ लिखा है, वह शुद्ध हृदय से ही, नई दुनिया को मदद पहुँचाने की नीयत से ।

आप भवानी बाबू को ही लीजिए । उनका चरित्र इतना ऊँचा है कि लेखक का माथा भी आदर से झुक जाता है । भवानी बाबू नए युग के नए मानव हैं, इसमें शक की गुंजाइश ही कहाँ है । वह धन-साधन-हीन अवस्था में घर से बाहर निकलते हैं, और अपने पुरुषार्थ के ज़ोर से सबको अपना सेवक बना लेते हैं—राज्य के शक्तिशाली, उच्च पदस्थ अति मानवों से लेकर नोट बनानेवाले, डाके डालनेवाले, खूनी, ब्लैकमार्केट के देश-सेवक, जिनकी दामी मोटरें बिना रुके आज सभी बँगलों, कोठियों, महलों और प्रासादों में घुस जाती हैं, ठग और गद्दार तक भवानी बाबू से अभयदान पाकर नए युग की सेवा में निश्चित होकर लगे रहते हैं । वह स्वयं भी किसी से पीछे नहीं हैं । अपनी बहन चंपा और पत्नी कुमारी तक को उन्होंने नए युग के स्वागतार्थ तैयार कर दिया । यह बहुत बड़ा त्याग था, जो मुल्क की जड़ता और मूर्खता मिटाने के लिए भवानी बाबू ने किया । कर्म-वीरता का उन्होंने जो दिव्य आदर्श उपस्थित किया है, उसका अनुकरण आज का संस्कारहीन समाज भले ही न करे, किंतु जब नई दुनिया यहाँ पैर जमा लेगी, तब एक आदर्श पुरुष के रूप में भवानी बाबू

को आँखों में आँसू भरकर याद करेगी। लेखक को इस बात का दुःख अवश्य है कि इस क्षणभंगुर दुनिया में भवानी बाबू कितने दिन रह सकेंगे। जब तक उनके साहब शक्ति-संपन्न हैं, तब तक एक हजार अणुबम भी भवानी बाबू का बाल बाँका नहीं कर सकते—यही संतोष है।

भवानी बाबू एक ऐसी विचार-धारा के प्रतीक हैं, जो नई दुनिया की सबसे क़ीमती देन है, और आगे की सभी तरह की विचार-धाराओं से ऊपर उठकर जनता और सरकार दोनों पर असर डालती है।

इस उपन्यास में एक ही भवानी बाबू हैं, किंतु धरती पर इनकी संख्या बहुत है। भवानी बाबू कुछ भी न रहते हुए सब कुछ हैं, यही तो जीवन की सबसे बड़ी सफलता है। कुछ बन जाने पर बंधन हो जाता है। कर्तव्य का भार भी बढ़ जाता है, और कुछ भी सोचते या बोलते समय यह बात बराबर दिमाग के सामने रहती है कि हम जिस पद पर हैं, उस पर आँच न आने पावे। यह तो बहुत बड़ी पराधीनता है, जो समझदार लोगों को पनपने नहीं देती। भवानी बाबू कुछ भी नहीं हैं, न किसी सरकारी पद पर हैं, और न कहीं नौकर। वह पूर्ण स्वतंत्र हैं, तथा जन-हित के साथ-साथ उस राज्य का भी रात-दिन कल्याण करते रहते हैं, जिसके आप गौरव हैं।

युग-धर्म का भरपूर विकास भवानी बाबू में हुआ है, इसमें संदेह नहीं। चार्वाक के सिद्धांत को ही नई दुनिया मानती है। यह युग चार्वाक का है। या यों कहिए कि इस युग का हमारा दार्शनिक महर्षि चार्वाक हैं। भवानी बाबू इसी महान् दार्शनिक के मूल्यवान् विचारों को अमली जामा पहना रहे हैं, जो जन-सेवा का एक श्रेष्ठ प्रकार है।

जनता और सरकार के बीच में स्वभावतः एक खाई होती है। स्वतंत्र देश में सरकार का संगठन जन-शक्ति पर ही होता है, पर धीरे-धीरे जनता और सरकार एक दूसरे से हटने लगती हैं। —

स्थिति में कुछ सधे हुए जन-नेता बाहर रहकर पुल का काम करते हैं । इसी पुल के द्वारा जनता और सरकार में एकत्व स्थापित होता है ।

यह पुल कोई साधारण पुल न होकर राष्ट्र-निर्माण का सहायक पुल होता है । जनता और सरकार, दोनों का गहरा विश्वास इस पुल को प्राप्त होता है । उच्च आचार और विचार के नेता ही जनता और सरकार को एक सूत्र में बाँध रखने में समर्थ हो सकते हैं । गल्ती होने पर कुचल जाने का भारी खतरा है, जैसे दो एंजिनों के बीच में कोई खड़ा हो । बीते हुए युग में हमारी मानसिक स्थिति बहुत ही गिरी हुई थी । श्रेष्ठ व्यक्ति यहाँ नहीं थे । जो थे भी, वे पुराने कुसंस्कारों और विचारों के अंतिम चिन्ह के रूप में थे ।

नई हवा आई, नई दुनिया आई, और वह अपने साथ योग्यतम व्यक्तियों को भी लिये आई, जैसे भवानी बाबू, चंपा और जॉर्ज साहब ।

भवानी बाबू ने मध्यस्थता का काम सँभाला, सँभाला क्या, यह युग ही इनका है । जनता और सरकार, दोनों के अशेष विश्वासभाजन भवानी बाबू ने अपने परम श्रेष्ठ कर्तव्य का पालन उचित रीति से करना शुरू किया । वह जानते थे, नई दुनिया क्या पसंद करती है और क्या नहीं । युग की पुकार को सुनने और हृदयंगम करने की ताकत भवानी बाबू में थी——वह अपने युग के युगात्मा कहे जा सकते हैं ।

नई दुनिया का नारी-समाज चंपा के दर्पण में अपना रूप देखकर गर्व का अनुभव चाहे न भी करे, किंतु आदर से उसका मस्तक ज़रूर नत हो जायगा ।

पुरुषों को यदि अपनी शक्ति को काम में लाने का नैसर्गिक अधिकार है, तो नई दुनियाकी नारियाँ चंपा या लीला ने जो सामाजिक क्रांति का शंख फूंका था, उसकी कदर क्यों न करें ।

शास्त्रीजी को वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करना पड़ा, जैसे उनकी कोई जरूरत ही नहीं रह गई। यह लेखक की उदारता है, जो ब्रह्महत्या के भय से उसने शास्त्रीजी जैसे फालतू आदमी को वानप्रस्थाश्रम में भेजकर ही छोड़ दिया। नई दुनिया की ओर देखते हुए शास्त्रीजी को सड़कों पर घसिटवाना या कपड़ों पर पेट्रोल छिड़ककर जीते-जी जला डालना ही उपयुक्त जँचता है।

जो अपनी उपयोगिता गँवा चुका हो, उसे धरती का कीमती अन्न क्यों नष्ट करने दिया जाय। ऐसे फालतू व्यक्तियों से जो अन्न बचेगा, वह हमारे जॉर्ज साहब के हाउंड-कुत्ते खायँगे।

यह संसार न तो अनाथालय है और न विधवाश्रम, फिर कोई वजह नहीं कि अप्रगतिशीलता के पोषक व्यक्ति हमारा कौर छीन-छीनकर अपना स्वास्थ्य सुधारा करें—नई दुनिया इस कुकर्म के खिलाफ़ तलवार उठाने का आदेश देती है।

शास्त्रीजी रात-दिन सत्य, अहिंसा, यम, नियम, संयम आदि मूर्खतापूर्ण बातों को लेकर सिर खपाया करते थे। वह यह समझते ही न थे कि अब पुराना आकाश नहीं रहा, पुरानी धरती नहीं रही, पुरानी दुनिया मर गई, जिसकी लाश कॉरपोरेशन के मेहतर घसीटकर किसी खंदक में डाल आए, उस दुनिया के नामलेवा और पानीदेवा भी अब वहीं जायँ, जहाँ उनकी प्यारी दुनिया गई है—वहाँ, उस तरफ, शहर के बाहर।

× × ×

यह एक उपन्यास है।

एक मन रुई में भी उतना ही वजन रहता है, जितना एक मन लोहा, पारा या प्लैटिनम् में। लोहा, पारा या प्लैटिनम् की ज़ात दूसरी है, किंतु वजन ज़ात के हिसाब का कायल नहीं है। एक मन

रुई हो या एक मन लोहा-तराज़ू के पलरे यह घोषणा कर देंगे कि दोनों बराबर हैं ।

उपन्यास रुई की तरह होता है, और सत्य है, ठोस लोहे-जैसा । जहाँ तक छूने का सवाल है, लोहा रुई से कठोर है, किंतु जब सिर पर उठाने का प्रसंग आता है, तो एक मन लोहा उठानेवाला जिस भार का अनुभव करेगा, एक मन रुई उठानेवाला भी उतना ही हाँफेगा, थकेगा, पसीना बहाएगा । यद्यपि यह उपन्यास है, किंतु सत्य-जितना वज़न होने के कारण इसे हम नगण्य अगर मानें तो क्यों ? हाँ, यह रुई होने के कारण कोमल है, और किसी का सिर इससे नहीं फूट सकता, न पैर या हाथ ही कुचलकर बेकार हो सकते हैं । लोहे से यह खतरा है, यह आप याद रखिए । जब प्रकाश की ज़ोरदार किरणें अंधकार में प्रवेश करती हैं, तो अंधकार का अस्तित्व लोप हो जाता है, किंतु जब सत्य का शाश्वत प्रकाश किसी उपन्यास की काया में प्रवेश करता है, तब उसे मार नहीं डालता, बल्कि कोरी कल्पना के आकाश से उतारकर ठोस धरती पर खड़ा कर देता है । यह तो सिद्धांत की बात हुई, किंतु जो उपन्यास आपके सामने है, उस पर निर्णय आपको देना है ।

लेखक के दिमाग़ में कुछ तस्वीरें पैदा हुईं । उसने चाहा कि उन्हें शब्दों के संकीर्ण बंधन में बाँधे । यह काम कुछ अनोखा-सा ज़रूर था । किसी ताकतवर चीज़ को कैद करते समय हाथा-पाई का होना ज़रूरी है, सिर-फुड़ौअल भी हो सकता है, और इससे कुछ ज्यादा भी । लेखक ने भी जब अपनी आज़ाद कल्पना को शब्दों के सँकरे शिकंजे में बाँधना चाहा, तो उठा-पटक सबका सामना उसे करना पड़ा । इस दौड़-भाग और ले-दे में कुछ तो लेखक विफल हुआ और कुछ सफल । जिन तस्वीरों को वह खदेड़कर पकड़ सका, उन्हें तो कैद कर सका, और जो भाग गईं, उनके लिए वह दम ले रहा है । बिखरी हुई शक्तियों को समेटकर वह फिर ताल ठोंकेगा,

और कच्ची-कुच्ची तस्वीरों को भी बटोरकर आपके सामने रखने का प्रयत्न करूंगा ।

दुनिया प्रतीक्षा के बल पर कायम है, आप भी यदि चाहें, तो प्रतीक्षा कर सकते हैं, अन्यथा जय हिंद ।

•

पटना
गणतंत्र-दिवस
२६ जनवरी, १९५७

—लेखक

श्री गणेश

"अरी, अरी, इस तरह नहीं। गरदन झुकाकर और मुस्कुरा-कर तिरछी चितवन से—हाँ, इसी तरह! अब ज़रा कमर लचकाकर और सीना तानकर इस तरह चल, मानो तुझे किसी की परवा नहीं है। ठहर—तू गधी है। झुक क्यों गई—ऐं? सीना तना होना चाहिए। शाबाश! इसी तरह। जब कोई रसीला जवान सामने आ जाय, तो देखते ही मुस्कुराना चाहिए। वह यदि हाथ जोड़कर बेहूदे की तरह नमस्कार करे भी, तो तू हाथ बढ़ा देना। जब हाथ से हाथ मिल जाय, तो फिर मुस्कुराकर ज़रा-सा हाथ दबा देना। बढ़ा तो हाथ, मैं बतला देती हूँ।"

नगर के विख्यात धनी और अपने काले शरीर में भी पक्के अँगरेज़ जॉर्ज प्रसादसिंह की सुंदर कोठी के एक कमरे में उनकी विगलित-यौवना पत्नी रानीदेबी अपनी नवयुवती और हलचल पैदा कर देने की ताकत रखनेवाली परम सुंदरी कन्या लीला को सभ्य-समाज में जाने और मिलने-जुलने का नियम बतला रही थीं।

लीला कॉलेज में पढ़ती थी, किंतु उसकी प्रखर प्रतिभा से तंग आकर वहाँ की बुढ़िया-खूसट प्राचार्या ने एक दिन हाथ जोड़कर उसे बिदा कर दिया। कालेज के कल्याण के लिए उस बेचारी को निर्णय करना पड़ा। अब लीला अपनी यशस्विनी माता से ही सभ्यता का पाठ पढ़ा करती है। माता से बढ़कर अपनी संतान के लिए दूसरी कौन अध्यापिका हो सकती है—ऐसा शास्त्रों का भी वचन है।

एक भ्रम हो सकता है—जॉर्ज प्रसादसिंह के नाम पर। 'जॉर्ज' शब्द उनके नाम के आगे कैसे आ गया? वह ईसाई नहीं थे। जॉर्ज नाम भारत-समाट् का था। यह नाम गौरवपूर्ण तो था ही,

शुभ भी था। मि० सिंह के मूर्ख बाप ने उनका नाम गणेश प्रसाद सिंह रखा था। किसी युग में गणेश नाम शुभ भले ही रहा हो, किंतु इस युग में इसका प्रताप नहीं रहा। लंदन से लौटकर गणेश प्रसाद सिंह ने अपने नाम का साहसपूर्ण संशोधन किया, और गणेश शब्द को निकालकर जॉर्ज शब्द को प्रतिष्ठित कर दिया। उनके मित्रों ने सराहा, किंतु किसी ने अनुकरण नहीं किया।

श्रीमती रानी उन्हीं की पत्नी थीं, और अँगरेज़ी न जानने पर भी बाल कटाकर और लहँगा पहनकर ही रहती थीं। वह विलायत नहीं गई थीं, मगर नौकरों को डाँटते समय विकृत स्वर में कहा करती थीं—"टुम गाधा है। विलायत में ऐसा नहीं होटा। टुमको गंडा हिंदुस्टानी आडट चोडकर हमारे यहाँ काम कडना होगा।"

मालकिन की गर्जना का जवाब नौकर मुस्कुराकर और जब आपस में मिलते थे, तो मालकिन की भाषा बोलकर देते थे।

शहर के सभ्यों में जॉर्ज साहब का परिवार विख्यात था। कोई भी उत्सव-जलसा पूर्ण नहीं माना जाता था, यदि श्रीमती रानी और कुमारी लीला का पदार्पण न हो। जॉर्ज साहब तबला बजाने में विशेष उत्साही थे। जब लीला गेंद की तरह फुदकती हुई किसी नृत्योत्सव में नाचती थी, तो जॉर्ज साहब जरूर तबला लेकर बैठ जाते थे। तबले की ताल-ताल पर अपनी कुमारी को थिरकाकर दर्शकों के हृदय पर चोट पहुँचाने में वह गौरव का अनुभव करते थे। वह कहा करते थे—"विलायत में ऐसा ही होता है।"

एक रात को किसी नृत्य और पान समारोह से जॉर्ज साहब अपनी कन्या के साथ उदास मन से लौटे। लौटते ही उन्होंने अपनी रानी से कहा—"आज मैं बहुत लज्जित हुआ। अभागी लीला ने बहुत बुरा किया।"

रानी भी नशे में डूब-उतरा रही थीं। वह बोलीं—"साफ साफ बोलो। मैं तो सरदार शमशेरसिंह के साथ शिकार पर गई थी।"

जॉर्ज साहब पैर पटककर बोले—"तुमने मेरे मुँह में कालिख पोत दी। यदि लड़की को सभ्यता के तरीके सिखला देतीं, तो ऐसी भद्द न होती।"

रानी ने ललाट पर आँखें चढ़ाकर कहा—"भद्द हो गई, माई गॉड! ज़रा बतलाना तो डियर?"

जॉर्ज कहने लगे—"लीला नाचने लगी, तो सीना उभारने के वदले में सिकुड़ गई।"

जब बंबई के करोड़पति सेठ अहमद भाई ने हाथ मिलाना चाहा, तब इसने बेहूदे हिंदुस्तानियों की तरह दूर से ही हाथ जोड़ दिया। जब मिस्टर चोपड़ा ने 'जाम' आगे बढ़ाया, तो पीने से मुकर गई, और विख्यात ठेकेदार तलवारसिंह के पास न बैठकर मेरे पास आकर बंदरी की तरह बैठ गई। बतलाओ तो रानी, यह सभ्यता है? उन सभ्यों ने मन में क्या सोचा होगा? सभी मुझे जंगली, हिंदुस्तानी और मूर्ख कहते होंगे। तुम लीला को बतलाओ कि सभ्य-समाज में कैसे मिला जाता है।"

अपने परम सभ्य पति के इसी भाषण के वाद से रानी ने लीला को एक घंटा नित्य सभ्यता का पाठ पढ़ाना आरंभ कर दिया, जो महीनों तक चलता रहा। सभ्यता कोई छोटी चीज़ तो नहीं है, जो दस-पाँच दिनों में ही कोई उसका मर्म समझ ले।

किसी पत्थर के ढोके को गढ़कर मूर्ति बनाना आसान नहीं है। कलाकार और पत्थर, दोनों में धीरज चाहिए। ईस्पात की बनी चोखी छेनियों की हज़ारों-लाखों चोटें खा लेने की ताकत जब तक पत्थर में न होगी, वह अनगढ़-का-अनगढ़ ही बना रहेगा, और बाज़ार में उसकी कोई प्रतिष्ठा न होगी। सभ्य बनने के लिए भी बड़ी तपस्या चाहिए और लीला ने जी लगाकर तपस्या में अपने को तपाना शुरू कर दिया। जब साधारण नियम वह सीख चुकी, तो उसकी स्नेहमयी जननी ने बारीक ज्ञान देने की ओर ध्यान दिया। उन्होंने

कहा—"देख लीला, नवयुवकों को पागल बनाना बेकार है। वे किसी काम के नहीं होते। मैं तेरे बाप से २५ साल छोटी हूँ। इनकी उम्र ५० साल की थी, और मैं थी पूरे पच्चीस की।"

इतना कहकर छिपी आँखों से रानी ने शीशे में अपने पिचके हुए गालों और नकली दाँतों को देखा। चेहरे पर की झुर्रियाँ भी उनकी भीतर घुसी हुई पीली और गंदी आँखों से छिपी नहीं रहीं। खिजाब लगे हुए वाल भी शीशे में उन्हें नज़र आए। इतना देखकर भी वह हतोत्साह नहीं हुई, ज़रा-सा शरीर को ऊपर खींचकर तन गईं।

वह कहने लगीं—"सभ्य-समाज का यह नियम है कि किसी बूढ़े को फँसाकर उनसे मनमाना धन लिया जाय, और मनोरंजन के लिए अपनी पसंद के छोकरों के साथ मित्रता कर ली जाय। छोकरे प्रायः अपने मनहूस बाप के अधीन रहते हैं, उनके पास धन नहीं होता—यह याद रखना। विलायत में यही होता है। वहाँ बड़े-बड़े लार्ड प्रायः छोकरियों के साथ रहना पसंद करते हैं, और उन्हें खूब पैसा देते हैं। नई सभ्यता इस नियम का खूब समर्थन करती है।"

इसके बाद माता ने दूसरा लेक्चर आरंभ किया, और अपनी बेटी को बतलाया कि एकांत में कैसे अपने चाहनेवालों से बातें की जाती हैं। उन्होंने कहा—"मेरी तरफ़ देख तो। जब कोई हाथ पकड़कर अपने साथ सोफ़े पर बैठाना चाहे, तो ज़ोर से हाथ मत झटकना, मगर झटकना ज़रूर। विना विरोध के स्त्री यदि किसी पुरुष के निकट सटकर बैठ जाती है, तो वह पुरुष उसकी प्रतिष्ठा नहीं करता। हाँ, हल्का विरोध करना, मगर तिरछी चितवन से होठों में मुस्कान भरकर उसे देखते रहना। नाराज़गी भी ज़ाहिर करना हो, तो मुस्कुराते हुए, कनखियों से ताकते हुए, लचकते हुए और उसे बेचैन करते हुए। बतलाती हूँ, इस तरह—हाँ, तू मेरा हाथ पकड़कर मुझे अपने साथ इस सोफे पर बैठने का आग्रह कर।"

लीला ने वैसा ही किया, और उस गलित-यौवना बुढ़िया ने ऐसा सफल एक्ट किया कि लीला स्त्री होने पर भी सौ जान से निसार होते-होते बची। मन-ही-मन अपनी गुणवती माता की सराहना करती हुई लीला ने कहा—"ममी, यह है बड़ा कठिन।"

रानी बोलीं—"लीला रानी, नई सभ्यता बतलाती है कि नव-युवतियाँ सबके साथ रहकर भी अपने मन को सबसे अलग ही रक्खें। प्रेम वग़ैरह तो पुराने युग के मूर्खों के कहे हुए शब्द हैं। किसी के बंधन में फँस जाने में जीवन का सच्चा लुत्फ़ नहीं उठाया जा सकता। सारे जीवन को गुलाम बनाकर पुराने ज़माने की मूर्ख औरतें मरा करती थीं। मौज करो, आनंद करो, और फिर अलग हो जाओ—यही नयी सभ्यता का 'स्लोगन' है। मन किसी को मत देना, शरीर देने में आनंद ही है। मन दे देने से जीवन-भर पछताना होगा। मैं आज भी तुम्हारे बाप के चेहरे पर चप्पल मारकर तलाक दे सकती हूँ, यह तुम पक्का समझो, बेटी!" लीला सन्नाटे में आ गई। उसने घबराकर पूछा—"पप्पा को तलाक़ देकर तुम कहाँ जाओगी, ममी?"

रानी बोलीं—"पगली है क्या। मैं तो यह बतलाना चाहती थी कि सात जन्म तक भी साथ रहकर स्त्री को बराबर अपने को अलग ही मानना चाहिए। वह कभी किसी से भीतरी लगाव न रक्खे। जब तक जी में आया, साथ रहे, और जब मन उचटा, सलाम ठोंककर किनारे हो गए। यह याद रखना।"

लीला ललाट का पसीना पोछकर फिर बोली—"ममी, साथ रहने से स्नेह तो हो ही जाता है, छोड़ते नहीं बनता। पालतू कुत्ते का त्याग करना भी कठिन हो जाता है, ममी!"

रानी ने कहा—"ये पुरानी बातें हैं। देखती नहीं, सिनेमा की 'स्टार' कभी एक का दामन पकड़ना पसंद नहीं करतीं। आज शादी हुई, कल तलाक़ और फिर आज़ादी का छलकता हुआ आनंद।"

लीला बोली—"समझ गई ।"

इसी समय सिगरेट की बदबू लिए जॉर्ज साहब आए, और अपने भद्दे शरीर को उन्होंने रानी के सामने पेश करके कहा—"यह सूट अभी 'आर्मी ऐंड नेवी' से सिलकर आया है । देखो तो सही, कैसा है, विलायत में लॉर्डों को मैं इसी कट के कपड़े पहने देखता था ।"

अपने झुलसे हुए ठूंठ-जैसे पति की प्रदक्षिणा-सी करती हुई रानी बोलीं—"वाह, डार्लिंग, शानदार है, यह सूट खूब फबता है तुम्हारे शरीर पर—क्या सिलाई है ! यहाँ के बेवकूफ़ दढ़ियल दर्ज़ी क्या खाकर ऐसी तराश कर सकते हैं । देख तो लीला बेटी ।"

लीला ने भी सराहा । इतनी ही देर में दूसरी सिगरेट को दग्ध करते हुए जॉर्ज साहब कहने लगे—"अपनी प्यारी लीला को तहज़ीब सिखलाओ । यह हिंदुस्तानियों की तरह फूहड़ लड़की है । सोसाइटी में ऐसी भद्दी लड़कियों को ले जाना अपनी तौहीन है ।"

रानी मटककर बोलीं—"सच कहना डार्लिंग, कभी मेरे साथ कहीं जाने में भी तुम्हें लज्जा का अनुभव हुआ, शायद नहीं ।"

रानी ने अपने सवाल का स्वयं ही संतोषजनक उत्तर भी दे दिया । जॉर्ज साहब अपना सुनहला सिगरेट केस अपनी रानी के आगे बढ़ाते हुए मुस्कराए । उनके पीले-पीले गंदे दाँत, जो पायरिया से ग्रस्त थे, बाहर स्पष्ट हो गए । रानी भी रात-दिन सिगरेट फूँका करती थीं, और लुक-छिपकर लीला ने भी दनादन सिगरेट पीना शुरू कर दिया था ।

जॉर्ज साहब बोले—"अगले सप्ताह क्लब में काकटेल पार्टी है । बड़े-बड़े आदमी आवेंगे । नाच होगा, और आनंद मनाया जायगा । विलायत में तो रोज़ ही ऐसी पार्टियाँ होती रहती हैं । यह जंगलियों का देश है । अभी इसको सभ्य होने में कम-से-कम हज़ार साल तो लगेंगे ही ।"

"हज़ार साल"—रानी बोलीं—"यदि महिलाओं ने ध्यान दिया, तो दस साल में कायाकल्प हो जायगी। विलायत की बात तो यहाँ हज़ार क्या, लाख साल में भी आ नहीं सकती।"

"तुम्हारा कहना ठीक है"—इतना कहकर जॉर्ज साहब पतलून पर हाथ फेरते हुए कमरे से बाहर हो गए, और फिर लौटकर बोले—"रानी, डॉक्टर रामदेव का लड़का विलायत से आ गया। वह वहीं से एम० ए० करके आया है, और डी० लिट्० की डिग्री भी ली। बड़ा तेज़ लड़का है।"

रानी ने कहा—"डॉक्टर भी बड़ा तेज़ है। जैसा बाप है, वैसा ही बेटा हुआ, तो इसमें अचरज क्या है ?"

जॉर्ज साहब कहने लगे—"लड़के का जन्म भी तो विलायत में ही हुआ था। तुम तो जानती ही हो। ऐसा भाग्य सब का नहीं होता—विलायत में जन्म लेना, वहीं पढ़ना-लिखना, और ऊँची-से-ऊँची डिग्री हासिल करना। समझ में नहीं आता, वह इस गंदे देश में लौट क्यों आया।"

रानी ने कहा—"बाप ने बुलाया होगा।"

"जहन्नुम में जाय ऐसा उल्लू बाप"—कराहकर जॉर्ज साहब ने अपनी राय दी—"यहाँ रहकर होनहार लड़का जंगली बन जायगा, यह मैं सच कहता हूँ।"

दोनों विलायती दंपति इस तरह बातें कर रहे थे, और लीला उत्सुक हो रही थी कि विलायत में जन्म ग्रहण करनेवाले उस दिव्य मानव-नवयुवक को किस उपाय से देखा जाय। वह यहाँ के साधारण लोगों से जरूर अधिक सुंदर, स्वस्थ, आज़ाद और फक्कड़ होगा। लीला की निगाह में उसकी डिग्रियों का कोई महत्त्व न था। कसाई किसी गाय को खरीदते समय यह जानने की चेष्टा नहीं करता कि इसमें दूध कितना है, इसका ब्रीड कौन-सा है, थारपारकर या हिसार। वह तो मांस के हिसाब से ही कीमत तय करता है, फिर कोई बड़ी

बात नहीं, जो नई सभ्यता की परी लीला ने अपनी कल्पना की आँखों से उस नवागंतुक नवयुवक के विलायत में जन्मे और पले हुए शरीर को ही देखने का प्रयास किया।

दिन ढल चुका था। सर्दी तेजी से पड़ने लगी थी। जॉर्ज साहब अपनी शानदार कोठी के नज़रबाग की ओर चल पड़े। साथ में छोकरी की तरह फुदकती हुई बुढ़िया रानी भी थीं। जॉर्ज साहब आदत के अनुसार विलायत की रट लगाए हुए थे—"ऐसा फूल लंदन के हाइड पार्क में तुम देखोगी। इस फूल का बीज नार्वे से मँगवाया था, यह नीला फूल मैंने 'मेयर' के बाग़ में देखा था, यह पौधा पिकिडली के एक दोस्त के यहाँ नज़र आया था। गरज़ यह कि उनकेबाग़ का प्रत्येक फूल लंदन का था, और वहाँ इन फूलों की बड़ी इज्जत होती है।

विलायत का 'हनुमानचालीसा' वह पंद्रह साल से पाठ कर रहे थे, मगर अघाए नहीं, यह कोई अचरज की बात नहीं है। 'वर्ण-संकर' से कहीं अधिक बुरा होता है 'विचार-संकर'। वर्ण-संकर का कोई कुल नहीं होता, किंतु जो विचार-संकर होता है, उसको कहीं मातृ-भूमि नहीं होती, यह तो स्पष्ट ही है। जॉर्ज साहब विचार-संकरता के रोग से पीड़ित थे। वह जन्म से तो भारतीय थे, किंतु विचार के अँगरेज—वह न भारत के थे, और न योरप के। चमगादड़ की-सी उनकी स्थिति थी, जो न पंछी होता है और न पशु। उस अभागे जंतु के शरीर में दोनों के लक्षण पाए जाते हैं। यही बात जॉर्ज साहब के संबंध में भी कही जा सकती है।

वह अँगरेजी में ही सोचते और सपना देखते थे, किंतु एक बार जब घोड़े से गिरकर पैर तुड़वा बैठे, तो—"बाप रे बाप, बाप रे बाप" शुद्ध हिंदी में ही चिल्लाते थे, अँगरेजी में नहीं।

जब दर्द कुछ कम हुआ, तो फिर जॉर्ज साहब अँगरेज़ी में ही अपनी टाँग की व्यथा का इज़हार करने लगे।

अपने काले शरीर के भीतर विलायती आत्मा छिपाए जॉर्ज साहब फूलों का वर्णन करते रहे, और विलायत का नाम ले-लेकर रोते रहे। अंत में उन्होंने अपनी रानी से कहा—"सर्दी के दिनों में यह अनुभव करता हूँ कि विलायत में ही हूँ। यह मुल्क क्या है, नरक है रानी!" रानी ने भी अपनी सारस-जैसी पतली गर्दन हिलाकर सहमति जताई। अगर जॉर्ज साहब की जगह पर और कोई होता, तो रात-दिन विलायत का भजन गाता ऊब उठता, किंतु वह जीवन भर यही करते रहे, और ऊबे नहीं।

लीला अपने कमरे में बैठी श्रृंगार कर रही थी। वह बिलकुल विलायती तर्ज़ का बनाव-श्रृंगार करने में तल्लीन थी। उसके सामने हालीउड की किसी स्टार की तस्वीर थी, वह उसी के अंदाज पर अपने को सजाना चाहती थी। उसका विचार था, अँगरेज़-मिस बनकर डा० रामदेव की कोठरी के सामने अपने नन्हें-नन्हें कुत्तों के साथ टहलना।

जॉर्ज साहब की कोठी के बाद ही डा० रामदेव की कोठी थी, जो अपने छोटे-से बाग़ के बीच में खिलौने की तरह नज़र आती थी।

लीला बाहर निकली। जॉर्ज साहब ने कनखियों से अपनी कन्या को देखकर धीरे-से कहा—"वाह, देखकर कोई नहीं कह सकता कि यह विलायत की मिस-बाबा नहीं है। अँगरेजी पोशाक भी छिपी हुई खूबसूरती को प्रत्यक्ष कर देती है।

लीला टहलती और सीटी में कोई विलायती धुन गाती हुई डा० रामदेव के बँगले के सामने गई। बाहर कोई न था। बँगला मानो अशेष शांति के गंभीर जल में डूब रहा था। ऊँचे-ऊँचे वृक्षों की चोटियों पर उतरती हुई धूप की लाली थी, बसेरा लेनेवाले पंछियों का कोलाहल था, और नीचे हरे मैदान में तरह-तरह के फूल निःशब्द खिले हुए थे। शांति की शीतल चादर ओढ़े डा० रामदेव की वह

छोटी-सी दुमंजिली कोठी किसी समाधि-मग्न योगी की तरह दिखलाई पड़ती थी।

लीला को यह शांति अच्छी नहीं लगी। वह झुंझलाकर बोली—"कैसे मनहूस हैं डाक्टर, उफ़, कहीं रौनक नहीं।"

थोड़ी देर के बाद गोधूलि का रंग धूमिल हो गया, और ओस से भीगी हुई, पूस की थरथराती हुई रात धरती पर उतरी। हवा ने भी रंग बदला, और विलायती पोशाक पहनने के कारण लीला के हाथ-पैर ऐंठने लगे—वह अर्धनग्नावस्था में ही थी, विलायती पोशाक ही ऐसी होती है, तो बेचारी करे क्या। प्राण रहे या जाय, सभ्यता की रक्षा तो होनी ही चाहिए।

लीला ने उदास दृष्टि से देखा कि डा० रामदेव की कोठी की खिड़कियों के रंगीन पर्दों से छन-छनकर प्रकाश बाहर निकल रहा है। आसपास के वृक्षों की पत्तियों पर भी वह प्रकाश जैसे खेल रहा था।

लीला—भग्नमनोरथा लीला अपने बँगले की ओर लौटी। यत्न-पूर्वक किया गया उसका सारा शृंगार एकाएक व्यर्थ हो गया—डा० रामदेव का वह विलायती नौजवान लड़का कहीं नज़र नहीं आया, काश, वह एक बार देख पाता! बिना उस नवयुवक को देखे ही लीला यही सुनकर देखने और दिखलाने के लिए शहीद हो रही थी कि उसका जन्म यहाँ नहीं, विलायत में हुआ था। वह वहीं रहा, और २६ साल की उम्र में घर लौट रहा है—जन्म से लेकर अपनी २६ साल की उम्र तक वह एक बार भी भारत नहीं आया। वह सारा योरप घूमा, तीन-चार बार अमेरिका गया, और मास्को की भी हवा बहुत बार खा आया, मगर इस गंदी धरती का उसने स्पर्श नहीं किया। लीला सोच रही थी, वह भाग्यवान् नवयुवक सिर से पैर तक विलायती होगा, न केवल पोशाक में ही, बल्कि शकल-सूरत में भी और सभ्यता-संस्कृति में भी। लीला का मन इसीलिये बेज़ार था।

वह हारी-थकी-सी जब बँगले पर आई, तो ममी ने कहा—"लीला, आज डा० देव के यहाँ न्योता है। वहाँ पार्टी होगी। कहीं जाना मत।"

लीला के उदास और निराश चेहरे पर एकाएक ललाई दौड़ गई। उसने फिर से शृंगार करना आरंभ कर दिया—इस बार वह पेरिस की परी बन गई। अपनी दोनों नंगी बाहों पर पाउडर की मालिश आदि करके लीला ने यह दिखला दिया कि पेरिस की ही छोकरियाँ तावदार नहीं होतीं—दूसरे देश की परियाँ भी यदि मन लगाकर मेकप करें, तो पेरिसवालियों के छक्के छूट जायँ।

जब ममी ने अपनी छोकरी को सजावट करते देखा, तो उनका मन भी उफान खाने लगा। वह भी शीशे के सामने खड़ी हो गईं, और अपनी नवयुवती कन्या को नीचा दिखलाने के लिए ऐसा पुरज़ोर शृंगार किया कि जॉर्ज साहब ने छूटते ही कहा—"जी चाहता है, फिर से विवाह का प्रस्ताव तुम्हारे सामने पेश करूँ।"

मचलती हुई रानी बोलीं—"हटो, यह अपनी किस्मत समझो कि मैं तुम्हारे यहाँ आ गई, नहीं तो सोसाइटी में तुम्हें पूछता ही कौन।"

जॉर्ज साहब ने नेकटाई को जरा-सा खिसकाकर कहा—"देखो तो, इस टाई का रंग कोट के रंग से मैच खाता है या नहीं।"

रानी ने मुँह बिचकाकर कहा—"तुम्हें तो वो बहुत खुलता है डार्लिंग!"

दो घंटे तक सभी मिलकर टाई, कोट, जंपर, फ्राक पर बहस करते रहे। ऐसा जान पड़ता था कि इनकी सारी दुनिया कपड़ों तक ही सीमित है, इनकी दृष्टि में ज्ञान की अंतिम सीमा कपड़ों की बनावट और काट, छाँट में ही है। लीला, रानी और जॉर्ज साहब—इन तीनों ने मिलकर फ़ैशन और सजावट के बाल तक की खाल उतार डाली। लंदन और पेरिस के नाम की राम-धुन लगा लेने के बाद

जॉर्ज साहब ने कहा—"अब समय हो गया। चलो, डा० देव के जल्से में। यदि वहाँ सभ्य-मंडली हुई, तब तो बैठूँगा, वर्ना मेरे लिए ठहरना कठिन हो जायगा। फूहड़ हिंदुस्तानियों की शकल देखते ही उबकाई आने लगती है। सौ-डेढ़ सौ साल तक अँगरेज़ों की सेवा करके भी ये अभागे कुछ हासिल न कर सके।"

रानी ने कहा—"यही तो मैं भी कहना चाहती थी जॉर्ज ! अस-भ्यों के पास बैठने से मुझे भी नफ़रत मालूम होती है, मगर डॉक्टर तो खुद भी विलायत रह चुका है, वह तहज़ीब ज़रूर ही जानता होगा। आपका तो वह दोस्त है।"

सभ्यता बनाम असभ्यता

ठीक सात बजे जॉर्ज महाशय अपनी दुहिता और जाया के साथ डॉ० रामदेव की कोठी पर पहुँचे। वह जान-बूझकर समय से दो मिनट देर करके गए थे। क्यों गए थे ? सुनिए—

जॉर्ज साहब ने अपनी कलाई पर की सोने की जगमगाती घड़ी देखकर ऐसा मुँह बनाया जैसे भ्रूणहत्या, बालहत्या जैसा कोई पाप उन्होंने कर डाला हो। डॉ० रामदेव ने हाथ जोड़कर उनका स्वागत किया, तो वह घड़ी देखकर बोले—"सॉरी, देर हो गई। क्षमा कीजिएगा।"

इस तरह क्षमा-याचना करके प्रकारांतर उन्होंने यह प्रमाणित करना चाहा कि विलायती तहज़ीब में समय की पाबंदी को कितना महत्त्व दिया जाता है। रामदेव डॉक्टर थे, और डॉक्टर के लिए समय की पाबंदी कोई चीज नहीं—जब मरीजों से छुट्टी मिली, कहीं आए-गए।

उस समय तक बहुत ही कम अतिथि पधारे थे। लीला की चंचल आँखें जो उपस्थित थे, उनमें डॉ० रामदेव के विलायती पुत्र को बेकली के साथ खोज रही थीं, किंतु वह कहीं दिखलाई न पड़ा।

जो आए थे, वे भारतीय पोशाक पहने आराम से बैठे थे। दो-चार महिलाएँ भी साड़ी आदि से सुशोभित थीं। यह दृश्य जॉर्ज साहब के लिए अपमानजनक था, किंतु बेचारे करते क्या, फँस गए थे। भागने का उपाय न था।

अकेली लीला ही पेरिस की पोशाक में चमक रही थी। कन्धों से लेकर उसकी दोनों बाहें नंगी थीं, और आधी जाँघ के बाद भी कोई आवरण न था। गोल, चमकदार जाँघों पर बिजली की रोशनी चमक रही थी। वक्षःस्थल का भाग भी आधा खुला हुआ था। आधे वक्षःस्थल से लेकर आधी जाँघ तक झीना वस्त्र था, और शरीर का बाकी भाग प्रकाश में चमक रहा था।

डॉ० रामदेव ने एक बार लीला को देखा, और डॉक्टर की तरह जोर-से कहा—"सर्दी लग जाने पर क्या होगा ?"

किसी ने उनके इस सारवान् वक्तव्य को नहीं सुना। इतने ही में बहुत-से संभ्रांत व्यक्ति और महिलायें आयीं। सभी भारतीय वस्त्र पहने। एक ही व्यक्ति वहाँ आया, जो जॉर्ज साहब की तरह सभ्यता-नुमोदित सुंदर वस्त्र पहने हुए था—वह था कैथोलिक चर्च का पादरी, जो काला-कलूटा और दमा से बेज़ार 'पेटर्सन डिग्गा'।

डॉ० रामदेव के पुत्र का नाम था ज्ञानदेव। डॉक्टरी की उच्च शिक्षा प्राप्त करने रामदेव विलायत गए। शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद वहीं उन्होंने अपना व्यवसाय आरंभ कर दिया। वह कुछ दिनों के लिए लौटे, और अपनी पत्नी को भी साथ लिए चले गए। ज्ञान-देव का जन्म लंदन में ही हुआ। ज्ञानदेव की माता परम आस्तिक और भारतीय विचार की महिला थीं। लंदन में रहते हुए भी उन्होंने व्रत-उपवासादि को जारी रक्खा, तथा रामायण, महाभारत, गीता आदि का स्वाध्याय नहीं छोड़ा। वह अच्छी शिक्षिता और संस्कार-

ज़ोरदार असर पड़ा। फलतः उनका घर भारत ही बना रहा। ज्ञानदेव ने माता से संस्कृत की शिक्षा पाई, तथा आर्य-संस्कृति का उस पर अमिट रंग चढ़कर ही रहा। उसने दर्शन-साहित्य का पारदर्शी ज्ञान स्वाध्याय करके प्राप्त किया। सबसे बड़ी बात यह हुई कि ज्ञानदेव ने मन-प्राण से भारत को प्यार करना सीखा। वह भारत को देखने के लिए विकल हो रहा था, किंतु अभी उसकी पढ़ाई बाकी थी।

दुर्भाग्य को कौन रोक सकता है, होनहार प्रबल होता है। जब ज्ञानदेव पन्द्रह साल का था, उसकी माता का देहांत लंदन में ही हो गया।

आधुनिक पाठशाला या विद्यालय में सभ्यता की ही शिक्षा प्राप्त की जा सकती है; क्योंकि सभ्यता बाहर की चीज़ है। संस्कृति की सीख मिलती है संस्कार-संपन्न घर में और विशेषतः माँ से। ज्ञानदेव के खून में जो आर्य-संस्कृति का वेग था, उसका रहस्य यही है। माता के देहांत के बाद ज्ञानदेव ने उन सभी धर्माचारों को जारी रक्खा, जिनका संपादन उसकी माता करती रहती थीं—व्रत, धार्मिक ग्रंथों का स्वाध्याय और देव-पूजन। पंद्रह-साल का ज्ञानदेव माता के सिखलाए हुए कार्यों को श्रद्धा-पूर्वक करता हुआ यह अनुभव करता था कि वह अपनी माता के निकट ही है।

नित्य स्नान के बाद जब वह तन्मय होकर गीता-पाठ करता, तो उसका हृदय उल्लास से भर जाता। उसे ऐसा बोध होता कि उसकी माँ वहाँ उपस्थित होकर पाठ श्रवण कर रही हैं। रात को जब ज्ञानदेव रामायण या भागवत का पाठ करने बैठता, तो अनुभव करता कि उसके सामने माँ बैठी हैं, सुन रही हैं। जिस दिन वह पूजन या पाठ नहीं करता, उस दिन मन-ही-मन रो देता—वह मान लेता कि मा आकर ज़रूर लौट गई होंगी। वह अपने को अपराधी मानता और मन-ही-मन माता से क्षमा-याचना करता और पछताता।

तीन महीना उसकी माँ बीमार रहीं, और अपनी बीमारी की अवस्था में उन्होंने अपने पुत्र पर ही इन सारे कार्यों को छोड़ रक्खा था। मरते समय उन्होंने ज्ञानदेव को आदेश दिया था कि तुम सबसे पहले शुद्ध भारतीय रहना, उसके बाद और कुछ।

गंभीर और मातृभक्त ज्ञानदेव ने माता के आदेश को अपने जीवन का व्रत बना लिया। वह अपने शुभ कार्यों में माँ के दर्शन करता।

पत्नी का अवशेष लेकर डॉ० रामदेव भारत लौट आए, और ज्ञानदेव अपनी शिक्षा पूरी करने के लिए लंदन में ही रह गया। लंदन के निकट एक गाँव में डॉ० रामदेव ने एक सुंदर-सा मकान बनवाया था। वहाँ रहकर ज्ञानदेव अध्ययन करता था। पंद्रह साल के पुत्र को दूर देश में छोड़कर डॉ० रामदेव भारत आए, और फिर लौट गए। अपने पेशे से उन्होंने पर्याप्त आय की थी। सुना जाता है, तीन-चार लाख रुपयों के वह स्वामी थे। लंदन के भारतीय हल्के में उनका बहुत यश था, और दिन-रात रुपयों की वर्षा होती रहती थी। वह संयमी व्यक्ति थे। संचय हो गया। छलनी में पानी नहीं भरा जा सकता, घड़े में भरना कोई बात नहीं। दो-चार साल के बाद डॉ० रामदेव भारत लौट आए, मगर ज्ञानदेव लंदन में रह गया।

अपनी शिक्षा पूरी करके ज्ञानदेव पहली बार भारत आया। उसने अपने को यहाँ अजनबी नहीं माना। ज्ञानदेव ने जैसे ही भारत-भूमि को देखा, उसे ऐसा लगा कि वह एक चिर-परिचित धरती को देख रहा है।

छब्बीस साल की उम्र में ज्ञानदेव भारत लौटा। वह शिक्षा और वय, दोनों से भरा-पूरा था, किसी में भी कमी न थी।

जब कमरे में आदरणीय अतिथियों का जमाव हो गया, तो जॉर्ज साहब ने बहुत ही बेकली से पूछा—"डाक्टर, आपके लड़के को हम नहीं देख रहे हैं?"

डॉ० रामदेव बोले—"भाई, सत्यनारायण भगवान का पूजन हो रहा है, वह आ ही रहा होगा।"

पूजन का नाम सुनते ही जॉर्ज साहब ने ऐसा मुँह बनाया कि कुछ लोग मुस्कुरा पड़े। उन्होंने फिर पूछा—"वह विलायत में रहकर भी पूजा-पाठ को पसंद करता है?"

"अवश्य"—डॉ० रामदेव ने जवाब दिया—"उसकी माँ परम आस्तिक थी। लंदन में भी उसने भारतीय आचारों का श्रद्धा-पूर्वक निर्वाह किया। माँ के विचारों का अमिट प्रभाव बच्चे पर पड़ता ही है।"

रानी ने कनखियों से लीला को देखा। वह शायद यह जानना चाहती थीं कि मेरे विचारों का प्रभाव मेरी प्यारी लीला पर किस हद तक पड़ा है।

इसी समय सामने के दरवाज़े का रेशमी पर्दा हिला, और एक सुंदर नवयुवक प्रकट हुआ। उसका शरीर उन्नत था, और कंधे चौड़े थे। वक्ष:स्थल चौड़ा और भरा हुआ था। उसका रंग अँगरेज़ों के रंग से मिलता था। सिर पर कुछ भूरे और काले घुँघराले बाल थे, आँखें भी कुछ-कुछ भूरी थीं। उसके चमकदार ललाट पर केशर का तिलक था और शरीर पर धोती और पश्मीने की हल्की चादर।

जो वहाँ उपस्थित थे, वे सभी अकचकाए-से उस नवयुवक को विस्फारित नेत्रों से देखने लगे। उस नवयुवक ने हाथ जोड़कर सबको नमस्कार किया, तो डॉ० रामदेव ने कहा—"यह आज ही लंदन से पहली बार घर आया है। वहीं इसका जन्म हुआ, और अपनी उम्र के छब्बीस साल इसने विदेश में ही काटे। आज इसका जन्म-दिन भी है।"

इसके बाद डॉ० रामदेव ने प्रत्येक महानुभाव का परिचय ज्ञानदेव को दिया। वह तो बिलकुल ही अजनबी था, किसी को भी जानता-

पहचानता न था। जब ज्ञानदेव को मिस्टर जॉर्ज सिंह कहकर जॉर्ज साहब का परिचय दिया, तो वह कुछ घबरा गया। उसने कल्पना भी नहीं की थी कि इतना काला-कलूटा आदमी भी जॉर्ज बन सकता है। जॉर्ज साहब हाथ मिलाने के लिए कुर्सी से थोड़ा-सा उचके, किंतु ज्ञानदेव ने हाथ जोड़कर ही अभिवादन किया।

इसी समय एक सज्जन और अपनी कन्या के साथ पधारे। वह थे, स्थानीय कॉलेज के प्रधानाध्यापक टी० कोदंड़ शास्त्री। शास्त्रीजी मैसूर के थे, और कट्टर ब्राह्मण कहे जाते थे। वह उद्भट् विद्वान् और मेधावी थे। सिर पर हिम-धवल पगड़ी और धोती तथा ललाट पर दिव्य त्रिपुंड—यही शास्त्रीजी की शोभा थी। उम्र साठ के लगभग तथा गौर वर्ण। उनकी कन्या का नाम था—पद्मसंभवा। वह भी अत्यंत सुंदरी और उच्च शिक्षिता थी। दोनों स्वभाव के गंभीर और शांत थे—शास्त्रीजी और पद्मसंभवा।

अपने पिता के इशारे पर ज्ञान ने शास्त्रीजी के चरण छुए। प्रसन्न होकर शास्त्रीजी ने वैदिक मंत्र पढ़कर आशीर्वाद दिया, तो जॉर्ज साहब मन-ही-मन झल्लाकर रह गए। उन्हें ऐसा लगा कि वह अफ्रिका के जंगलियों के चक्कर में पड़ गए हैं। लीला समझ ही नहीं सकी कि यह सब क्या हो रहा है। शास्त्रीजी की कोठी डॉ० रामदेव की कोठी से लगी हुई थी, जो डॉ० देव की ही थी, शास्त्रीजी किराये में रह रहे थे।

बड़े स्नेह से शास्त्रीजी ने अपने साथ ही सोफ़े पर ज्ञानदेव को बैठाया, और उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कुशल-समाचार पूछा, और फिर कहा—"सर्दी पड़ रही है, जाकर कपड़े वदल आओ।"

इस आत्मीयता से भरे आदेश ने ज्ञानदेव को मुग्ध कर लिया। लंदन में इस तरह का अपनापन प्राप्त न कर सका था। नम्रतापूर्वक ज्ञानदेव उठा, और धोती-कुर्ता तथा चादर से सुसज्जित होकर आ

गया। जॉर्ज साहब को उसकी यह पोशाक ज़रा भी नहीं रुची। वह पूछ ही बैठे—"मि० ज्ञान ने हिंदुस्तानी कपड़े पहनना कैसे सीखा?"

डॉ० रामदेव ने कहा—"लंदन में घर पर यह हिंदुस्तानी कपड़े ही पहनता था। इसकी माँ विलायती कपड़ों को पसंद नहीं करती थी।"

गंभीर स्वर में हुँकार करके जॉर्ज साहब ने सिगरेट धौंकने की ओर ध्यान दिया। लीला, जो चकित दृष्टि से यह सब देख रही थी, बहुत ही निराश हुई।

उसे यदि ज्ञानदेव की ऐसी गंदी रुचि का पता पहले से चल जाता, तो वह आती ही नहीं। वह हिंदुस्तानी से नहीं, अँगरेज़ से परिचय बढ़ाने के लिए पेरिस की नागिन बनकर आई थी। सबसे अधिक पद्मसंभवा की प्रबल तथा अप्रत्याशित उपस्थिति ने लीला को झकझोर दिया था। वह उस मंडली में साक्षात् देवकन्या-सी दिखाई पड़ती थी। जगमगाती हुई ज़री के किनारेवाली साड़ी, कानों में रत्न-जटित दो फूल और जूड़े में लिपटी हुई माला ने लीला को जैसे दाह कर डाला था—सादगी पर भी इतना सौंदर्य।

शायद लीला को यह मालूम न था कि भीतर का प्रकाश ही बाहर चमककर किसी की सुंदरता में लुनाई पैदा कर देता है। जिसके भीतर में अंधकार अपनी पूर्ण महिमा के साथ मौजूद हो, वह यदि बाहर से स्वस्थ और सुंदर भी हो, तो बुझे हुए सोने के दीपक से अधिक उसका मोल न होगा। विलायती और भारतीय सौंदर्यानुभूति में यही थोड़ा-सा अंतर है।

पद्मसंभवा और लीला म भी यही पृथकता थी, किंतु इस पृथकता को समझने के लिए बहुत ही सधी हुई और संस्कारवान् आँखों की आवश्यकता है—मिट्टी की आँखों से तो ठीक-ठीक भाँपा भी नहीं जा सकता। जिसका अंतर जितना संतुलित, परिष्कृत और दिव्यानुभूतियों

से प्रकाशित होगा, वह उतना ही सौन्दर्य के इस अंतर को सही-सही समझने में सफल होगा।

ज्ञानदेव जब फिर कमरे में आया, तो पद्मसंभवा ने क्षण-भर के लिए उसे अपनी कजरारी आँखों से देखा, और फिर सिर झुका लिया। दूसरी बार उसने ज्ञानदेव को देखने का प्रयत्न नहीं किया। लीला आँखें फाड़-फाड़कर ज्ञानदेव को ताक रही थी, और चाहती थी कि वह किसी तरह भी निकट आवे। ज्ञानदेव को पुनः शास्त्रीजी ने अपने निकट बुलाकर बैठा लिया। ऐसा जान पड़ता था कि शास्त्रीजी का भूला हुआ पुत्र बहुत दिनों के बाद हठात् मिल गया हो। उस धर्म-प्राण, वृद्ध विद्वान् ने ज्ञानदेव को जैसे मन-ही-मन अपने अंतर में प्रतिष्ठित कर लिया। संस्कारवान् और होनहार नवयुवक के प्रति उस पुराने अध्यापक का अशेष आकर्षण स्वाभाविक भी था।

शास्त्रीजी ने डॉ० रामदेव से कहा—"मित्र, आज मैं तृप्त हो गया! सचमुच तुम्हारी सती ने पूर्ण तपस्या की थी, जो उसे शंकर ने वरदान के रूप में ऐसा धन दिया।"

शास्त्रीजी पुराने विचार के व्यक्ति थे। नये समाज में इस तरह की बात नहीं बोली जाती। बहुत हुआ, तो किसी की नई मोटर या डर्बी के घुड़दौड़ की चर्चा हो गई। जॉर्ज साहब को यह जंगलीपन बहुत अखरा। यद्यपि उस मंडली में नगर के संभ्रांत व्यक्ति, उच्च अधिकारी, डॉक्टर और कई लखपति, करोड़पति भी आए थे, किंतु तहज़ीब की पाबंदी का जितना ख्याल जॉर्ज साहब को था, उतना किसी को न था। हाईकोर्ट के दो जज भी थे, किंतु वे तो पूर्णतः भारतीय थे। सभी एक दूसरे से घुल-मिलकर बातें कर रहे थे, किंतु जॉर्ज साहब गुमसुम बने गंभीरता का पालन करते नज़र आते थे। लीला और रानी भी भारी बनकर पूर्ण महिमा के साथ बैठी थीं।

अब जॉर्ज साहब के लिए उस वातावरण में साँस लेना दूभर हो गया। वह छटपट करने लगे, मगर लीला अंत तक बैठना चाहती थी। भद्रता के विचार से जॉर्ज साहब उठ नहीं सकते थे। बेचारे जेल की यातना भोगते और मन-ही-मन कुढ़ते रहे।

साकार स्वप्न

समय के पैरों की आवाज़ कोई नहीं सुनता। जैसे धूप और चाँदनी निःशब्द बिना किसी तरह हलचल के खिसकती जाती है उसी, तरह समय भी खिसकता जाता है। एक-एक दिन करके छः महीनों की एक लम्बी कतार सामने से गुजर गई किन्तु पद्मसंभवा को इसका पता ही नहीं चला। उसके भीतर एक संघर्ष जरूर चल रहा था—वह ज्ञानदेव को बिसार देना चाहती थी, मन पर जोर डाल कर वह चाहती थी कि डॉ० रामदेव के यहाँ आनाजाना तो जारी रखे किन्तु ज्ञानदेव को अपने भीतर घुसने न दे—जल में तो डुबकियाँ ले, किन्तु जल को स्पर्श नहीं होने दे। ज्ञानदेव उन अनेक परिचितों में से ही एक व्यक्ति बना रहे जिन्हें पद्मा जानती पहचानती तो ज़रूर है किन्तु वे उसके मन के दरवाजे पर ही खड़े रहते हैं, भीतर प्रवेश करने का उन्हें अधिकार नहीं है—जैसे किसी राजद्वार पर खड़े भिखारी। पद्मा ज्यों-ज्यों प्रयास करती कि ज्ञानदेव को वह मन से दूर ही रखे त्यों-त्यों उसे घोर संघर्ष में उलझना पड़ता था। ऐसा संघर्ष जिसमें विजय पाने की आशा कम ही नज़र आती है। पद्मा कभी-कभी अपने आपको समझाती और झकझोर भी डालती। उसे ऐसा लगता

कि उसका मन दो टुकड़ों में बँट गया है, एक भाग कहता है—"ज्ञानदेव को निकट आने दो," दूसरा कहता है—"कोई हर्ज तो नहीं है मगर निष्प्रयोजन किसी को अपने घर में स्थान देना उचित नहीं।"

पद्मा कभी कभी इस उलझन के कारण थक जाती और कहती—"आखिर इस संघर्ष का कभी अन्त भी होगा।" एक घटना ऐसी पैदा हो गई जिसने पद्मा की हार को और भी बल प्रदान कर दिया। ज्ञानदेव संस्कृत का ज्ञान प्राप्त करना चाहता था। उसने शास्त्री जी से जब अपनी लालसा की चर्चा की तो वे आनंदविभोर हो उठे और बोले—"बेटा, इस आनंद को मैं किसी दूसरे के लिये छोड़ नहीं सकता। मैं ही तुम्हारा अध्यापक बनूंगा।"

ज्ञानदेव का सुन्दर चेहरा आनंद से खिल उठा। वह चाहता था कि शास्त्री जी जैसे पूर्ण विद्वान् उसके आचार्य बनें किन्तु संकोचवश बोल नहीं सकता था। जब शास्त्री जी ने स्वयं ज्ञानदेव की मन-चाही बात कह दी थी तो वह पुलकित हो कर बोला—"तो मैं किस समय आपकी सेवा में आया करूँ? कौन-सा समय आपके लिये उपयुक्त होगा?"

शास्त्री जी बोले—"भोजनोपरान्त, दोपहर को।"

ज्ञानदेव ने स्वीकृति दे दी।

यह निश्चय है कि ज्ञानदेव के सामने पद्मा नहीं थी, वह भूल चुका था पद्मा को। जब कभी उसे वह देखता भी तो उसी तरह जैसे किसी को कोई देख लेता है—बस।

पद्मा को जब यह समाचार मिला तो वह मन ही मन हैरान हो गई—जब ज्ञानदेव नित्य पढ़ने आयेगा, तब तो उसे भूल जाना या मन से निकाल देना और भी असंभव होगा। उसको इस हैरानी के भीतर जो एक दबा हुआ उल्लास था उसका पता पद्मा को नहीं चल सका। वह उल्लास धीरे-धीरे उभरता हुआ उसके पूरे मानसिक जगत पर छा गया। ज्ञानदेव के आने के समय की प्रतीक्षा अनजाने

पद्मा करती रहती थी और फिर अपने आपसे कहती थी—“मुझे क्या मतलब उनके आने या नहीं आने से।”

पद्मा कभी भी प्रयास नहीं करती थी कि वह ज्ञानदेव के सामने जाय किन्तु वह अनजाने ही चली जाती थी और तुरंत एक झटके में लौट जाती थी। लौटने के बाद अपने मन को कोसती थी और अपने निश्चय की गाँठ पर एक और गाँठ लगा देती थी। इस तरह उसने गाँठों की एक लम्बी कनार का सृजन कर डाला, किन्तु यदि बन्धन वहाँ पर ढीला हो जहाँ पर उसे कसा रहना चाहिये तो फिर गाँठ पर गाँठ लगाने से लाभ क्या? एक नहीं हजारों गाँठें आप लगा डालें आपने यदि बंधन को खूब कड़ा नहीं किया तो परिणाम, हास्यास्पद ही हाथ लगेगा। यही बात पद्मा के लिये भी हुई।

ज्ञानदेव नित्य दोपहरी को, नियमपूर्वक आने लगा और शास्त्री जी उसे पढ़ाने लगे। इस तरह आधा वर्ष समाप्त हो गया—दो ऋतुएँ आईं और चली गईं, छः बार पूर्ण चन्द्र चमका और अमावस्या के पर्दे के पीछे जाकर छिपा।

एक दिन दो पहर को ज्ञानदेव आया। शास्त्री जी अपनी पत्नी के साथ कहीं गये थे। कोठी में पद्मा थी, उसकी बड़ी बहन रत्ना भी वहीं थी।

पद्मा का हृदय एक छिपे हुए आनंद के आघात से धड़क उठता था घड़ी की ओर निगाह जाते ही—“अब समय हो गया वह आते ही होंगे।”

ज्यों-ज्यों ज्ञानदेव के आने का समय निकट आता जाता पद्मा किसी अप्रत्याशित बेकली से छटपट करने लगती। उस दिन का रंग कुछ अजीब था। समय हो गया किन्तु ज्ञानदेव नहीं आया। पद्मा की वह आनन्दपूर्ण-विकलता जो ज्ञानदेव के आने की प्रतीक्षा के कारण थी धीरे-धीरे दुःखपूर्ण निराशा का आकार ग्रहण करने लगी। उसने

बार बार घड़ी की ओर देखना आरंभ किया—बड़ी सुस्त तो ... रही है। इसके दोनों काँटे 'डायल' से चिपक तो नहीं गये !

फिर पद्मा ने सोचा शायद—लीला या किसी दूसरी........ उफ्, यह कल्पना भी भयानक है। डॉ० रामदेव के बँगले पर बहुत ही कम लोग जाते हैं। डॉक्टर खूसट व्यक्ति होता है—वह हर घड़ी रोग-बीमारी की बातों को ही सोचा करता है। •ऐसे व्यक्ति के यहाँ मित्रता के नाम पर कोई नहीं जा सकता है।

पद्मा बार बार कमरे से निकल कर बाग के "गेट" की ओर देखती—शायद ज्ञानदेव आ रहा हो। इसके बाद वह घड़ी की ओर देखती। उसकी व्यग्र आँखों ने देखा—ज्ञानदेव शान्तभाव से गेट पार करके बाग के अन्दर आ रहा है। पद्मा चौंकी और छाया की तरह खिसक कर कमरे के भीतर चली गई। हिलते हुए पर्दे को भी पकड़ कर उसने स्थिर कर दिया जिससे ज्ञानदेव को यह पता नहीं चले कि अभी कोई कमरे के अन्दर गया है।

ज्ञानदेव नित्य की तरह शान्त कदमों से चलता हुआ बरामदे में आया। उसने सन्नाटे से भाँप लिया कि कोठी में कोई नहीं है। वह एक कुर्सी पर बैठ गया और प्रतीक्षा करने लगा कि किसी की सूरत नजर आ जाय तो उससे कुछ पता चले।

कोठी में सन्नाटा था, बाहर बाग में पूर्ण शान्ति थी। दो चार चिड़ियाँ घास पर फुदक रही थीं निर्भय मन से। एक गिलहरी संतरे के तने पर उलटा चिपकी हुई अपनी पूंछ नचा रही थी और बोल रही थी।

ज्ञानदेव इस निर्जनता में मानो धीरे-धीरे डूबता जा रहा था। लन्दन रहते हुए उसने कभी भी ऐसे सन्नाटे को निकट से नहीं देखा—विलायती निर्जनता और भारतीय निर्जनता में भी बड़ा प्रभेद है। वहाँ की निर्जना कर्मशून्य होती है और यहाँ की निर्जनता मन के

दरवाजों को खोल देती है। ज्ञानदेव स्वस्थचित्त से बैठा शान्ति का आनन्द अपने मन में संग्रह कर रहा था किन्तु पद्मा डर रही थी कि कहीं अकेलापन से ऊब कर वह उलटे पैरों लौट न जाय।

वह सोच नहीं पाती थी कि कैसे वह "मंच" पर अपने को उपस्थित करे। किसी प्रधान-नायिका का अवतरण कार्य नाटककार के लिये कठिन होता है। सही समय पर, सही वातावरण में, सही सम्मान के साथ नाटक की प्रधान नायिका मंच पर उतरती है। जीवन में भी यह कशमकश प्रायः पैदा होती रहती है। समय-असमय का कोई ख्याल न करके किसी मुख्यपात्र पर नायक का प्रकट हो जाना सारे के सारे खेल को भद्दा बना डालता है और वह नायक भी कोई अच्छा प्रभाव नहीं डाल पाता, दर्शकों के मन पर। पद्मा भी इसी सोच-विचार में डूबने उतराने लगी कि—अब मुझे मंच पर उतरना चाहिये या नहीं। वातावरण में अनुकूलता है या नहीं। उसने चाय की एक प्याली उठा ली और वह मुस्कराती हुई कमरे के बाहर निकली। ज्ञानदेव अपने आप में खोया हुआ था। आहट पाकर उसका ध्यान भंग हुआ। उसने चौंक कर देखा—पद्मा आ रही है। पद्मा चिर-परिचिता की तरह ज्ञानदेव के निकट चली आई और चाय की प्याली आगे बढ़ा कर बोली—"लीजिये।"

यद्यपि ज्ञानदेव चाय से अलग रहता था, किन्तु वह इंकार नहीं कर सका। हाथ बढ़ा कर प्याली लेते हुए बोला— 'मैं तो नमस्कार करना भी भूल गया। आप एकाएक इस तरह आई कि ......।"

पद्मा के होठों पर लीलापूर्ण मुस्कराहट खेलने लगी। वह बोली—"खैर, जाते समय दो बार नमस्कार कर लीजियेगा। चाय पीजिये।"

दूसरी कुर्सी पर पद्मा बैठ गई। ज्ञानदेव ने धीरे से कहा—"मैंने तो कभी भी ......।" पद्मा फिर मुस्करा उठी और बोली—! "आप चाय नहीं पीते? विलायत में तो बिना चाय के आप रह सकते हैं किन्तु यहाँ तो असंभव है।"

ज्ञानदेव ने जीवन में पहिली बार चाय पीने का उपक्रम किया। अभ्यास नहीं रहने के कारण उसके होठों को कष्ट भी हुआ। पद्मा हँसी भरी आँखों से ज्ञानदेव के चेहरे की ओर देख रही थी। वह मन ही मन बोली—"यह बिल्कुल ही जंगल का भोला-भाला हिरण है। इसे एक अभिभावक चाहिये। किसी धूर्त अभिभावक के चंगुल में फँसा तो यह नष्ट हो जायगा।"

पद्मा का मन एकाएक करूणापूर्ण स्नेह से भर गया। काश, वह ज्ञानदेव की देखभाल करते रहने का वैध-अधिकार पा जाती।

ज्ञानदेव चाय-संकट से छुटकारा पाकर बोला—"उफ्, यह कितना कष्टदायक पेय है।"

पद्मा बोली—"तो आपने यह कष्ट क्यों उठाया ?"

ज्ञानदेव ने सोच कर जवाब दिया—"सैकड़ों बार चाय पीने से इंकार कर चुका हूँ, किन्तु आज इंकार करते नहीं बना। शायद मेरी अस्वीकृति में पूर्णशक्ति अभी नहीं पैदा हो सकी है।"

पद्मा प्रसन्न हुई। उसकी दी हुई चाय को ज्ञानदेव ने 'चाय' मान कर नहीं, पद्मा का दिया हुआ 'उपहार' मान कर सस्नेह स्वीकार कर लिया। पद्मा ने अपने अधिकार का अनुभव किया। किसी भी व्यक्ति का किसी पर अपना अधिकार जमा लेने से आनन्द—अहंकार-पूर्ण आनन्द प्राप्त होता ही है। उस समय इस आनन्द की सीमा नहीं रह जाती यदि जिस पर अधिकार किया गया हो वह मन के अत्यन्त निकट हो जैसा पद्मा के लिये ज्ञानदेव था।

पद्मा बोली—"पिता जी कहीं गये हैं। आ ही रहे होंगे।"

ज्ञानदेव बैठना चाहता था। पद्मा की इस उक्ति से कि "आ ही रहे होंगे" ज्ञानदेव को बैठने का एक सबल सहारा प्राप्त हो गया। पद्मा ने इसी मतलब से यह कहा भी था।

ज्ञानदेव ने कहा—"तो और प्रतीक्षा कर लेता हूँ।" पद्मा मन ही मन मनाने लगी कि—कम से कम एकाध घंटा उसके पिता

दरवाजों को खोल देती है। ज्ञानदेव स्वस्थचित्त से बैठा शान्ति का आनन्द अपने मन में संग्रह कर रहा था किन्तु पद्मा डर रही थी कि कहीं अकेलापन से ऊब कर वह उलटे पैरों लौट न जाय।

वह सोच नहीं पाती थी कि कैसे वह "मंच" पर अपने को उपस्थित करे। किसी प्रधान-नायिका का अवतरण कार्य नाटककार के लिये कठिन होता है। सही समय पर, सही वातावरण में, सही सम्मान के साथ नाटक की प्रधान नायिका मंच पर उतरती है। जीवन में भी यह कशमकश प्रायः पैदा होती रहती है। समय-असमय का कोई ख्याल न करके किसी मुख्यपात्र पर नायक का प्रकट हो जाना सारे के सारे खेल को भद्दा बना डालता है और वह नायक भी कोई अच्छा प्रभाव नहीं डाल पाता, दर्शकों के मन पर। पद्मा भी इसी सोच-विचार में डूबने उतराने लगी कि—अब मुझे मंच पर उतरना चाहिये या नहीं। वातावरण में अनुकूलता है या नहीं। उसने चाय की एक प्याली उठा ली और वह मुस्कराती हुई कमरे के बाहर निकली। ज्ञानदेव अपने आप में खोया हुआ था। आहट पाकर उसका ध्यान भंग हुआ। उसने चौंक कर देखा—पद्मा आ रही है। पद्मा चिर-परिचिता की तरह ज्ञानदेव के निकट चली आई और चाय की प्याली आगे बढ़ा कर बोली—"लीजिये।"

यद्यपि ज्ञानदेव चाय से अलग रहता था, किन्तु वह इंकार नहीं कर सका। हाथ बढ़ा कर प्याली लेते हुए बोला— 'मैं तो नमस्कार करना भी भूल गया। आप एकाएक इस तरह आईं कि ......।"

पद्मा के होठों पर लीलापूर्ण मुस्कराहट खेलने लगी। वह बोली—"खैर, जाने समय दो बार नमस्कार कर लीजियेगा। चाय पीजिये।"

दूसरी कुर्सी पर पद्मा बैठ गई। ज्ञानदेव ने धीरे से कहा—"मैंने तो कभी भी ......।" पद्मा फिर मुस्करा उठी और बोली—! "आप चाय नहीं पीते? विलायत में तो बिना चाय के आप रह सकते हैं किन्तु यहाँ तो असंभव है।"

ज्ञानदेव ने जीवन में पहिली बार चाय पीने का उपक्रम किया। अभ्यास नहीं रहने के कारण उसके होठों को कष्ट भी हुआ। पद्मा हँसी भरी आँखों से ज्ञानदेव के चेहरे की ओर देख रही थी। वह मन ही मन बोली—"यह बिल्कुल ही जंगल का भोला-भाला हिरण है। इसे एक अभिभावक चाहिये। किसी धूर्त अभिभावक के चंगुल में फँसा तो यह नष्ट हो जायगा।"

पद्मा का मन एकाएक करूणापूर्ण स्नेह से भर गया। काश, वह ज्ञानदेव की देखभाल करते रहने का वैध-अधिकार पा जाती।

ज्ञानदेव चाय-संकट से छुटकारा पाकर बोला—"उफ्, यह कितना कष्टदायक पेय है।"

पद्मा बोली—"तो आपने यह कष्ट क्यों उठाया ?"

ज्ञानदेव ने सोच कर जवाब दिया—"सैकड़ों बार चाय पीने से इंकार कर चुका हूँ, किन्तु आज इंकार करते नहीं बना। शायद मेरी अस्वीकृति में पूर्णशक्ति अभी नहीं पैदा हो सकी है।"

पद्मा प्रसन्न हुई। उसकी दी हुई चाय को ज्ञानदेव ने 'चाय' मान कर नहीं, पद्मा का दिया हुआ 'उपहार' मान कर सस्नेह स्वीकार कर लिया। पद्मा ने अपने अधिकार का अनुभव किया। किसी भी व्यक्ति का किसी पर अपना अधिकार जमा लेने से आनन्द—अहंकार-पूर्ण आनन्द प्राप्त होता ही है। उस समय इस आनन्द की सीमा नहीं रह जाती यदि जिस पर अधिकार किया गया हो वह मन के अत्यन्त निकट हो जैसा पद्मा के लिये ज्ञानदेव था।

पद्मा बोली—"पिता जी कहीं गये हैं। आ ही रहे होंगे।"

ज्ञानदेव बैठना चाहता था। पद्मा की इस उक्ति से कि "आ ही रहे होंगे" ज्ञानदेव को बैठने का एक सबल सहारा प्राप्त हो गया। पद्मा ने इसी मतलब से यह कहा भी था।

ज्ञानदेव ने कहा—"तो और प्रतीक्षा कर लेता हूँ।" पद्मा मन ही मन मनाने लगी कि—कम से कम एकाध घंटा उसके पिता

अभी नहीं लौटे । जिस पिता के कहीं जाने पर पद्मा छटपट करने लगती थी उसी पिता के लौट आने के भय से वह डरने लगी—हाय रे मानव, तेरा चरित्र अद्भुत है ।

पद्मा ज्ञानदेव से लन्दन, जर्मनी, फांस, इटली, अमेरिका आदि का हाल पूछती रही । उसने यह भी पूछा कि वह इतनी लम्बी अवधि तक पिता से अलग कैसे रहा ।

ज्ञानदेव का चेहरा गम्भीर हो गया । उसने कहा—"देवी, मा मेरे साथ थीं, श्रद्धा के रूप में, शान्ति के रूप में ।"

पद्मा का हृदय उमड़ पड़ा । उसने देखा—अच्छी तरह देखा कि मां को स्मरण करते ही ज्ञानदेव की आँखें भी भर आईं ।

पद्मा को ऐसा लगा कि उसने एक मर्मस्पर्शी प्रश्न पूछ कर ज्ञानदेव के हृदय को अकारण ही निचोड़ डाला । वह पछताने लगी । अपने प्रिय को कष्ट पहुँचाना किसे प्रिय है । इसी समय सामने की सड़क पर एक ताँगा नजर आया । पद्मा बोली—"पिता जी आ रहे हैं । आप बराबर आते रहिये—मुझे बहुत कुछ आप से कहना है ।" ज्ञान-देव जैसे चौंक पड़ा—वह किसी विचार में डूब गया था । वह बोला—याद करते ही आ जाऊँगा । प्रसन्न होकर पद्मा चली गई । शास्त्री जी अपनी पत्नी और पुत्री के साथ आ गये । ज्ञानदेव ने जब प्रणाम किया तो वे कहने लगे—! "ज्ञान, तुम्हें बैठना पड़ा ।"

ज्ञानदेव बोला—यह भी मेरा सौभाग्य ही है जो इस ज्ञान-मन्दिर में कुछ क्षण विश्राम कर सका ।

जादू की छड़ी

भवानी बाबू ने अपने कमरे के दरवाज़े को अच्छी तरह बंद करके इधर-उधर देखा, और फिर बैठे हुए व्यक्ति से कहा—"हाँ, बात क्या है, साफ़-साफ़ कहो ।"

भवानी बाबू का कारोबार उनकी प्रबल प्रतिभा के ही ज़ोर पर चलता था। वह थे तो घर के दरिद्र, किंतु बाहर शान ऐसी थी कि देखनेवाला चक्कर में आ जाता था। हर फ़न के उस्ताद उनको घेरे रहते थे। पेशेवर राजनीतिज्ञ, चोर, डाकू, पुलिस के पंजे में फँसे हुए पापी, अनाचार-व्यभिचार के अपराधी, ग़बन करनेवाले और चोरबाज़ारी के सेठ, चंदा चाटने और घोंट जानेवाले, नौकरी की खोज में शहीद होनेवाले—कहाँ तक गिनाया जाय वह सभी तबके के व्यक्तियों के आश्रयास्थल थे। प्रभावशाली व्यक्तियों और हाकिम-हुक्कामों तक की हाज़िरी उनके डेरे पर रोज़ होती थी।

उस दिन भवानी बाबू के यहाँ आया था एक नोट बनानेवाला। भवानी बाबू का द्वार सबके लिए खुला था, किसी के लिए रुकावट न थी। वह कभी इनकार नहीं करते थे, किसी को निराश नहीं करते

थे, किसी तरह की भी पैरवी से मुँह नहीं मोड़ते थे, वह चाहे धरती पर की हो, या नरक की।

वह नोट बनानेवाला व्यक्ति, जो भवानी बाबू के सामने आया था, उनका परिचित था। काला रंग और फटेहाल—यही उसका बाह्य परिचय था। वह लगातार बीड़ी पीता रहता था, और उसके सारे शरीर से बीड़ी की ऐसी बदबू आती थी कि किसी का भी उसके निकट बैठना संभव न था। दुबला शरीर और भीतर घुसी हुई पीली आँखें किसी भी मनुष्य के हो सकती हैं, किंतु उस व्यक्ति के शरीर से मानो जघन्यता की वर्षा होती रहती थी। उसका नाम था—जग्गन।

भवानी बाबू ने जग्गन से पूछा—"कहो, क्या मामला है ?"

जग्गन ने कहा—"दस हज़ार का मामला है। आप समझ लीजिए।"

भवानी बाबू ने पूछा—"कहाँ शिकार मारा यार, यह तो बतलाओ ?"

जग्गन ने प्रसन्नता प्रकट की। उसने अपने गंदे दाँत निकालकर और हाथ जोड़कर कहा—"आपने ही तो रास्ता बतलाया था हुज़ूर। काम बन गया। अब आप मदद कीजिए, तो मैदान फ़तह हो।"

मदद देने के लिए तो भवानी बाबू का अवतार ही हुआ था। वह उत्साहित होकर कहने लगे—"जो कहो, वही करूँ।"

जग्गन बोला—"सेठ लक्ष्मीचंद दस हज़ार की रकम दुगुनी बनाने के लिए दे रहा है। शहर के बाहर जो जंगल है, वहीं वह आज रात को दस बजे रुपयों के साथ आवेगा। अब इंतज़ाम ऐसा होना चाहिए कि दस हज़ार के नोटों का बंडल हाथ लगे।"

भवानी बाबू ने सोचकर कहा—"कोई चिंता न करो। व्यवस्था किए देता हूँ। तुम तो रहोगे ही, पुलिस जाकर जाली नोट बनाने

थे, किसी तरह की भी पैरवी से मुँह नहीं मोड़ते थे, वह चाहे धरती पर की हो, या नरक की ।

वह नोट बनानेवाला व्यक्ति, जो भवानी बाबू के सामने आया था, उनका परिचित था । काला रंग और फटेहाल—यही उसका वाह्य परिचय था । वह लगातार बीड़ी पीता रहता था, और उसके सारे शरीर से बीड़ी की ऐसी बदबू आती थी कि किसी का भी उसके निकट बैठना संभव न था । दुबला शरीर और भीतर घुसी हुई पोली आँखें किसी भी मनुष्य के हो सकती हैं, किंतु उस व्यक्ति के शरीर से मानो जघन्यता की वर्षा होती रहती थी । उसका नाम था—जग्गन ।

भवानी बाबू ने जग्गन से पूछा—"कहो, क्या मामला है ?"

जग्गन ने कहा—"दस हज़ार का मामला है । आप समझ लीजिए ।"

भवानी बाबू ने पूछा—"कहाँ शिकार मारा यार, यह तो बतलाओ ?"

जग्गन ने प्रसन्नता प्रकट की । उसने अपने गंदे दाँत निकालकर और हाथ जोड़कर कहा—"आपने ही तो रास्ता बतलाया था हुज़ूर । काम बन गया । अब आप मदद कीजिए, तो मैदान फ़तह हो ।"

मदद देने के लिए तो भवानी बाबू का अवतार ही हुआ था । वह उत्साहित होकर कहने लगे—"जो कहो, वही करूँ ।"

जग्गन बोला—"सेठ लक्ष्मीचंद दस हज़ार की रकम दुगुनी बनाने के लिए दे रहा है । शहर के बाहर जो जंगल है, वहीं वह आज रात को दस बजे रुपयों के साथ आवेगा । अब इंतज़ाम ऐसा होना चाहिए कि दस हज़ार के नोटों का बंडल हाथ लगे ।"

भवानी बाबू ने सोचकर कहा—"कोई चिंता न करो । व्यवस्था किए देता हूँ । तुम तो रहोगे ही, पुलिस जाकर जाली नोट बनाने

के अपराध में तुम्हें पकड़ लेगी। लक्ष्मीचंद भी पकड़ा जायगा। हम नोटों का बंडल लेकर उसे छोड़ देंगे, और तुम भी दो दिन बाद आज़ाद हो जाना।"

जग्गन बोला—"यह बात ठीक नहीं होगी, भवानी बाबू! और हिस्सेदार पैदा हो जायँगे, और रकम बँट जायगी। आधा तो मैं लूँगा, और आधे में आप जितने हिस्सेदार चाहे पैदा कर लें।"

भवानी बाबू बोले—"खर्च काटकर हम आधा-आधा बाँटें। खर्च तो लगेगा ही।"

जग्गन और भवानी बाबू में बात तय हो गई। टैक्सी मँगवाकर भवानी बाबू गोटी बैठाने चले गए, और जग्गन भी अपने को अंधकार में छिपाता हुआ किसी ओर चल पड़ा। छः बजने का समय था, और दस बजे रात को जंगल में नोट दुगने करने का दुखांत नाटक होनेवाला था। लक्ष्मीचंद भवानी बाबू का गहरा मित्र था, किंतु उस दिन की बात ही दूसरी थी। दलाल और धन बटोरनेवाले का कोई मित्र नहीं होता। वह अपने एकलौते बेटे का गला काटकर भी पैसा कमा सकता है, और पत्नी तथा कन्या की प्रतिष्ठा पर भी बाज़ी लगा सकता है। जो धन का भक्त बन जाता है, वह किसी का भी नहीं रह जाता। जो पैसा दे, वही उसका अपना है, जहाँ से पैसा मिले, वही स्थान उसको प्यारा है, जिस उपाय से धन प्राप्त हो, वही उसके लिए कर्त्तव्य बन जाता है। भवानी बाबू ऐसे ही लोगों में से थे। उन्होंने अपने जीवन में न तो बाप को पहचाना था और न माता को। भवानी बाबू ने केवल धन को पहचाना था। कमाना और उड़ाना उनका काम था – पानी की तरह पैसा बटोरते थे, और कूड़े की तरह उसे फेंकते थे।

रात खिसकने लगी और वह समय निकट आ गया, जब जग्गन को निश्चित स्थान पर पहुँचना था। वह जंगल वही था, जो जॉर्ज

साहब की कोठी के निकट पड़ता था। एक ओर से जग्गन उस जंगल में घुसा, और दूसरी ओर से लक्ष्मीचंद सेठ। सेठ के साथ एक आदमी और था, किंतु जग्गन था अकेला ही।

तीनों व्यक्ति जब एक जगह बैठ गए, तो लक्ष्मीचंद धीरे से बोला—"जल्दी करो। बीस हज़ार के नोट गिन दो, और अपने रुपए सँभाल लो।"

जग्गन ने कम्बल उतारकर काग़ज़ का एक बंडल निकाला। लक्ष्मीचंद ने कहा—"नोटों को गिन डालो, ज़रा देख तो लूँ, वे कैसे उतरे हैं।"

जग्गन धीरे से बोला—"माल चोखा है सेठजी, यह देखो।"

उसने बंडल से तीन-चार नोट निकालकर सेठजी के सामने रख दिए। टार्च की रोशनी से परीक्षा ली गई। सभी ठीक थे—वाटर-मार्क तक साफ़ था। जग्गन ने फिर सात-आठ नोट निकालकर सामने रख दिए और कहा—"इन्हें देखो। बीस साल से यही काम कर रहा हूँ।" सेठजी ने जब इन नोटों को भी देख लिया, तो जग्गन ने दस-बारह नोट निकालकर फिर पेश कर दिए। सभी नोट सौ-सौ के थे।

करीब तीस नोट लक्ष्मीचंद के आगे रक्खे हुए थे।

जग्गन ने कहा—"और नोट दिखलाऊँ क्या? तुमने मुझे ठग समझ लिया है?"

सेठजी लज्जित होकर बोले—"राम-राम, क्या बोलते हो उस्ताद!"

जग्गन बोला—"अब अपनी रकम गिनो, तो मैं दो-सौ नोट गिनकर हवाले कर दूं।"

सेठजी ने साथवाले व्यक्ति को इशारा किया। उसने अपने कोट के भीतर से नोटों का बंडल जैसे ही निकाला, वैसे ही जग्गन की नाक तोप की तरह दहाड़ उठी। सूने जंगल में उसकी छींक गूंज गई। सेठजी ने अपने नोटों को जग्गन के सामने गिनना शुरू किया।

नोटों की गिनती शुरू ही हुई थी कि चार-पाँच व्यक्ति छिपते हुए कहीं से आए और सेठजी पर टूट पड़े। किसी ने जग्गन को दबोच लिया, तो किसी ने सेठजी को। इन पर छुरे से वार भी किया गया। जग्गन ने भी चोट खाई। सेठजी भी आहत हुए। उनके साथ जो व्यक्ति आया था, वह भाग गया। पल भर में ही लुटेरे ग़ायब हो गए। रह गए उस निर्जन जंगल में कराहते जग्गन और सेठजी। दोनों एक दूसरे को सहारा देते हुए जंगल से विदा हुए। सेठजी के दाहने हाथ में चोट थी, और जग्गन के एक पैर में कुछ खरोंच आ गई थी।

सेठजी का दस हज़ार?

लुटेरे दस हज़ार का बंडल लेकर चलते बने। सेठजी इतना घबरा उठे कि उनकी बोलती बंद हो गई थी। इस दुर्घटना की सूचना पुलिस को देने की स्थिति में भी बेचारे न थे।

दोनों मित्र ठोकरें खाते जंगल के बाहर आए। लक्ष्मीचंद ने कराहकर जग्गन से कहा—"हाय, मैं तो बर्बाद हो गया। महाजन का रुपया था।"

जग्गन बोला—"ऐसा धोखा कभी नहीं खाया था। आप जिसे साथ लेकर आए थे, वह कौन था?"

सेठजी बोले—"मेरा विश्वासी पियादा था।"

जग्गन ने कहा—"समझ गया। तुम्हीं ने यह जाल रचा। यह काम तुमने बुरा किया सेठ।"

लक्ष्मीचंद और भी घबरा उठे—लुटे भी, और कलंक की कालिमा ऊपर से।

जग्गन फिर गुर्रा कर बोला—"मैं समझ लूँगा। यह चालबाजी—उफ़।"

क्रोध और दुःख से लक्ष्मीचंद का बुरा हाल था। बेचारे भीतर-ही-भीतर उबल रहे थे।

एकाएक आपे से बाहर होकर जग्गन चिल्लाया—"बेईमान कहीं का। लुटवा दिया।"

दोनों खुली सड़क पर आ गए थे। जग्गन इतने ज़ोर से चिल्लाया क दो-चार आदमी आकर खड़े हो गए। सेठजी थर-थर काँपने लगे–यह क्या हुआ ?

जग्गन ने अपना विराट् रूप दिखलाया और कहा—"चुप क्यों हो जी ?"

इतना कहकर जग्गन ने सेठजी का दामन पकड़ा और कहा—'भाइयो, इस बेईमान सेठ से पूछिए। इसने मुझे बर्बाद कर दिया।"

जग्गन रोने लगा, और सेठजी का दामन झकझोरते हुए कहा—"देखो भाइयो, इसकी बाँह में छुरे की चोट है, मैं भाग्य से बचा, मगर देख लो, जाँघ से खून निकल रहा है।"

लोगों ने देखा कि सेठजी की बाँह से खून टपक रहा है। पाँच-सात आदमी और आ गए। छोटी-सी भीड़ जमा हो गई। सेठजी की बोलती बंद थी। भीड़ में से कोई कह रहा था—"इन्हें थाने पर ले चलो, तो कोई कह रहा था—"अस्पताल पहुँचा दो।"

सेठजी न तो थाने जाने को प्रस्तुत थे, और न अस्पताल। इसी समय किसी ओर से भवानी बाबू टैक्सी पर पहुँच गये। टैक्सी रुकवाकर उन्होंने कहा—"अरे, यह क्या तमाशा है ? मैं तो स्टेशन से आ रहा था। दूर से भाई लक्ष्मीचंद को देखकर रुक गया।"

सेठजी जैसे जी गए। अब वह बोले—"डेरे पर चलिए, तो कथा सुनाऊँ।"

भवानी बाबू ने कहा—"यह कौन है, जी ?"

जग्गन ने सलाम करके कहा—"हुजूर, मैं लुट गया। सेठजी ने मुझे तबाह कर डाला।"

भवानी बाबू ने कहा—"तुम भी चलो। वहीं सारी बातें सुनूँगा।"

सेठजी और जग्गन, दोनो को मोटर पर बैठाकर भवानी बाबू चलते बने। भीड़ भी तितर-बितर हो गई।

अपने डेरे पर आकर पँच के रूप में भवानी बाबू बैठे, और बारी-बारी से दोनो पतितों ने अपना-अपना दुखड़ा गाया। भवानी बाबू ने अत्यंत कठोर मुद्रा धारण की, और जग्गन से कहा—"यदि मैं होता, तो तुम्हें गोली से उड़ा देता। छिः! तुम इतने खतरनाक आदमी हो।"

जग्गन भवानी बाबू के पैर पकड़कर बोला—"आप सब कुछ कर सकते हैं। अब ऐसी ग़लती न होगी।"

भवानी बाबू ने लक्ष्मीचंद की ओर लौटकर कहा—"आप लखपति व्यापारी हैं। आपको ऐसे लोगों से दूर ही रहना चाहिए।"

बाँह की पीड़ा से सेठजी कातर हो रहे थे। भवानी बाबू के उपदेश और लानत-मलामत ने उन्हें रुला दिया। हाथ जोड़कर कहने लगे—"ज़रूर भूल हो गई। अब कान पकड़ता हूँ। जो भुगतना था, भुगत चुका।" अब जग्गन की बारी आई। वह बोला—"मेरा क्या होगा मालिक!"

भवानी बाबू गंभीर चिंतन में लग गए। कुछ देर तक ध्यानस्थ रहकर बोले—"तुम बाहर ठहरो, मैं सेठजी से परामर्श करना चाहता हूँ।"

जग्गन झूठमूठ लँगड़ाता हुआ कमरे से चला गया, जैसे उसकी एक टाँग बिलकुल ही टूट गई हो।

भवानी बाबू ने सेठजी को धमकाया, और कहा—"जेल की हवा खानी पड़ेगी लक्ष्मी भैया! वह साला बदनाम आदमी है। दो-चार साल जेल की हवा भी खा चुका है। तुम फँसे, तो समूल रसातल चले जाओगे, यह सोच लो।"

लक्ष्मीचंद रोकर बोले—"उपाय बतलाओ भाई साहब! अब तो मैं फँस ही चुका हूँ, तो जो भी भुगतना पड़े, वही सही।"

भवानी बाबू ने कहा—"कुछ दे-दिलाकर उसका मुँह बंद कर दो।"

बात तय हो गई। पाँच सौ नकद भवानी बाबू ने सेठ की ओर से जग्गन को देकर कहा—"देखो, अगर फिर कभी यह शैतानी तुमने की, तो जान से हाथ धोना पड़ेगा। मैं सेठ-महाजन नहीं हूँ। मुझे बदनामी का भी डर नहीं है। रास्ते में पकड़कर गोली मार दूँगा।"

जग्गन भवानी बाबू के पैर पकड़कर बोला—"माई-बाप, मैं आज ही कलकत्ता छोड़ा जाता हूँ। फिर मेरी शकल देखिएगा, तो कुत्तों से नुचवा दीजिएगा।"

पाँच सौ नकद लेकर जग्गन चला गया। सेठजी से भवानी बाबू ने कहा—"जान बची, लाखों पाए। सेठजी, सस्ते छूट गए।"

हाथ जोड़कर लक्ष्मीचंद ने कहा—"भैया, आप सहारा न देते, तो धन तो गँवाया ही था, इज्ज़त भी चूल्हे में चली जाती।"

भवानी बाबू ने सेठजी को घर तक पहुँचा दिया। रात आधी से अधिक समाप्त हो चुकी थी। दो घूंट पीकर वह आराम की नींद सो गए।

टिंचर बिंजोइन की चिप्पी लगाकर लक्ष्मीचंद ने अपनी बाँह का खुद इलाज कर लिया। दिन चढ़ते ही भवानी बाबू का तकाज़ा पहुँचा—पाँच सौ भेजिए।

एक बार फिर लक्ष्मीचंद की आँखों में आँसू आ गए। दस हज़ार की चोट बैठी, छुरे का वार भी खाया, और उस पर यह पाँच सौ का तुर्रा! पाई-पाई जोड़नेवाले सेठजी की छाती सिहर गई। सौभाग्य ही कहिए कि मुफ्त विष नहीं मिलता, नहीं तो लक्ष्मीचंद की अरथी बँध जाती। काँख-कूँखकर सेठजी ने कर्ज़ भुगतान किया, और भवानी बाबू से अपना पिंड छुड़ाया—यह साढ़े दस हज़ार का सौदा था।

दूसरे दिन रात को, गीदड़ की तरह दाहिने-बाएँ झाँकता हुआ जग्गन भवानी बाबू के कमरे में घुसा। भवानी बाबू आनंद से बैठे

मेज़ पर ही 'ठेका' बजा रहे थे, और ग़ालिब की कोई लाइन गुनगुना रहे थे कि भूत की तरह जग्गन हाज़िर हुआ।

भवानी बाबू की त्योरियाँ बदल गई, पर वह शांत रहे। अपने मनोभावों को दबाने की कला में उनके जैसे लोग पारंगत रहते हैं। साक्षात् दरिद्रता की मूर्ति बना, जग्गन आकर एक कुर्सी पर बैठ गया। उसके गंदे व्यक्तित्व से वह कमरा घिनौना हो गया। भवानी बाबू ने रूखे स्वर में पूछा—"किधर आए जी ?"

इस सवाल ने जग्गन को सिर से पैर तक दहला दिया। वह हक्का बक्का होकर भवानी बाबू का गोल-मटोल चेहरा देखने लगा। उसकी बोलती बंद हो गई।

साहस करके जग्गन बोला—"सरकार ही की खिदमत में आया था। कल वाला हिसाब हो जाता तो . . .।"

भवानी बाबू बोले—"इस समय भी तुम पीकर ही आए हो ? मुझे शराब से बड़ी नफ़रत है। कमरे से बाहर जाओ, उठो।"

इस ज़ोर से भवानी बाबू ने डाँट बतलाई कि एक क्षण में उछलकर जग्गन कमरे के बाहर हो गया, मानो आवाज़ के धक्के से ही उड़ गया हो।

अपने बिखरे हुए साहस को समेटकर जग्गन फिर दरवाज़े पर आकर खड़ा हो गया, और गिड़गिड़ाया—"मालिक भूल हो गई। अब हुक्म हो।"

भवानी बाबू ने गुर्राकर जवाब दिया—"अभी तो मैंने उन लोगों को देखा भी नहीं। बाहर के लोग थे। डरकर भाग गए होंगे। दो-चार दिन बाद आना।"

जग्गन चला गया, और एक सप्ताह बाद आया, तो भवानी बाबू ने कहा—"भाग गए साले, उन लोगों ने धोखा दिया। सालों को जेल भेजवाकर ही दम लूँगा। गुंडे-बदमाशों का एतबार क्या।"

जान बच ही गई। पाँच सौ नकद भवानी बाबू ने सेठ की ओर से जग्गन को देकर कहा—"देखो, अगर फिर कभी यह शैतानी सुनने को, तो जान से हाथ धोना पड़ेगा। मैं सेठ-महाजन नहीं हूँ। मुझे मुकदमों का भी डर नहीं है। रास्ते में पकड़कर गोली मार दूँगा।"

जग्गन भवानी बाबू के पैर पकड़कर बोला—"माई-बाप, मैं आज ही कलकत्ता चला जाता हूँ। फिर मेरी शकल देखिएगा, तो कुत्तों से नुचवा दीजिएगा।"

पाँच सौ नकद लेकर जग्गन चला गया। सेठजी से भवानी बाबू ने कहा—"जान बची, लाखों पाए। सेठजी, सस्ते छूट गए।"

हाथ जोड़कर लक्ष्मीचंद ने कहा—"भैया, आप सहारा न देते, तो धन तो गँवाया ही था, इज्जत भी चूल्हे में चली जाती।"

भवानी बाबू ने सेठजी को घर तक पहुँचा दिया। रात आधी से अधिक समाप्त हो चुकी थी। दो घूंट पीकर वह आराम की नींद सो गए।

टिंचर बिजोइन की चिप्पी लगाकर लक्ष्मीचंद ने अपनी बाँह का खुद इलाज कर लिया। दिन चढ़ते ही भवानी बाबू का तकाज़ा पहुँचा—पाँच सौ भेजिए।

एक बार फिर लक्ष्मीचंद की आँखों में आँसू आ गए। दस हज़ार की चोट बैठी, छुरे का वार भी खाया, और उस पर यह पाँच सौ का तुर्रा! पाई-पाई जोड़नेवाले सेठजी की छाती सिहर गई। सौभाग्य ही कहिए कि मुफ्त विष नहीं मिलता, नहीं तो लक्ष्मीचंद की अरथी बँध जाती। काँख-कूँखकर सेठजी ने कर्ज भुगतान किया, और भवानी बाबू से अपना पिंड छुड़ाया—यह साढ़े दस हज़ार का सौदा था।

दूसरे दिन रात को, गीदड़ की तरह दाहिने-बाएँ झाँकता हुआ जग्गन भवानी बाबू के कमरे में घुसा। भवानी बाबू आनंद से बैठे

मेज़ पर ही 'ठेका' बजा रहे थे, और ग़ालिब की कोई लाइन गुनगुना रहे थे कि भूत की तरह जग्गन हाज़िर हुआ ।

भवानी बाबू की त्योरियाँ बदल गईं, पर वह शांत रहे । अपने मनोभावों को दबाने की कला में उनके जैसे लोग पारंगत रहते हैं । साक्षात् दरिद्रता की मूर्ति बना, जग्गन आकर एक कुर्सी पर बैठ गया । उसके गंदे व्यक्तित्व से वह कमरा घिनौना हो गया । भवानी बाबू ने रूखे स्वर में पूछा—"किधर आए जी ?"

इस सवाल ने जग्गन को सिर से पैर तक दहला दिया । वह हक्का बक्का होकर भवानी बाबू का गोल-मटोल चेहरा देखने लगा। उसकी बोलती बंद हो गई ।

साहस करके जग्गन बोला—"सरकार ही की खिदमत में आया था । कल वाला हिसाब हो जाता तो . . .।"

भवानी बाबू बोले—"इस समय भी तुम पीकर ही आए हो ? मुझे शराब से बड़ी नफ़रत है । कमरे से बाहर जाओ, उठो ।"

इस ज़ोर से भवानी बाबू ने डाँट बतलाई कि एक क्षण में उछल-कर जग्गन कमरे के बाहर हो गया, मानो आवाज़ के धक्के से ही उड़ गया हो ।

अपने बिखरे हुए साहस को समेटकर जग्गन फिर दरवाज़े पर आकर खड़ा हो गया, और गिड़गिड़ाया—"मालिक भूल हो गई । अब हुक्म हो ।"

भवानी बाबू ने गुर्राकर जवाब दिया—"अभी तो मैंने उन लोगों को देखा भी नहीं । बाहर के लोग थे । डरकर भाग गए होंगे । दो-चार दिन बाद आना ।"

जग्गन चला गया, और एक सप्ताह बाद आया, तो भवानी बाबू ने कहा—"भाग गए साले, उन लोगों ने धोखा दिया । सालों को जेल भेजवाकर ही दम लूँगा । गुंडे-बदमाशों का एतबार क्या ।"

जग्गन जहाँ खड़ा था, वहीं हाय करके बैठ गया। उसमें इतनी भी ताब न थी कि कुछ बोले। भवानी बाबू ने कहा—"यह कैसा नाटक है? मैं ऐसी बातों से नहीं डरता।"

जग्गन उठ खड़ा हुआ, और रोने लगा। जब वह रो चुका, तो बोला—"तो अब मेरा आना बेकार है। जैसा कहिए।"

भवानी बाबू गरजकर बोले—"किसी साले का मैंने कर्ज़ खाया है क्या? जो बात थी, कह दी। मेरा काम नहीं है कि गुंडों के पीछे डंडा लेकर दौड़ता फिरूँ। ऐसे काम में तो धोखा होता ही है।"

जग्गन फिर बोला—"आपने नहीं मालिक, मैंने धोखा खाया।"

दो सौ रुपए के नोट फेंककर भवानी बाबू बोले—"यह लो, मैं ही दंड भुगतना हूँ। तुम पुराने साथी हो। दूसरा कोई होता, तो पुलिस के हवाले कर देता।"

नोट उठाकर जग्गन ने कहा—"आप ही का दिया खाता हूँ सरकार! आपकी निगाह रहेगी, तो फिर ग़रीब का काम बन जायगा।"

भवानी बाबू ख़ुश होकर बोले—"जब ज़रूरत हो, आ जाना। अभी जाओ, कई साहब आनेवाले हैं। गली-गली जाना।"

सलाम करके जग्गन चला गया। वह सीधे शराबख़ाने पहुँचा और वहाँ से जुआख़ाने। रात-भर में सब कुछ हारकर जुआख़ाने में ही चटाई पर लुढ़क गया।

हारे हुए जुआड़ी को दो हाथ जगह भी सोने के लिए काफ़ी होती है।

भवानी बाबू के पालतुओं ने ठीक समय पर लूट का माल ज्यों-का-त्यों पहुँचा दिया।

भवानी बाबू ने उन्हें पूरा पुरस्कार देकर तृप्त किया, और आप एक सभा में चले गए, जहाँ उन्हें भाषण देना था। एक बड़े नेता सदारत कर रहे थे। भवानी बाबू ने अपने भाषण में कहा—"देश

कैसे ऊपर उठे । हमारा नैतिक स्तर नीचे गिरता जा रहा है । हमें तो उदाहरण बनना चाहिए । उपदेश देने से काम नहीं चलेगा ।"

सभापतिजी ने भवानी बाबू का परिचय देते हुए कहा—"यह जो भाई आपके सामने हैं, उन रत्नों में हैं, जो अपनी जोड़ नहीं रखते । इनके चरित्र और इनकी मूल्यवान सेवाओं का मैं क्या वर्णन करूँ । जेल में हम दोनों साथ-साथ रहे, और साथ ही कमाले भी झेले । ज्यों-ज्यों अन्याय और अत्याचार बढ़ता गया, इनका चरित्र निखरता गया । यह आपके इलाके के सिपाही हैं । ऐसे सिपाही, जो अपनी ईमानदारी, कर्त्तव्यपरायणता, हिम्मत, लगन, सत्यप्रियता आदि गुणों के कारण आज नहीं, तो कल हमारे-आपके सबके लिए आदरणीय हो जायँगे ।"

सभापतिजी जब खूब बोल चुके, तब भवानी बाबू ने जनता को धन्यवाद दिया और कहा—"हमारे सभापतिजी दान में कर्ण, त्याग में दधीचि, साहस में मेजिनी, गैरीवाल्डी, नेपोलियन कितने नाम गिनाऊँ, और कितने गुणों का वर्णन करूँ—ऐसे हैं आपके नेता सभापतिजी ।"

इस तरह परस्पर पुष्पांजलि आदान-प्रदान करके दोनों महापुरुष एक ही मोटर पर लौट पड़े । उसी सभा में भवानी बाबू के मित्र जग्गन भी विराजमान थे । उन्होंने अपने एक पार्टनर से कहा—"दोनों दलाल हैं । मैं कहता हूँ दोस्त, भवानी-जैसा बेईमान और चोर इस राज्य में दूसरा नहीं मिलेगा ।"

सभा समाप्त हो गई, और लोग बिखर गए । भवानी बाबू नेताजी के साथ मोटर पर चले, और उनकी कोठी पर पहुँचकर बोले—"अगर आपको कहीं जाना न हो, तो मोटर एक घंटे के लिए दे दीजिए । कुछ ज़रूरी काम है ।"

नेताजी ने मंजूरी दे दी, और मुस्कुराकर भवानी बाबू की ओर देखा । भवानी बाबू भी मुस्कुराकर रह गए । मन की भाषा मन ही

समझता है। भवानी बाबू मोटर पर शान से बैठकर इस दूकान से उस दूकान पर घूमने लगे। वह मोटर से स्वयं न उतरकर दूकानदार को ही बुलवाते और आर्डर देते। कहीं से मक्खन, कहीं से अंडे, कहीं से घी, कहीं से बिस्कुट, इस तरह पचास-साठ रुपए का सौदा करके एक सेठजी की शानदार इमारत के पोर्टिको में घुसे। सेठजी भवानी बाबू के पुराने 'ग्राहक' थे।

लाख, कोयला, अबरक, लोहा, सीमेंट, मोटर-बस चलाने के लिए नई लाइन, स्टेशनों पर चाय-नाश्ता बेचने की ठेकेदारी और विधान-सभा, विधान-परिषद्, राज्य-सभा और लोक-सभा की सदस्यता आदि सभी उत्तम और मध्यम विषयों पर चर्चा हुई। अंत में इनकम-टैक्स, सेल्स-टैक्स आदि की चर्चा भी हुई। भवानी बाबू ने इनमें से एक सौदा पटाया, और यह तय पाया कि तीन हज़ार खर्च के लिए पेशगी न्योछावर किया जायगा, और काम हो जाने के साथ ही पंद्रह हज़ार।

भवानी बाबू ने कह दिया—"दलाली का पैसा खाना मैं हराम समझता हूं। बड़े लोगों की चर्चा करना उचित नहीं है। आप पूछिएगा भी मत।"

वहाँ से मामला सीधा करके भवानी बाबू की गाड़ी उनके डेरे पर पहुँची, वहाँ बीसों व्यक्ति उनके शुभागमन की बाट जोह रहे थे। झूमते हुए भवानी बाबू मोटर से उतरकर चले, और किसी को कल, किसी को परसों, किसी को सुबह और किसी को अगले सप्ताह कहते हुए घर के भीतर घुस गए।

शानदार मोटर पहचानी हुई थी। अगोरनेवालों को विश्वास हो गया कि भवानी बाबू जो चाहें, कर सकते हैं—साहब से जब इनका इतना अपनापन है, तो फिर शक की गुंजाइश ही कहाँ रह जाती है। इसी चक्कर में धर्मनाथ बाबू का भी हुलिया तंग हो गया था। भवानी बाबू कमरे में आकर बैठ गए। एक-एक करके शेरवानी-

पाजामावाले, कोट-पैंटवाले और धोती-कुर्तावाले जुटने लगे। लखपति-करोड़पति सभी आए। भवानी बाबू का दरबार जगमगा उठा—जादू की छड़ी घूमने लगी। सबके सिर पर भवानी बाबू का जादू चढ़कर बोलने लगा।

मन की दुनिया

ज्ञानदेव के लिए शास्त्रीजी का घर गुरु-आश्रम बन गया। वह श्रद्धापूर्वक वहाँ जाता, और गंभीर अध्ययन करता। शास्त्रीजी का अगाध स्नेह ज्ञानदेव के लिए सब कुछ था।

पद्मा भी ज्ञानदेव की निकटता पाकर आत्मतोष का अनुभव करती, किंतु उसने अपने मन पर मानो वज्र का आवरण चढ़ा रखा था, फिर भी मन की दुनिया तो बसती ही जाती थी। वह प्रयास करके ज्ञानदेव को अपने मन से जितना ही दूर रखती, वह उतने ही वेग से उसके अंतस्तर में प्रवेश करता जाता, जिसका ज्ञान पद्मा को न था।

एक दिन पद्मा ने सुना कि ज्ञानदेव फिर विदेश जाने की बात सोच रहा है। उसका जी यहाँ नहीं लगता। वह शायद अब भारत लौटे भी नहीं। पद्मा का हृदय मलाल से भर गया। उसे ऐसा लगा कि उसकी सेवा में, अपनापन में या रूप में कोई बल नहीं है। एक स्नेह-पूर्ण हृदय के लिए इससे बढ़ कर और कुछ दूसरा पीड़ा का कारण हो भी नहीं सकता कि वह बेअसर है, रूप के लिए इससे बढ़कर दूसरा अपमान हो ही नहीं सकता कि उसमें आकर्षण नहीं है।

पद्मा ने अपने को अपराधी माना और वह रात को एकांत के पर्दे में छिप कर खूब रोई ।

उसने सोचा कि उसकी अत्यधिक तटस्थता ही ज्ञानदेव के उससे दूर रहने का कारण है । महीनों बीत गए, किंतु एक बार भी पद्मा ने ज्ञानदेव की ओर आँख उठाकर नहीं देखा । वह बाहर से अपरिचित ही बनी रही ।

कठोर गंभीर स्वभाव का ज्ञानदेव भी सीमा के भीतर ही रहा । उसने कभी मन से भी पद्मा का चिंतन नहीं किया । वह अपरिचित-सा आता और चला जाता । पद्मा ने किसी तरह भी ज्ञानदेव के सामने अपने को स्पष्ट करने का अवसर खोजना शुरू किया । यह काम बहुत ही कठिन था । एक उच्च विचारोंवाली नवयुवती के लिए यह आसान नहीं होता कि वह अपनी उच्चता और शान को कायम रखते हुए किसी ऐसे नवयुवक की निकटता प्राप्त करे, जिसका स्थान उसके मन में हो, किंतु अत्यंत छिपा हुआ—इतना छिपा हुआ कि स्वयं वह भी उसका पता न लगा सके ।

प्रयास करके भी पद्मा ज्ञानदेव के भीतर झाँकने में असमर्थ थी, क्योंकि उस नवयुवक ने अपने आपको इतने छोटे-से घेरे के भीतर कैद कर रखा था कि कहीं ज़रा भी सूराख न था, जो कोई बाहर से झाँक सके । अब पद्मा इस उपाय में लगी कि ज्ञानदेव के भीतर प्रवेश करके अपने को वहाँ खोजे । यदि वहाँ वह अपने को पा जाय, तो फिर चिंता ही नहीं, और यदि न पावे, तो फिर जीवन का रास्ता ही बदल डाले ।

यह पद्मा का एक खतरनाक खेल था या भयानक परीक्षण, यह बतलाना कठिन है, किंतु उसने यही निश्चय किया ।

जिसका चरित्र दृढ़ होता है, उसी का निश्चय भी मज़बूत होता

है। पद्मा का निश्चय अडिग था। पहले उसने ज्ञानदेव के सामने अपने को स्पष्ट करने का रास्ता खोजना शुरू किया।

एक दिन ज्ञानदेव उस समय आया, जब शास्त्रीजी कहीं बाहर चले गए थे। शास्त्रीजी के साथ ही उनकी स्त्री भी गई थीं। महर्षि कण्व और उनकी देवी आश्रम के बाहर थीं—अतिथि-सत्कार का भार था वनदेवी शकुंतला-पर। इसी समय रंगमंच पर महानायक का पदार्पण हुआ—राजा दुष्यंत आए।

जब ज्ञानदेव आया, और उसे पता चला कि शास्त्रीजी नहीं हैं, बत वह जाने को तैयार हो गया—यही उसका नियम भी था।

एकाएक पद्मा सामने से आई, और अधिकार-पूर्वक बोली—"बैठिए।"

ज्ञानदेव किंकर्तव्यविमूढ़-सा हो कर बैठ गया। इसके बाद पद्मा लौट गई, और चाय की प्याली लिये आई, फिर महामहिमामयी रानी की तरह बोली—"लीजिए।"

ज्ञानदेव चाय नहीं पीता था, किंतु एक बार पद्मा के मुँह की ओर देखकर उसने चाय की प्याली ले ली, और चुपचाप पीने लगा—एक शब्द भी नहीं बोला। पद्मा की यह विजय थी। उसने इतने ही में सब कुछ जान और समझ लिया, कुछ भी जानने को बाकी नहीं रहा।

ज्ञानदेव की जूठी प्याली पद्मा ने पूर्ण आत्मतोष के साथ उठाई—उसे ऐसा लगा कि वह कुछ ऊँचे उठ गई है। ज्ञानदेव ने भी विरोध नहीं किया। पद्मा के इस खुले व्यवहार से ज्ञानदेव के अंतर के किसी कोने से अपनापन ने झाँककर देखा।

अब जाने के लिए ज्ञानदेव प्रस्तुत हुआ, और बोला—"आपका आज्ञापालन कर लिया, अब जा सकता हूँ?"

पद्मा बोली—"एक काम और बाकी रह गया। ठहर जाइए।"

इतना कहकर पद्मा कमरे के अंदर गई, और कुछ देर बाद लौटी,

तो उसके हाथ में एक कागज़ और कुछ नोट थे। उसने ज्ञानदेव से बिलकुल ही स्वाभाविक तरीके से कहा—"आप जानते ही हैं, बाबा को समय नहीं मिलता, मैं बाहर जाती ही नहीं।"

ज्ञानदेव ने कहा—"कोई काम है क्या ?"

पद्मा ने ज्ञानदेव के हाथ में कागज़ पकड़ा कर कहा—"यह लीजिए पुस्तकों के नाम। आप कष्ट उठाकर मेरे लिए कुछ पुस्तकें ला दीजिए।"

'कष्ट उठाकर' शब्द पद्मा ने धीरे से कहा, मानो वह ऐसे कमज़ोर और दूरत्व का बोध करानेवाले शब्द बोलना नहीं चाहती थी। वह तो सीधे हुक्म देने पर तुली हुई थी कि—यह करो।

ज्ञानदेव पुस्तकों की नामावली पढ़कर गंभीर हो गया—सभी पुस्तकें दर्शन की और जटिल थीं।

ज्ञानदेव बोला—"एक बात पूछूँ ?"

पद्मा मुस्कुराकर बोली—"यही न पूछना चाहते हैं कि इनको पढ़ेगा कौन, सो मैं बतलाती हूँ।"

ज्ञानदेव ने कहा—"बतलाने की ज़रूरत नहीं रही, मुझे तृप्ति हुई। ये किताबें मेरे पास हैं। यहाँ मिलेंगी भी नहीं।"

पद्मा ने कहा—"हैं ? ले आइए। देर न कीजिए।"

ज्ञानदेव ने मुस्कुराकर कहा—"अभी लाया।"

इतना कहकर वह चला गया। पद्मा ने अनुभव किया कि उसके सारे शरीर का रक्त उसके दिमाग़ पर चढ़कर खौल रहा है। वह डर भी रही थी कि कहीं यह मुखरता ज्ञानदेव के भीतर अश्रद्धा न पैदा कर दे। पद्मा का हृदय भी धक्-धक् कर रहा था, और उसकी दोनो टांगें जैसे कमज़ोर हो गई थीं। उसने अपना ललाट टटोला, जो गरम हो गया था। पद्मा उसी कुर्सी पर बैठ गई, जिस पर कुछ क्षण पहले ज्ञान बैठा था। पद्मा ज़ोरदार विचारों के आघातों-प्रतिघातों को सँभाल नहीं पाती थी। वह तूफ़ान में पड़ी हुई छोटी

चिड़िया की तरह हाँफने लगी। ज्ञानदेव की गंभीरता से वह मन-ही-मन डरती भी थी। वह बार-बार सोचती थी कि कहीं ऐसा न हो कि ज्ञानदेव उसे एक चंचल स्वभाव की हेय लड़की समझे, और मन-ही-मन घृणा करने लग जाय। जो होना था, हो गया—अब पीछे की ओर लौटने का रास्ता भी तो न था। "महक फिर लौटकर फूल में नहीं घुमती।" पद्मा पसीने-पसीने हो गई। इस जीवन में उसने ऐसे हृदय-मंथन का ज़ोरदार आघात कभी नहीं सहा था।

ज्ञानदेव को ही उसने पुस्तकें लाने का आदेश दिया था, 'भेज दीजिएगा' कहना उचित था। पद्मा ने इस पर भी विचार किया, और अंत में इसी नतीजे पर पहुँची कि उसने जो कुछ किया, सही किया।

ज्ञानदेव पुस्तकों के साथ आ गया।

पद्मा उठ खड़ी हुई और मुस्कुराकर बोली—"तुरंत आए ?"

ज्ञानदेव बोला—"मैं तो डर रहा था कि देर हो गई। इन्हें पढ़िए।"

इतना कहकर वह इस तरह जाने लगा, जैसे जाना न चाहता हो, किंतु भद्राचार के आग्रह से ठहरना भी उचित न था। पद्मा ने चाहा कि उसे फिर बैठने का हुक्म दे, किंतु वह भी भीतर-ही-भीतर सहम रही थी।

ज्ञानदेव बोला—"बाबा नहीं आए ?"

पद्मा बोली—"देर हो गई, उन्हें तो आ जाना चाहिए। संध्या-वंदन का समय हो गया, आ ही रहे होंगे।"

यह भी ज्ञानदेव को रोक रखने का ही मनोवैज्ञानिक षड्यंत्र था। न तो ज्ञानदेव जाने को उत्सुक था, और न पद्मा उसे जाने देना चाहती थी—एक बैठने का बहाना खोज रहा था, दूसरी बैठाने का।

बाबा आ ही रहे होंगे—यह बहाना इतना सफल था कि दोनो के मन की बात रह गई। ज्ञानदेव बैठ गया, और दूसरी कुर्सी पर पद्मा भी बैठी—उस घर में तीसरी कुर्सी थी ही नहीं।

दोनो बाहर बरामदे में ही बैठे-बैठे अपने-अपने मन में बोलने के लिये कोई सुंदर-सी बात खोज रहे थे—इस कला में स्त्रियाँ श्रेष्ठ होती हैं। 'सरस्वती' की जाति की होने के कारण उसकी श्रेष्ठता स्वयंसिद्ध है। पुरुष होता है 'गणेश' की जाति का—शायद 'गोबर-गणेश' की जाति का।

पद्मा ने पहले मौन-भंग किया। वह बोली—"एक बात पूछ सकती हूँ ?"

ज्ञानदेव ने कहा—"पूछिए।"

पद्मा कहने लगी—"सुना है, आप फिर विदेश जाने की बात सोच रहे हैं, क्या कीजिएगा स्वदेश का त्याग करके ?"

ज्ञानदेव ने कहा—"सोच तो जरूर रहा हूँ।"

पद्मा का कालेजा धक् से कर उठा। वह बोली—"डॉक्टर साहब—आपके बाबा ?"

ज्ञानदेव उदास स्वर में बोला—"यही तो एक बंधन है। उनके बाद इस संसार में मेरा कौन रह जायगा—देश में रहूँ, या विदेश में।"

पद्मा का हृदय ज्ञानदेव की बातों से सिहर गया। वह चाहती थी, लज्जा-संकोच त्याग कर संसार को बतला दें कि ज्ञानदेव अकेला नहीं है—पद्मा जो उसकी है।

आर्य-ललना का हृदय जितना अनुभव करता है, उतना उसकी जीभ नहीं बोल पाती। पद्मा ने मौन रहकर ज्ञानदेव को यह बतला दिया कि वह ऐसी बात कभी मुँह पर भी न लावे।

ज्ञानदव पद्मा के उदास चेहरे को देखकर भाँप गया कि उसकी बातों ने उसके मर्म पर छिपे-छिपे आघात किया है। वह लज्जित

होकर बोला—"शास्त्रीजी को मैं अपना अभिभावक और सब कुछ मानता हूँ। वह जो कहेंगे, वही मुझे करना है।"

बात यह थी कि २-३ महीने से डॉ० रामदेव खाट पर पड़े हुए थे। हृदय की कमज़ोरी उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती थी। अपनी पत्नी के मरने के बाद से उन्होंने शाक-भाजी खाना शुरू किया था। पूछने पर कहते थे—"अब कौन पकवान खिलावेगा, जो जीभ को उकसाऊँ।" इस व्रत का उन्होंने कठोरता से पालन किया। दुःख को, शंकर ने जिस तरह कालकूट को पचा लिया था, उसी तरह, पचाने के कारण उनका अंतर तो झुलस चुका था, किंतु बाहर से स्वस्थ नज़र आते थे। वह मानो ज़ोर लगाकर ज्ञानदेव के लिए जी रहे थे। जब ज्ञानदेव उनके निकट आ गया, तो एक दिन अपनी जाया के चित्र के सामने जाकर हारे हुए से डॉ० रामदेव ने कहा—"देवी, यह लो तुम अपनी थाती। मेरी चाकरी खत्म हो गई। अब मुझे मरने की छुट्टी दे दो।"

दूसरे ही दिन से डॉक्टर ने खाट पकड़ी। दिल का ज़ोरदार दौरा शुरू हो गया। वह इस कष्ट को इतने आनंद से सह रहे थे कि देखनेवाला दंग रह जाता था। ऐसा जान पड़ता था कि उनके सामने कोई महान् लक्ष्य था, जिसकी तुलना में शारीरिक कष्ट तुच्छातितुच्छ था। बहुत दिव्य और श्रेष्ठ आनंद के लिए मामूली कष्ट सहना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है।

पद्मा यह बात जानती थी। उसने कहा—"तुम्हारे बाबा...?"

उसके मुँह से 'आप' की जगह एकाएक 'तुम' निकल गया। वह घबरा गई। क्षमा-याचना करने की भी हिम्मत वह खो बैठी थी।

ज्ञानदेव ने सहज स्वर में पूछा—"हाँ, क्या पूछना चाहती हैं?"

पद्मा सँभलकर बोली—"मुझसे ग़लती हो गई।"

ज्ञानदेव मुस्कुराकर चुप हो गया। पद्मा का साहस बढ़ा—

"आपकी भाषा मैं ठीक-ठीक नहीं जानती, यही कारण है कि कुछ-का-कुछ मुँह से निकल पड़ता है ।"

ज्ञानदेव ने कहा—"मूल चीज़ है आत्माभिव्यक्ति । भाषा तो माध्यम-मात्र है । हम इसकी चिंता न करें, तो अच्छा ।"

पद्मा ने प्रसन्नता का अनुभव किया । वह बोली—"हिम्मत नहीं होती कि आपके सामने अँगरेज़ी बोलूँ, और आपकी भाषा बोलने लगती हूँ, तो अजब गड़बड़ी पैदा हो जाती है ।"

ज्ञानदेव फिर मुस्कुराया और बोला—"मैं इस प्रश्न का हल निकाल लेता हूँ ।"

पद्मा ने कहा—"ज़रूर ऐसा कीजिए ।"

ज्ञानदेव बोला—"सुनो, मैं 'आप' नहीं कहूँगा । 'तुम' भी 'तुम' कहने के लिए आज़ाद हो ।"

पद्मा बोली—"यह कैसे हो सकता है । आप ज़रूर तुम कहिए, किंतु मैं तो ऐसा साहस कर ही नहीं सकती ।"

पद्मा का ऐसा कहना था कि ज्ञानदेव चौंक उठा । वह बहुत आगे बढ़ गया है, सीमा नाम की कोई चीज़ ही उसके सामने नहीं रह गई थी । पद्मा मानो उस दिन निश्चय करके ज्ञानदेव की सीमाओं का संहार कर रही थी । ज्ञानदेव कहीं रुकना भी चाहता था, तो पीछे से धक्का मारकर पद्मा उसे आगे दौड़ा देती थी, वह फिर पैर जमाना चाहता था, तो पद्मा वहाँ भी उसे टिकने नहीं देती थी । ज्ञानदेव देख रहा था, समझ रहा था कि वह लुढ़कता हुआ कहीं-से-कहीं जा रहा था, किंतु रुकने का उपाय ही उसे नज़र नहीं आता था । उसने भी अपने को ढीला छोड़ दिया—कितना अड़े बेचारा !

पद्मा ने देखा—दूर पर एक रिक्शा नज़र आ रहा है, उस पर उसके माता-पिता हैं ।

पद्मा कुर्सी से उठ खड़ी हुई, और जल्दी-जल्दी बोली—"बाबा आ रहे ह । जा रही हूँ । फिर बातें होंगी ।"

बग़ल में ही दरवाज़ा था, पद्मा कमरे में चली गई। जीवन में पहली बार उसने अपने को छिपाने योग्य माना। कमरे में पहुँचकर पद्मा ने सोचा — आखिर मैं भाग क्यों आई ?

इस सवाल का जवाब उसके पास न था। उसने शायद ज्ञानदेव के सामने आने-जाने की अपनी स्वाभाविकता को मन-ही-मन गँवा दिया था। यद्यपि इसका पता उसके सरल-हृदय पिता और स्नेहमयी माता को न था, किंतु पद्मा का मन जब चोर हो चुका था, तो उसमें साहस कहाँ से आया, बल कहाँ रहा। बाहर की दुनिया से मन की दुनिया बहुत ही पेचीली होती है।

ज्ञानदेव भी शास्त्रीजी के आने का समाचार सुनते ही सहम उठा। उसने भी सोचा कि ऐसा क्यों हुआ ? वह डर क्यों गया ?

ज्ञानदेव दूसरे दिन भी ठीक समय पर पहुँचा। शास्त्रीजी किसी सज्जन से बातें कर रहे थे। ज्ञानदेव बरामदे में ही बैठ गया—कमरे के अंदर नहीं गया। पद्मा एक ओर से आई, और बहुत ही धीमे स्वर में यह कहती चली गई कि "कल दो बजे आना। काम है।"

आनंद से क्षण-भर के लिए ज्ञानदेव का मन आलोकित हो गया। पद्मा उसे अपना समझती है—यही उसके लिए आनंद की बात थी।

दूसरे दिन ठीक समय पर ज्ञानदेव शास्त्रीजी के यहाँ पहुँचा, तो पद्मा बोली—"आज फिर मा और बाबा कहीं गए हैं। अकेलापन अच्छा नहीं लगता।"

बात यह थी कि पद्मा की बड़ी बहन रत्नसंभवा के विवाह की बात चल रही थी। सरकार के ए० जी०-विभाग के किसी उच्च पद पर कोई दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे। उनका बड़ा लड़का एम्० एस्-सी० करके विलायत जाने की धुन में था। लड़का स्वस्थ, सुंदर और चरित्रवान् था। शास्त्रीजी उसी दाक्षिणात्य ब्राह्मण के परिवार का दरबार कर रहे थे। बात तो पक्की हो चुकी थी, किंतु विलायत जाने का भार शास्त्रीजी को वहन करना था, जो कम न था।

रत्नसंभवा उन दिनों अपने चाचा के साथ काशी में रहती थी दो महीने से वह यहाँ न थी ।

शास्त्रीजी ने भी ज्ञानदेव से कुछ नहीं कहा, और न उसने कुछ पूछा ही । संबंध गहरा हो जाने के कारण ज्ञानदेव अपने मन की तटस्थता को कायम रखने में अक्षम हो रहा था । शास्त्रीजी के बच्चों-जैसे सरल हास्य, आनंद और विनोद पर मानो कुहरा-सा छा गया था । वह हँसते थे, बोलते थे, किंतु वह बात न थी । ज्ञानदेव इस परिवर्तन को बारीकी से समझता तो था, किंतु पूछने का साहस नहीं होता था । एक दिन उसने पद्मा से पूछा—"बात क्या है पद्मा तुम्हारे बाबा और मा को बहुत ही अन्यमनस्क पाता हूँ ?"

पद्मा ने कराहकर सारी कहानी सुना दी, और अंत में कहा—"आठ-दस हज़ार की चिंता है । बाबा चाहते हैं, मैसूर में जो ज़मीन है उसे खटाकर दीदी की शादी कर दें । ऐसा योग्य वर फिर हाथ आने को नहीं है ।"

ज्ञानदेव मुस्कुराकर बोला—"इतनी-सी बात के लिए शास्त्रीजी घुलें, यह तो उचित नहीं है पद्मा ! तुम भी कोई सहायता नहीं करना चाहतीं ?"

पद्मा ने कहा—"ज्ञान, मैं क्या सहायता करूँ ? पागल हो गये, जो ऐसी बातें बोलते हो ?"

"पागल नहीं हूँ"—ज्ञानदेव ने कहा—"तुमने अभी तक अपने को समझा ही नहीं, तो मैं क्या करूँ ।"

इतना कहकर ज्ञानदेव चला गया । पद्मा घबराकर उसकी ओर देखती रह गई । वह मन-ही-मन डरी कि ज्ञानदेव क्यों नाराज़ होकर चला गया । पद्मा यह समझ ही नहीं सकी कि वह कैसे अपनी दीदी को सहायता दे सकती है ।

डॉ० रामदेव की तबीयत एकाएक बिगड़ गई । शास्त्रीजी ने अपना सारा काम स्थगित कर दिया, और वह रामदेव की सेवा में लग गए । पद्मा ने भी मन-प्राण से योग दिया ।

एक-एक दिन कठिनाई से कटता था। ज्ञानदेव के भोजन आदि का भार पद्मा पर था, और शास्त्रीजी ने रोगी की देख-भाल का काम सँभाला।

शास्त्रीजी छुट्टी मिलने पर जब अपने बँगले पर जाते, तो पद्मा को सावधान करके जाते थे—ज्ञानदेव को कष्ट न होने पावे। ज्ञानदेव चुप था। वह मशीन की तरह काम करता था। मशीन में चेतना का अभाव होता ही है। यही दशा ज्ञानदेव की भी थी। रामदेव का बँगला कीमती सामानों से भरा हुआ था। धन का अभाव था ही नहीं। वह अत्यंत अमीरी का जीवन व्यतीत करते थे। नौकरों के भरोसे रहना ठीक नहीं है, यह बात पद्मा जानती थी, किंतु ज्ञानदेव इतना सरल स्वभाव का था कि उसे कोई भी धोखा दे सकता था, उसके सामने ही कोई भी उसकी चीजों का अपहरण कर सकता था।

रामदेव को देखने जॉर्ज साहब भी आए, और दो मिनट ठहरकर चले गए। साथ में लीला भी थी। अपने बँगले पर पहुँचकर जॉर्ज साहब ने अपनी पत्नी से कहा—"शास्त्रीजी ने रामदेव का बँगला ही दखल कर लिया। उसकी लड़की पद्मा तो मालकिन बन बैठी है। लूटने का अच्छा मौका शास्त्री-परिवार को मिला। लड़का पक्का मूर्ख और जंगली है।"

रानी ललाट पर आँखें चढ़ाकर धीरे से बोलीं—"मैंने बार-बार लीला से कहा कि ज्ञानदेव से परिचय बढ़ाओ, मगर यह गधी सुनती ही नहीं। यह तो कलमुंहा करोड़पति के पीछे लगी फिरती है, जो एक नंबर का आवारा और शराबी है। वह मतलबी और मक्खीचूस तो एक नंबर का है।"

जॉर्ज साहब बोले—"मरने दो डॉक्टर को। ज्ञानदेव देखते-देखते कंगाल हो जायगा। शास्त्री अपनी लड़की की सहायता से उसका सब कुछ छीन लेगा। बेटा भीख माँगता फिरेगा। विलायत की भी बेइज्जत होगी।"

रानी ने कुछ सोचकर कहा—"लीला के सामने उसकी लड़की बंदरी-जैसी लगती है। न सूरत और न फ़ैशन।"

यहाँ तो जॉर्ज साहब जघन्य कल्पना कर रहे थे, और वहाँ ज्ञानदेव ने पद्मा से कहा—"पद्मा मेरी रक्षा करो। यह लो चाभी। वह सेफ़ है। अब मुझसे कुछ करते धरते नहीं बनेगा। मेरा दिमाग़ थर्रा गया है।"

इतना कहकर ज्ञानदेव बच्चों की तरह रोने लगा, तो पद्मा की आँखें भी सजल हो गईं। उसने भावावेश में आकर ज्ञानदेव की बाँह पकड़ ली और पलंग पर बैठाकर अपने आँचल से उसके आँसू पोंछते हुए कहा—"रोते हो ज्ञान? जब तक मैं जीवित रहूँगी, तुम्हें चिंता न करनी होगी। बाबा की सेवा करो—वे अच्छे हो जायँगे।"

ज्ञानदेव को इतने पवित्र और स्नेहपूर्ण स्पर्श का अनुभव कभी नहीं हुआ था। उसने पद्मा का हाथ बच्चे की तरह पकड़कर कहा—"सच कहती हो पद्मा?" पद्मा ने झुककर ज्ञानदेव का चरण स्पर्श कर लिया, और कहा—"शपथ खाती हूँ कि······।"

वह और कुछ बोलना चाहती थी कि उच्छ्वास से उसका गला रुँध गया। ज्ञानदेव ने अपने भीतर साहस और प्रकाश का अनुभव किया। चाभियों का गुच्छा पद्मा के हाथ में पकड़ाकर ज्ञानदेव बोला—"हे भगवान्, यह गुच्छा फिर मेरे पास लौट कर न आवे, यही वर दो।"

भगवान् ने पद्मा के कंठ पर बैठकर कहा—"ऐसा ही होगा।"

इतनी बड़ी बात पद्मा के मुख से अनायास ही निकल आई। वह बिना सोचे ही देवी की तरह 'एवमस्तु' बोल उठी।

ज्ञानदेव ने जैसे बहुत कुछ पा लिया। अब वह स्थिर चित्त से पिता की सेवा में निमग्न हो गया। ठीक समय पर पद्मा उसे स्नान करने के लिए बुला लेती, बैठकर और हठ करके भर-पेट खिला देती, और कपड़े बदलवा देती।

शास्त्रीजी यह सब देख रहे थे। उन्होंने देखा कि उनकी अल्हड़ लड़की हठात् पक्की गृहस्थिन बन गई। नौकरों और नौकरानियों का

झुंड भी पद्मा को ही घेरे रहता। वह सारी व्यवस्था करती, और एक सूत भी विचलित होने नहीं देती। ज्ञानदेव ने अपने मन पर से गृहस्थी का भार उतार फेंका।

रामदेव का अंत समय उपस्थित हो गया। उन्होंने चलते-चलते शास्त्रीजी से कहा—"आज से ज्ञान आपका पुत्र हुआ। इसकी रक्षा कीजिएगा। मैं तो चला।"

शास्त्रीजी ने रोते हुए कहा—"यह पुण्य का भार स्वीकार किया। हे राम।"

सभ्यता का बाह्य रूप

रामदेव के श्राद्धादि से निश्चिंत होकर ज्ञानदेव ने अपने भविष्य के संबंध में सोचना आरंभ किया। उसके पिता ने लाखों की संपत्ति अपने पीछे छोड़ी थी। बैंक में तो कई लाख रुपये थे ही, शहर में कई मकान भी थे, जिनसे इतनी आय हो जाती थी कि डॉ० रामदेव आराम और शान की जिन्दगी व्यतीत करते थे। कई बँगले भी थे—इस तरह चल और अचल संपत्ति तो इतनी थी कि यदि ज्ञानदेव पाँच सौ साल भी जीता, तो राजकुमार की तरह ही जीता—किसी के सामने हाथ पसारने की उसे जरूरत न होती। यौवन, उच्च शिक्षा, सुंदर चरित्र, कसरती शरीर और उस पर अतुल संपत्ति—यह तो संयोग ही था कि ज्ञानदेव को एक साथ ही सब कुछ मिल गया।

शास्त्रीजी मन-ही-मन डर रहे थे कि कहीं इतनी विशाल निधि पाकर ज्ञानदेव अपना संतुलन न गँवा बैठे। अपने मन की इस पीड़ा को उन्होंने अपनी पत्नी के सामने उस समय कहा, जब पद्मा भी उपस्थित थी। वह भी घबरा गई, जो उचित ही कहा जा सकता है। वह जानती थी कि धन में मानव को राक्षस बनाने की कितनी

बड़ी क्षमता है। उसका ज्ञान कहीं.... हे भगवान् ! पद्मा के चेहरे का रंग उड़ गया। बुद्धिमान् शास्त्रीजी ने पद्मा के सामने इसीलिए सारी बातें खोलकर रख दीं कि वह सीधे पद्मा से कुछ कहना उचित नहीं समझते थे।

अब तक पद्मा के ही संरक्षण में ज्ञानदेव था। वह जानता भी नहीं था कि उसके घर में क्या है, क्या नहीं—वह केवल बैंकों का ही हाल जानता था। पद्मा सारा प्रबंध करती थी, और घर के नौकर पद्मा का मुँह जोहा करते थे, जो एक सावधान शासिका थी। एक-एक महीने का अग्रिम वेतन देकर उसने फालतू नौकरों को हटा भी दिया था।

एक दिन दोपहर को जब पद्मा ने ज्ञानदेव को निश्चिंत पाया, कहा—"एक बार लोहे की आलमारियों को तो देख लेते। मेरी समझ मे बहुत-सी ऐसी चीज़ें यहाँ पड़ी हैं जिन्हें बैंक में पहुँचा देना अच्छा होगा।"

ज्ञानदेव बोला—"हाथ जोड़ता हूँ, मेरी हत्या मत करो।"

पद्मा नाराज होकर बोली—"तुम्हें बोलना भी नहीं आता, जो।"

ज्ञानदेव ने कहा—"जब तुम जानती ही हो कि मुझे बोलना नहीं आता, तो फिर बात करने आती ही क्यों हो ?"

पद्मा झुँझलाकर चली गई, और ऊपर कमरे में जाकर कीमती ज़ेवरों और रुपयों की एक फ़र्द तैयार की। सारा दिन भीतर से कमरा बंद करके वह यही करती रही। ज्ञानदेव ने एक बार भी किसी से नहीं पूछा कि पद्मा कहाँ है, क्या कर रही है।

संध्या-समय वह ऊपर से उतरी, और अपना गुस्सा उतारा एक जमादार पर, जिसने अभी तक मोटर झाड़-पोंछकर साफ़ नहीं किया था। जमादार के बाद माली की बारी आई। उसके सिर का सनीचर उतारकर वह बेरा की ओर मुड़ी, जिसने अभी तक चाय-

नास्ते का इंतजाम नहीं किया था, और वहाँ से चली, तो ज्ञानदेव पर बरस पड़ी—"दिन-रात किताब पढ़ा करते हो। मैं दोपहर से देख रही हूँ, पेज-पर-पेज उलट रहे हो। यह भी कोई तरीका है।"

ज्ञानदेव किताब एक किनारे रखकर बोला—"तुमने तो कुछ बतलाया ही नहीं कि मुझे क्या करना चाहिए। इसमें मेरा क्या दोष है, जो डाँट रही हो।"

शास्त्रीजी कमरे के दरवाजे पर रुककर पद्मा की डाँट-फटकार की आवाज सुन रहे थे। बेचारे नौकर बेतहाशा इधर-उधर दौड़ रहे थे, जैसे घर में भूकंप आ गया।

शास्त्रीजी कमरे के अंदर आए। पद्मा का गुस्सा शांत नहीं हुआ था। वह अपने पिता से बोली—"बाबा, आप ही बतलाइए, दिन-भर बैठे रहने से कोई बीमार पड़ सकता है या नहीं ?"

शास्त्रीजी मन-ही-मन मुस्किराकर बोले—"ज़रूर।"

पद्मा ज्ञानदेव की ओर मुड़कर बोली—"सुन लिया डॉक्टर साहब ?"

ज्ञानदेव ने कहा—"बाबा, मेरी भी तो सुनिए। यह कुछ बतलाती नहीं, तो मैं क्या करूँ। कहाँ जाऊँ। दिन-भर नाराज़ होती रहती है कि यह नहीं किया, वह नहीं किया।"

पद्मा ने भी अपना मुकदमा पेश किया—"बाबा. स्नान, भोजन यहाँ तक कि कपड़े भी अपने मन से नहीं बदलते—सिर पर सवार होना पड़ता है। मैं तो तंग आ गई।"

ज्ञानदेव ने कहा—"तो मुझे छोड़ दो अपने भाग्य पर। मैं तो कुछ जानता ही नहीं कि मुझे क्या करना चाहिए।"

शास्त्रीजी ने पद्मा से रोष-भरे शब्दों में कहा—"तू तंग आ गई पद्मा ?"

पद्मा सन्नाटे में आ गई। वह क्या कह गई। उसने कोई जवाब नहीं दिया। दोनो हाथों से मुंह ढाँपकर रोने लगी।

शास्त्रीजी नहीं जानते थे कि पद्मा के हृदय में ज्ञानदेव का कितना स्थान है। उस दिन जब सत्य उनके सामने प्रकट हो गया, तो आनंद और स्नेह से उनका हृदय भर गया।

शास्त्रीजी ने नरम स्वर में कहा—"बेटी, ज्ञान तो बच्चों की तरह सरल है। इसके लिए तू सदा सतर्क रह। यह मेरा अंतिम आदेश है।"

पद्मा की रुलाई और भी बढ़ गई।

ज्ञानदेव शांत और निर्विकार चित्त से शास्त्रीजी की बातें सुनता रहा। वह कुछ नहीं बोला—क्या बोलता।

शास्त्रीजी के जाने के बाद पद्मा ज्ञानदेव के साथ मोटर पर शहर की ओर चली। रास्ते में उसने ज्ञानदेव से पूछा—"नाराज़ हो गए क्या ?"

ज्ञानदेव ने कहा—"पद्मा, मेरी प्रसन्नता भी तुम्हारे ही लिए है, और नाराज़ी भी। यहाँ मेरा कौन अपना है।"

हृदय से सीधे निकले हुए इन शब्दों ने पद्मा को सिर से पैर तक झकझोर दिया।

दूसरे दिन पद्मा ने ज्ञानदेव से कहा—"आज बैंक चलना होगा। मैं घर खाली कर देना चाहती हूँ—कहने का मतलब यह कि यहाँ कीमती चीज़ें नहीं रहने देना चाहती।"

ज्ञानदेव ने जवाब दिया—"जैसा चाहो, करो।"

पद्मा धीरे से बोली—"एक बार देख लो न सारी चीज़ों को।"

ज्ञानदेव बोला—"पद्मा, मुझे इस प्रपंच में न फँसाओ। तुमने देख लिया है, यही बहुत है। मैं सोना-चाँदी, हीरे-जवाहरात देखकर क्या करूँगा देवी। जिसे देखना चाहता हूँ, उसे ही देखता रहूँगा।"

पद्मा ने सिर झुका लिया।

जब ज्ञानदेव के साथ पद्मा भी सूटकेस लिए हुए बैंक पहुँची, तो ज्ञान ने एजेंट से कहा—"एक नया खाता खोलना है।"

एजेंट ज्ञानदेव को जानता था। नया खाता खोलने का जब फ़ॉर्म आया, तो ज्ञानदेव ने उसे पद्मा के आगे खिसकाकर गंभीर स्वर में कहा—"हस्ताक्षर करो।"

पद्मा ने घबराकर ज्ञानदेव की ओर देखा। वह डर गई, और चुपचाप हस्ताक्षर कर दिए। इसके बाद संरक्षण में जो कीमती ज़ेवर वग़ैरह रक्खे गये, उनका भी बंडल बना हुआ था। करीब एक लाख का वह सामान भी पद्मा के दस्तखत से ही जमा हो गया।

नया चेकबुक लेकर ज्ञानदेव पद्मा के साथ लौट आया। पद्मा चुप थी। वह इतना घबरा गई थी कि उसका मुँह सूख रहा था। कोठी पर पहुँचकर ज्ञानदेव बोला—"पद्मा, जब चाहो, तो मेरा त्याग कर सकती हो। मैं तुम्हें आदेश देता हूँ।"

करीब दो लाख की निधि की स्वामिनी हठात् पद्मा बन गई। वह इस भार के नीचे कुचल रही थी, ज्ञानदेव ने ऊपर से एक पहाड़ रख दिया। पद्मा अपराधिन की तरह खड़ी-खड़ी धरती देखती रही, और ज्ञानदेव एक पुस्तक खोलकर उसमें लीन हो गया।

अपने मन को स्वस्थ करके पद्मा ने कहा—"ज्ञान, यह तुमने क्या कर दिया ?"

ज्ञानदेव ने कहा—"तुम तंग आ गई थी न ?"

पद्मा रोती हुई बोली—"देवता, मैं मूर्ख नारी नहीं जानती थी कि इतना बड़ा दंड तुम दोगे। मेरी रक्षा करो।"

ज्ञानदेव ने रोष-भरे स्वर में कहा—"अभी नहीं।"

पद्मा बोली—"अच्छा, एक प्रार्थना है। मानोगे ?" रुककर फिर पद्मा ने कहा—"मैं सह लूंगी। स्त्री की जाति बहुत ही कठोर होती है – वह हँसी के भीतर रोदन छिपाना जानती है, पर तुम कभी अपने को दंड मत देना, यही मेरी याचना है।"

ज्ञानदेव मुस्करा कर बोला—"पद्मा, तुम इतनी भोली हो ? जब मैं तुम्हें दंड दूंगा, तो प्रकारांतर से अपने को भी सजा दे ही दूंगा। तेल बत्ती को जलाता है, तो खुद भी तो जलता ही है।"

पद्मा का हृदय भर आया—ज्ञानदेव कितना महान् है, कितना श्रेष्ठ है, कितना हृदयवान् है।

अब पद्मा के लिए केवल एक ही काम संसार में रह गया—ज्ञानदेव की देख-भाल करना। वह दिन-भर इस बँगले से उस बँगले दौड़ती रहती—अपने बँगले से दौड़कर ज्ञानदेव के बँगले जाती, और वहाँ की व्यवस्था करके फिर अपने बँगले आती। उसकी माँ ने कभी एक शब्द भी नहीं कहा कि वह ऐसा क्यों करती है।

समय निकाल कर दो-चार बार शास्त्रीजी भी ज्ञानदेव के निकट जाते, और जो उचित समझते, परामर्श देते। जब उन्होंने यह सुना कि पद्मा ने बँगले के सारे कीमती सामानों और नकदी को बैंक में रखवा दिया, तो वह बहुत प्रसन्न हुए। वह ईश्वर के सामने ईमानदार रहना चाहते थे—दुनिया चाहे कुछ भी कहे।

पद्मा चाभी का गुच्छा आँचल में बाँधे पगली की तरह व्यस्त रहने लगी। ज्ञान ने अपने को बिलकुल ही मुक्त बना लिया।

एक दिन पद्मा दोपहर को ज्ञानदेव से बोली—"सो रहे हो क्या?"

ज्ञानदेव भोजन करके आँखें बंद किए लेटा हुआ था। वह बोला—"सो तो नहीं रहा हूँ, तुमने कहा है कि भोजनोपरांत दो घंटे लेटा रहूँ, सो वही कर रहा हूँ। देखो तो, घड़ी बंद है क्या? मैं एक बजे लेटा था—अब उठना चाहता हूँ, किंतु बीस मिनट अभी तीन बजने में बाकी है।"

पद्मा खिलखिला कर हँस पड़ी। वह अभी-अभी अपनी कोठी से आई थी। जी-भर कर हँस लेने के बाद पद्मा बोली—"साधु, साधु।"

ज्ञानदेव मुस्कराकर बोला—"आज्ञा-पालन तो करना ही होगा। उपाय भी तो नहीं है पद्मा।"

पद्मा खाट के एक कोने पर बैठती हुई बोली—"ईश्वर से विनय

है कि तुम्हारी यही सद्बुद्धि बनी रहे। हाँ, एक बात कहने आई हूँ, सुनो।"

ज्ञानदेव बोला—"कोई नया फ़रमान जारी करने का विचार है क्या ?

पद्मा बोली—"नहीं जी, बाबूजी ने तीं महीने का किराया दिया है, जो वह नहीं दे सके थे—तीन सौ तीस रुपए।"

ज्ञानदेव बहुत ही शांति-पूर्वक बोला—"वह कोठी अब मेरी नहीं रही, किराया कैसे लूँगा ?"

पद्मा घबरा कर बोली—"कब बेच दिया, किस के हाथ बेचा ? कहा भी नहीं।"

ज्ञानदेव ने कहा—"एक महीना हो गया, अब उस कोठी के मालिक दूसरे हैं, उनका नाम चाहो, बतला सकता हूँ।"

पद्मा का चेहरा उतर गया। वह चिंताकुल होकर बोली—"हाँ हाँ, बतला दो।"

ज्ञानदेव बोला—"उस कोठी को मैंने कुमारी पद्मासंभवादेवी के नाम कर दिया है। वह शास्त्रीजी से किराया वसूल करें, या दूसरा किराएदार रक्खें, यह मैं नहीं जानता।"

"यह तुमने क्या किया"—ज्ञानदेव से इतना कहकर पद्मा उठी और चली गई। तीन बज गया, और ज्ञानदेव भी खाट से छुटकारा पाकर प्रसन्न हुआ। पद्मा अपने पिता के निकट गई, किंतु कुछ भी कहने का साहस नहीं हुआ। वह फिर लौट आई।

ज्ञानदेव अपने पुस्तकालय में था। पद्मा को देखते ही खड़ा हो गया और बोला—"चार से छ बजे तक तुमने पढ़ने का समय दिया है, सो जा रहा हूँ। तुम कहाँ गई थीं ?"

पद्मा बोली—"अपनी कोठी देखने गई थी। इस बार मकान-मालिक की हैसियत से मैंने उसे देखा, तो वह बहुत ही सुंदर नज़र आई।"

ज्ञानदेव हँस पड़ा और बोला—"तुम नहीं जानती पद्मा, मृत्युके एक सप्ताह पहले पिताजी ने ही यह आदेश दिया था। उन्होंने कहा था, गुरु-दक्षिणा के रूप में शास्त्रीजी के चरणों पर कोठी न्योछावर कर देना।"

पद्मा बोली—"तुमने तो मुझे दे दिया, सो क्यों?"

ज्ञानदेव बोला—"आचार्य शुक्राचार्य त्यागी तपस्वी हैं। वह घर-मकान लेकर क्या करेंगे। उनकी दुहिता देवयानी तो तपस्विनी नहीं है, यह तुम भी तो जानती हो पद्मा, महाभारत की कथा है।"

पद्मा ने कहा—"जानती हूँ, पर हाथ जोड़ती हूँ, तुम 'कच' मत बन जाना, नहीं तो सारा नाटक ही दुःखांत हो जायगा।"

बिना जवाब सुने पद्मा भाग खड़ी हुई। ज्ञानदेव कुछ क्षण गंभीर बना खड़ा रहा, फिर धीरे से बोला—"सारा नाटक दुःखांत हो जायगा, उफ्। यह भी संभावना है क्या? पद्मा की जीभ पर बैठकर होनहार तो नहीं बोल रहा है?"

पुस्तकालय में बैठकर ज्ञानदेव पढ़ने लगा, पर वह पेज-पर-पेज उलटता जाता था, समझ में नहीं आता था कि क्या पढ़ रहा है—खाक या पत्थर। जहाँ हमारा मन होता है, वहीं हम होते हैं—दोनो दो जगह नहीं रह सकते।

जॉर्ज साहब ज्ञानदेव पर निगाह रखते थे। उन्हें पता चल गया कि शास्त्रीजी को वह बँगला ज्ञानदेव ने दे दिया, तो हाथ मलने लगे—वह अपनी लीला की नालायकी पर बहुत ही क्षुब्ध हुए, पर उपाय न था।

एक दिन लीला को साथ लिए जॉर्ज साहब ज्ञानदेव के यहाँ पहुँचे। स्वागत-सत्कार के बाद जॉर्ज साहब ने लीला से कहा—'बेटी—डॉ० ज्ञान अकेले ही रहते हैं। बेचारे क्या करें। हम दो-चार जने आना-जाना शुरू कर दें, तो इनका भी जी बहले। क्यों डॉक्टर ज्ञान?"

ज्ञानदेव ने कोई जवाव नहीं दिया। इसी समय पद्मा आई। उसने लीला को अपने साथ लिया—दोनों ऊपर की मंजिल में चली गई। लीला सारी पहन कर ही आई थी।

कीमती और मुलायम सोफ़े पर बैठाकर पद्मा ने लीला का सत्कार किया, मानो पद्मा ही उस घर की मालकिन हो। लीला मन-ही-मन कुढ़ गई। चाय-नाश्ते के बाद पद्मा ने कहा—"बहन, बहुत दिनों बाद आई ?"

लीला ने कहा—"समय ही नहीं मिलता था। माँ बीमार रहती हैं जो।"

पद्मा ने स्नेह-भरे स्वर में कहा—"बहन, मैं भी व्यस्त रहती हूँ। आजकल तो साँस लेना कठिन हो गया है।"

लीला पद्मा की इस सरल भाव से कही जानेवाली बात को भी व्यंग्य समझकर खिन्न हो गई। कोई कितनी भी ईमानदारी से बोले, सुननेवाला यदि ईमानदार न हुआ, तो परिणाम उलटा ही होगा। लीला को चुप देखकर पद्मा ने फिर कहा—"आप आती क्यों नहीं बहन ?"

लीला बोली—"माँ जो बीमार रहती हैं। बहुत कठिनाई से समय निकालकर आज आई।"

पद्मा ने उठकर कहा—"दो मिनट में आई—ज़रा पूछ लूँ, उनका नाश्ता तैयार हुआ या नहीं।"

पद्मा चली गई, तो लीला ने देखा, एक-से-एक दामी फ़र्निचरों से कमरा सजाया गया है। किसी राजा के अंतःपुर जैसी सजावट देखकर लीला को अपनी कोठी कूड़ाखाना जैसी लगी। वह मन-ही-मन कुढ़कर रह गई। पद्मा लौटकर फिर बैठ गई। लीला की अन्यमनस्कता उससे छिपी नहीं रही। इसी समय बेरा हाथ में तश्तरी लिए आया। पद्मा ने उठकर ऊपर का ढक्कन उठाया, और देखकर कहा—"ले जाओ, ठीक है।"

लीला से नहीं रहा गया, वह पूछ बैठी—"आपने देखा क्या, और फिर कहा कि ठीक है, ले जाओ। कहाँ भेज रही हैं यह नाश्ता ?"

लीला ने समझा कि शायद पद्मा अपनी कोठी के लिए नाश्ता यहीं से बनवा कर भेजती है।

पद्मा बोली—"बहन, उनके लिए नाश्ता भेज रही हूँ। देख लिया कि उनकी पसंद के लायक है या नहीं। सबसे बड़ी मुसीबत तो यह है कि जला-कच्चा जो कुछ उनके आगे रख दिया जाय, स्वीकार कर लेते हैं। ऐसे स्वभाव के पुरुष की उपेक्षा नहीं की जा सकती। जो सदा चुप रहता है, उसकी चुप्पी बहुत ही भयानक होती है, और मर्मभेदी भी।"

लीला बोली—"क्या डॉक्टर ज्ञान कभी कुछ नहीं पूछते कि ऐसा क्यों हुआ ?"

पद्मा बोली—"हाय, यदि वह सवाल-जवाब करते, तो मेरी मुसीबत ही मिट जाती।"

पद्मा की ओर तेज़ नज़रों से देखती हुई लीला बोली—"मुझसे तो इतना नहीं हो सकता। यह तो दिमाग़ी गुलामी है मिस पद्मा, जिसे आपने स्वीकार किया है, और वह भी व्यर्थ।"

लीला के इस नीचता-पूर्ण आक्षेप ने पद्मा को आपे से बाहर कर दिया। यदि उसकी जगह और कोई होता, तो वह उसका मुंह लाल कर देती, पर खून का घूंट पीकर रह गई। ज़ोर लगाकर अपने को दबाने का परिणाम यह हुआ कि पद्मा पसीने से तर हो गई। उसने शांत स्वर में कहा—"लीलादेवी, यह तो समझ लेने की बात है। आप जिसे गुलामी समझती हैं, उसे मैं अपना परम सौभाग्य मानती हूँ।"

लीला ने जान-बूझ कर फिर पद्मा के दिल को आहत करने का प्रयास किया। वह बोली—"आपका कहना ठीक भी हो सकता है, किन्तु ज़रा सोचिये तो, आज का नारी-समाज इस तरीके

को पसन्द नहीं करता। आपने उच्च शिक्षा पाई है। डा० ज्ञान से आपकी मित्रता है। बसें यहीं न ?"

पद्मा के दिमाग के भीतर खून उबलने लगा—वह पछताई लीला को अपने साथ बैठाकर।

पद्मा ने जवाब दिया—"मिस, समझने की कोशिश कीजिए। मैं विषय की गंभीरता को समझकर चुप रहना चाहती हूँ। प्रत्यक्ष लगाव को नाता या रिश्ता कहा जाता है, किन्तु जो लगाव अंतर का होता है, उसका नाम आज तक नहीं रक्खा गया। अच्छा हो कि हम इस चर्चा को किसी दूसरे दिन के लिये छोड़ दें।"

इसी समय शानदार वर्दी पहने एक सुन्दर-सा छोकरा आया, और उसने सलाम करके कहा—"मालिक पूछ रहे हैं कि ······।"

पद्मा बोली—"समझ गई। कह दो कि आ रही हूँ, ठहर जायँ।"

लीला भी जाने को उठी, और पद्मा भी साथ साथ चली। नीचे ज्ञानदेव प्रतीक्षा कर रहा था। उसने लीला के सामने ही पद्मा से कहा—"तुम तैयार हो न पद्मा ?"

पद्मा ने कहा—"जी।"

ज्ञानदेव मुस्किराकर बोला—"एक बात है। तुम इतने कीमती कपड़े पहन लेती हो कि मैं तो तुम्हारा अर्दली-जैसा लगने लगता हूँ।"

पद्मा के दोनों गदराए हुए, सुंदर, चिकने, गोरे गाल और अधिक लाल हो गए। उसने भी सँभल कर जवाब दिया—"यह तुम्हारा सौभाग्य ही तो है।"

ज्ञानदेव अपने स्वभाव के प्रतिकूल खिलखिलाकर हँस पड़ा। लीला को ऐसा लगा कि उसके रोम-रोम में आग लग गई।

एक अल्प-परिचिता मिस के सामने ऐसी बात बोलने के लिए ज्ञानदेव ने क्षमा-याचना कर ली, और कहा—"मैं भारतीय सभ्यता के वातावरण से अनभिज्ञ हूँ। विलायत में ऐसी हल्की-फुल्की दिल्लगी तो कोई भी कर सकता है।"

लीला ने मन पर ज़ोर देकर मुस्किराने का विफल प्रयास किया। पद्मा के सौभाग्य ने उस रूप-गर्विता को अपमानित कर दिया था, आहत कर दिया था।

पद्मा ज्ञानदेव के साथ दामी मोटर पर बैठकर चली गई। लीला अपनी कोठी को लौटी। वह मुँह बनाकर अपने कमरे में घुसी, और बैठकर सोचने लगी।

जॉर्ज साहब लीला को ज्ञानदेव के यहाँ पहुँचा कर अपनी पुरानी फ़ोर्ड गाड़ी पर कहीं चले गए थे। यही उनका तरीका भी था।

वह अपने साथ भवानी बाबू को लिए लौटे। भवानी बाबू से लीला का परिचय कराना उनका प्रधान लक्ष्य था। जॉर्ज साहब से भवानी बाबू की मित्रता भी नई ही थी। गुण-कर्म की एकरूपता ने दोनों को तुरंत ही मित्र बना दिया था।

लीला बेमन से अपनी सबसे सुंदर पोशाक पहनकर बड़े तपाक से भवानी बाबू के सामने आई। रानी ने भी जी लगाकर बनाव-श्रृंगार किया। मा-बेटी में मानो मन-ही-मन सजावट की होड़ चलती थी।

पत्नी और कन्या का परिचय कराकर भवानी बाबू का सत्कार किया गया। भवानी बाबू का ध्यान दूसरी ओर था। वह न तो लीला का रूप देख रहे थे, और न जॉर्ज साहब का विलायती व्यवहार। वह तो यही सोच रहे थे कि इस परिवार का उपयोग माल उतारने में कैसे किया जा सकता है। प्रत्युत्पन्नमति भवानी बाबू ने तुरंत सोच लिया कि लीला को शिखंडी बनाकर एक नहीं, दर्जनों भीष्मपितामहों का संहार किया जा सकता है।

भवानी बाबू कल आने का वादा करके चले गए। वह कहीं भी अधिक देर तक नहीं ठहरते थे—ऐसी जगह, जहाँ कुछ हाथ गरम करना न हो।

नरक के ठेकेदार

जॉर्ज साहब अब इस चिंता में घुलने लगे कि ज्ञानदेव को किस उपाय से अपनी ओर घसीटा जाय। यह काम आसान न था। जिस चीज़ की बनावट बिलकुल ही गेंद की तरह होती है, उसे चुट-कियों से पकड़ना असंभव होता है, यदि वह आकांर में भी बड़ा हो। ज्ञानदेव की बनावट इसी तरह की थी। वह अपने आप में पूर्ण था—गोलाकार ।

वह चोटी का विद्वान् था, संपत्ति तो थी ही, स्वभाव का भी कठोर, गंभीर और चरित्रवान् था—किसी तरह की भी हॉवी उसमें न थी। वह न घूमने-टहलने का प्रेमी था, और न हँसी-खेल का वह न तो पीता था, और न नाच या मिलने-जुलने का रसिया ही था। वह एक विचित्र मानव था, जो किसी से भी मेल-जोल बढ़ाना बिलकुल ही नापसंद करता था। वह न तो बात करना चाहता था, और न कभी किसी को इसके लिये प्रेरित ही करता था।

पद्मा का शासन भी कुछ कम गंभीर न था। वह ज्ञानदेव को घेरकर मानो रात-दिन जागती रहती थी—व्यवस्था और सतर्कता में तनिक भी कहीं त्रुटि न थी। ऐसी स्थिति में किसी के लिए संभव न था कि ऐसे चक्र-व्यूह को तोड़कर भीतर प्रवेश करे।

जॉर्ज साहब की संपत्ति उत्तरोत्तर नाश होती जा रही थी। कोठी गिरवीं तो थी ही, फ़ैशन और शान के चलते बीसों हज़ार का ऋण ऊपर से लद चुका था। प्रत्येक साल पाँच-सात हज़ार का कर्ज़ उनकी खोपड़ी पर चढ़ बैठता था। मा-बेटी ऐश-मौज की चीज़ें ही उधार खरीदती रहती थीं, और बिल देते-देते जॉर्ज साहब का हुलिया तंग रहता था।

उन्होंने भवानी बाबू का बहुत यश सुना था। वह मिट्टी छूकर सोना बना देते हैं, यह बात भी जॉर्ज साहब को मालूम हुई। जीवन से तंग आकर जॉर्ज साहब ने नया रास्ता पकड़ा, और वह रास्ता था भवानी बाबू का रास्ता।

सबसे पहले उनका ध्यान ज्ञानदेव की ओर गया।

रानी ने साफ़-साफ़ कह दिया—"लीला यदि चाहे, तो ज्ञान तो क्या उसका मरा बाप भी बंदर-नाच नाचने लगे, किंतु वह तो करोड़-पति ········।"

जॉर्ज साहब ने जवाब दिया—"विलायत में ऐसा ही होता है। छोकरियाँ उसी के पीछे लगी फिरती हैं, जिसे वे चाहती हैं—पात्रापात्र का विचार तो वे तब करने लगती हैं, जब संसार का काफ़ी अनुभव उन्हें प्राप्त हो जाता है। लीला भी अभी उसी रास्ते पर चल रही है।"

रानी बोली—"मैं चाहती हूँ ज्ञान लीला को पसंद कर ले, और दोनो विवाह करके सुखी हो जायँ। ज्ञान भी अकेला ही है। हम अपनी कोठी छोड़कर ज्ञान की संपत्ति की रखवाली करें। आपको नहीं मालूम है डार्लिंग, ज्ञान के पास लाखों की संपत्ति है।"

जॉर्ज साहब ने कहा—"ग़लत बात है। अपनी बुद्धि और दूसरे की संपदा बहुत अधिक नज़र आती है। हाँ, पचास-साठ हज़ार की संपत्ति हो सकती है। डॉक्टर कृपण था, रात-दिन रुपए बटोरता

रहता था। मुट्ठी सख्त रखने से पैसा जमा हो ही जाता है, इसमें कौन-सी बड़ी बात है।"

रानी ने रात को लीला से मुँह खोल कर कहा—"अरी पगली, ज्ञान से क्यों नहीं मित्रता बढ़ाती। वह कितना बड़ा आदमी है। वह मदरासी लूट रहा है, और बेचारा ज्ञान भकुआ बना बैठा रहता है।"

लीला नन्ही बच्ची की तरह मचलकर बोली—"ममी, वहाँ पद्मा का राज्य है। वह बहुत ही खोटे स्वभाव की है। मैं तो उस दिन गई थी। ज्ञान भी ऐसा मूर्ख है कि एक शब्द बोलता ही नहीं।"

रानी बोली—"तुम्हारा यह बाप भी पहले बहुत बनता था। मुँह फुलाए बैठा रहता यह अपनी शान समझता था। इसके बाद क्या हुआ, बतलाऊँ ?"

लीला मा की गर्दन में बाँहें डालकर साग्रह बोली—"बतलाओ न ममी, क्या हुआ।"

ममी ने कहना शुरू किया—"कुछ ही दिनों में तुम्हारा बाप लंगूर की तरह मेरे बाग़ में छलाँगें भरने लगा। मेरे पिता बंदूक लेकर दौड़े, पुलिस में रपट लिखवाई, पर यह काहे को माने। तंग आकर मेरे बाप ने इससे मेरा विवाह कर दिया। तू भी यदि चाहे, तो उस मदरासिन छोकरी को झाड़ू मारकर निकाल बाहर कर सकती है। अब समय बीत गया, नहीं तो तुझे यह करके दिखला देती।"

लीला को यदि लजाने की आदत होती, तो मा की ऐसी बात सुनते ही भाग खड़ी होती, किंतु वह तो रस ले-लेकर सुन रही थी।

ज्ञानदेव के लिए लीला भी बेज़ार थी, किंतु कोई उपाय नज़र नहीं आता था। पद्मा के प्रभुत्व ने उसे निराशा के निकट तक पहुँचा दिया था, फिर भी उसने हिम्मत नहीं हारी। उसने सब कुछ सुनकर और सहकर भी ज्ञानदेव के निकट आते-जाते रहने का निश्चय किया।

वसंत की दोपहरी थी। पतझड़ आरंभ हो चुका था। कभी कुछ गरम और कभी शीतल हवा के हल्के-हल्के झोंके आते थे। कोयल भी बोलने लग गई थी। लीला खुली खिड़की के सामने खड़ी-खड़ी बाहर की ओर देख रही थी। हवा का एक झोंका आया कुछ सूखे पत्ते और धूल के साथ। लीला की पीली सारी अस्त-व्यस्त हो गई। उसके बाल चेहरे पर बिखर गए। उसने अपने भीतर आलस्य और कसकसाहट का अनुभव किया। उसका अंग-प्रत्यंग नशे से मानो शिथिल हो गया।

वह खाट पर लेट गई, और आँखें बंद करके सोचने लगी। खुली खिड़की से रह-रहकर हवा के झोंके आ रहे थे। फागुन का अंत हो रहा था। लीला कुछ देर तो आँखें बंद किए लेटी रही किन्तु फिर उठ बैठी, और कमरे से बाहर निकली। वह चाहती थी,, टहलती हुई ज्ञानदेव की कोठी की तरफ़ जाय, उसका मन अकारण उदास हो रहा था। वह चुपचाप अपनी कोठी के बरामदे से नीचे उतरी। उसके पैरों के नीचे सूखे पत्ते पड़कर हल्की चरमराहट पैदा कर रहे थे। यह शब्द लीला को बहुत ही मादक जान पड़ा। वह जान-बूझ कर वहीं पैर रखने लगी, जहाँ सूखे पत्ते बहुतायत से बिखरे होते। यह एक खेल था, जिसे अन्यमनस्क होकर लीला खेलती हुई आगे बढ़ रही थी।

तेज़ धूप से उसके ललाट पर तुरंत पसीना आ गया। लीला अपनी चिकनी हथेली से पसीना पोंछकर, ज्ञानदेव की कोठी की ओर मुँह करके खड़ी हो गई, जो यू-के-लिपटस के सफ़ेद और लंबे वृक्षों से घिरी सामने ही नज़र आती थी। लीला ने रुककर कुछ सोचा, और फिर आगे कदम बढ़ाया। फिर हवा का एक झोंका आया—सूखी पत्तियाँ और धूल लीला पर बरस पड़ी।

वह हठपूर्वक ज्ञानदेव की निकटता प्राप्त करने का मानो निश्चय

खिंचाव पर छोड़ दिया। लीला रुकती हुई आगे बढ़ी। अब वह शास्त्रीजी के बँगले के सामने थी, इसके बाद ही था ज्ञानदेव का दुमंजिला बँगला। शास्त्रीजी की कोठी बाहर से देखने पर जनहीन-सी दिखलाई पड़ती थी। दो-तीन बकरियाँ सन्नाटे में भीतर घुसकर फूलों के पौधों को चबा रही थीं और एक कौआ मौलसिरी की डाल पर बैठा पंख तोल रहा था—उड़ने के लिए। कोठी के दरवाजे बंद थे—अजीब सन्नाटा था। लीला रुककर देखने लगी।

इसके बाद एक दरवाजा खुला, और पद्मा धीरे से बाहर निकली। उसने लौटकर पीछे की ओर देखा, और किसी ने भीतर से दरवाजा बंद कर दिया। पद्मा बरामदे से नीचे उतरी, और कुछ सोचती हुई ज्ञानदेव की कोठी की ओर चली गई। उसने लीला को नहीं देखा—वह आत्मविभोर-सी चल रही थी।

पद्मा का सोने-जैसा रंग धूप में चमक रहा था, और उसकी हल्की पीली जरी की किनारीवाली रेशमी साड़ी का पल्ला हवा के स्पर्श से कभी-कभी कंधे पर से खिसक जाता था।

लीला ने कहा—"अगर रूप हो, तो ऐसा। जान पड़ता है, सोने की प्रतिमा चल रही है। ज्ञानदेव इसका सेवक क्यों बन गया, इसका पता मुझे आज चला।

लीला वहीं से लौट पड़ी।

बहुत ही उदास मन से भग्नमनोरथा लीला अपनी कोठी में पहुँची, जहाँ उसने मरियल राजीव को अपनी जघन्यता के साथ बैठकर गुनगुनाते देखा। घृणा और रोष से लीला का मन भर गया। रात को सुंदर दीखनेवाला राजीव दिन के प्रकाश में कितना घिनौना लग रहा था—छिः। लीला ने न तो उसकी ओर देखा, और न एक शब्द पूछा। वह अपने कमरे में घुसी, और पालतू कुत्ते की तरह पीछे-पीछे राजीव भी भीतर घुसा। हठात् लीला की आँखों के सामने ज्ञानदेव का रूप झलमला उठा—उन्नत शरीर, मांसपेशियों से भरी

हुई पुष्ट भुजाएँ, स्वस्थ-सुंदर-लाल चेहरा और पौरुष का ज्वलंत पुतला। इसके बाद उसने अपने सामने देखा राजीव को, जो अपने काले, जले होठों में एक सिगरेट फँसाए दबी हुई छती और पतली टेढ़ी टाँगों के बल-बूते पर मजनू के कान काटा करता था। लीला अत्यंत घृणा से बोली—"इस समय ?"

राजीव उँगलिआँ मटकाकर नौटंकी के छोकरे की तरह बोला—

"समझो वहीं मुझे भी, दिल हो जहां हमारा।"

लीला का मूड और भी खराब हो गया। वह भीतर-ही-भीतर उबल रही थी, पर चुप थी। राजीव ने ज़रा-सा आगे झुककर कहा—"यह लो, मेरी जान।" इसके बाद उसने अपनी पतलून की जेब से एक अद्धा निकालकर संगीत के स्वर में कहा—"अब रात को आऊँगा, इसे सँभाल कर रख लो, आवेहयात से भी बढ़िया चीज़ है स्कौच।"

लीला ने बहुत ज़ोर लगाकर अपनी झुंझलाहट को दबाया, और नरम स्वर में कहा—"मेरी तबीअत ठीक नहीं है बाबू। आज पीना नहीं हो सकता।"

राजीव फिर आवारों की भाषा में बोला—"तड़पा-तड़पाकर क्यों मारता है क़ातिल, एक बार ही गला क्यों नहीं उतार लेता।"

इतना कहकर गले पर खंजर चलाने का ऐसा सफल नाट्य राजीव ने किया कि लीला के मुंह से बरबस हँसी फूट पड़ी।

राजीव सफल हुआ। उसने लीला की बाँह पकड़ी और सोफ़े पर बैठाकर कहा—"आख़िर गुदगुदाकर मैंने तुम्हें हँसाया ही। अब बोलो, कैसी तबीयत है ?"

लीला उठ खड़ी हुई, और अपने कपड़ों को ठीक करती हुई बोली—"ठीक नहीं है। शरीर में दर्द है। सिर चकराता है।"

राजीव बोला—"अपने उस विलायती बाप से कहो न कि वह तुम्हारी शादी किसी मेरे-जैसे नौजवान से करा दे।"

लीला बोली—"इतना और जोड़ दो कि वह नौजवान आवारा हो, लफंगा हो, गंदे स्वभाव का हो, शराबी और टी० बी०-सेंटर से लौटा हुआ हो।"

बेशर्म की तरह राजीव खिलखिलाकर हँस पड़ा, और बोला—"तुम-जैसों को सब कुछ कहने का अधिकार है।"

लीला का मन फिर घृणा से भर गया। वह बोली—"शर्म नहीं आती, जो बेसिर-पैर की बातें बके जा रहे हो? सीमा के भीतर रहो जी।"

राजीव भी एक ही परकटा था। वह नाचने की मुद्रा में खड़ा होकर बोला—

"उनको आता है प्यार पर गुस्सा,
मुझको गुस्से पै प्यार आता है।"

प्यार का इज़हार करके राजीव बोला—"अब तो चला। ठीक दस बजे बंदा आकर फिर कदम चूमेगा—बंदगी।"

वह अपनी एँड़ी पर चाक की तरह घूम गया, और पीछे लौटकर देखता, मुस्किराता कमरे के बाहर हो गया।

चित्त की विकलता को न दबा सकने के कारण लीला सोफ़े पर छटपट करने लगी। उसने सोचा—हाय, मैं कितना गिर गई हूँ कि इन कमीनों को चप्पल मारकर कोठी से निकालने की ताकत भी मुझमें नहीं रही। यह व्यक्ति यदि पद्मा की कोठी में जाय, और इस तरह नाटक करे, तो क्या हो। निश्चय ही पद्मा बेंत मार-मारकर इसकी जान निकाल दे। अगर ज्ञानदेव सुन ले, तो गोली मारे बिना न छोड़े। एक मैं हूँ, जो किसी वेश्या से भी अधिक पराधीन हो गई हूँ।

सत्य का प्रकाश कभी-न-कभी महापापी के हृदय में भी क्षण-भर के लिए फैल जाता है। यह प्रकाश जब किसी पवित्र हृदय में फैलता

है, तो वहाँ ठहर जाता है, किंतु पतित हृदय में एक बार बिजली की तरह कौंधकर गायब हो जाता है—यही अंतर है ।

लीला ने भी सत्य के प्रकाश में क्षण-भर के लिए अपने को देखा, किंतु वह फिर बदबूदार अंधकार में डूब गई, वह अंधकार था अशेष नरक का, जिसकी ठेकेदारी उसके बाप ने ले रक्खी थी ।

पद्मा अपनी मंद चाल से चलती हुई ज्ञानदेव की कोठी में घुसी । नौकर, जमादार, जो जहाँ थे, सलाम करने लगे । सभी सावधान हो गए । सूनी-सी दिखलाई पड़नेवाली कोठी एकाएक बोल उठी ।

पद्मा ऊपर गई । इशारे से नौकरानी ने बतला दिया कि मालिक सो रहे हैं । पद्मा कमरे का पर्दा हटाकर भीतर घुसी । ज्ञानदेव सचमुच सो रहा था । पद्मा ने घड़ी देखकर उसे जगाने का प्रयत्न किया । वह जागा, किंतु कराहता हुआ । पद्मा व्याकुल होकर खाट के एक कोने पर ही बैठ गई, और ज्ञानदेव का ललाट स्पर्श करके बोली—"ज्वर । हाय, यह क्या हो गया ।"

ज्ञानदेव आँखें बंद किए पड़ा रहा । लोक-लाज को तिलांजलि देकर पद्मा ने अपनी जाँघ पर ज्ञानदेव का सिर रक्खा, और दबाना शुरू किया । आँखें बंद किए ज्ञानदेव अर्ध-मूर्छित-सा पड़ा रहा । बहुत तेज़ ज्वर था—एक सौ चार ।

अब क्या हो ?

पद्मा के होश हिरन हो गए । कुछ देर उसी तरह रहकर वह उठी, और फ़ोन से, जितने डॉक्टरों का नाम याद आया, कौल दे दिया । उसने दरवान को बुलाकर कहा—"मेरे बाबा को जल्द बुला लाओ ।"

इतना काम करके पद्मा फिर ज्ञानदेव के सिरहाने जा बैठी । शास्त्रीजी भी घबरा उठे । पूछने पर दरवान ने कहा—"यही हुक्म हुआ कि हुज़ूर को बुला लाऊँ । इससे अधिक मैं कुछ नहीं जानता ।"

दोपहर का समय था । शास्त्रीजी भी पहुँचे । नौकरानियों ने

बतलाया—"मालिक की तबीअत खराब हो गई है। मालकिन उसी कमरे में हैं।"

नौकरानियाँ पद्मा को 'मालकिन' कहती हैं, यह शास्त्रीजी को पता न था। उन्होंने अपने मन में कुछ संकोच का अनुभव किया।

शास्त्रीजी ने देखा, पद्मा ज्ञानदेव का सिर दबा रही है—निःसंकोच भाव से।

पिता को देखते ही वह खाट से उतरने लगी, तो ज्ञानदेव ने पद्मा का हाथ पकड़कर कराहते हुए कहा—"कहीं न जाओ पद्मा, आह, बड़ी जलन है—पानी दो, प्यास है।"

पद्मा ने ज्ञानदेव का सिर ज़रा-सा ऊपर उठाकर पानी पिलाया। दो घूंट पानी पीकर ज्ञानदेव फिर अचेत-सा हो गया।

पद्मा अपनी उमड़ती हुई रुलाई रोक नहीं सकी। वह अपने ऋषि-स्वरूप पिता की छाती पर सिर रखकर रोती हुई बोली—"बाबा, यह क्या हो गया?"

शास्त्रीजी की आँखें भी सजल हो गईं। वह बोले—"पगली है क्या पद्मा, ज्ञान आराम हो जायगा। मौसमी बुखार है।"

पद्मा बोली—"नहीं बाबा, यह कभी अपनी मा और कभी पिता से बातें करने लगते हैं—जैसे दोनों इनके सामने खड़े हों।"

फिर ज्ञानदेव ने बैचेनी से कराहकर कहा—"मा, बहुत दूर है, नहीं चल सकूँगा – आह।"

पद्मा अपने पिता की बाँह झकझोरती हुई बोली—"बाबा, बाबा, सुनो। इन्हें क्या हो गया है बाबा, क्यों ऐसी बातें बोलते हैं?"

शास्त्रीजी खड़े-खड़े शांति-पाठ करने लगे। पद्मा फिर ज्ञानदेव के सिरहाने जाकर बैठ गई, और उसके बालों में उँगली डालकर सहलाने लगी। ज्ञानदेव ने अधीरता-पूर्वक पद्मा का हाथ खींचकर अपनी आँखों पर रख लिया। बेचैनी से छटपट करता हुआ वह बोला—"पद्मा, कहाँ चली गईं? कहाँ गईं, आह, जाओ, जहाँ जी चाहे—पद्मा, आह।"

पद्मा से नहीं रहा गया। वह आँचल से मुँह ढाँककर, फूट-फूटकर रोने लगी। पत्थर की मूर्ति की तरह शास्त्रीजी खड़े-के-खड़े रह गए। जब पद्मा की रुलाई से उनका ध्यान भंग हुआ, तो बोले— पद्मा, रोती क्यों हो? ऐसा अशुभ कर्म मत करो। धीरज से काम लो बेटी।"

इसी समय दो डॉक्टर आए। दोनो शहर के श्रेष्ठ चिकित्सक थे। जाँच के बाद डॉक्टरों ने राय दी—"अभी कुछ भी कहा नहीं जा सकता कि इतना तेज़ बुखार कैसे हो गया। मलेरिया, चेचक या दूसरा कुछ भी हो सकता है। ताप-मान चार तक पहुँच चुका है।"

आइस-बैग या सिर पर रखने के लिए किसी शीतल चीज़ की व्यवस्था करके वे चले गए। चलते-चलते एक डॉक्टर ने कहा— ज़रूरत पड़ने पर किसी समय भी मुझे बुलाया जा सकता है।"

बर्फ़ का बैग सिर पर रखने से ज्वर तो कुछ कम जरूर हुआ, किंतु होश नहीं आया। पद्मा की आँखें सूज गई रोते-रोते।

पद्मा की मा भी आई, किंतु उसने अपना रोना बंद नहीं किया, और क्षण-भर के लिए भी ज्ञानदेव की खाट से अलग नहीं हुई।

यदि पद्मा दो-चार मिनट के लिए अलग भी होती, तो ज्ञानदेव चिल्ला उठता, और पद्मा की मा घबराकर पद्मा को झिड़कने लगती कि "तू क्यों इधर-उधर जाती है। ज्ञान की रक्षा कर, भगवान् सेवा का फल देंगे।"

साश्रुनयन पद्मा हाथ जोड़कर भगवान् का ध्यान करके प्रणाम करती।

आपत्ति-काल में सभी तरह के नियमों का अंत हो जाता है। शास्त्रीजी यह तो जानते थे कि पद्मा ज्ञानदेव के हृदय के बहुत निकट चली गई है, किंतु यह नहीं जानते थे कि पद्मा ने अपने लिए कुछ नहीं रक्खा, उसने अपने स्व को ज्ञानदेव में एकाकार कर दिया है।

पद्मा की मा ने भी जब यह दृश्य देखा, तो वह आनंद-विभोर हो गई, और अपने पति से बोली—"कुछ देखा तुमने ?"

शास्त्रीजी ने अनजान की तरह पूछा—"क्या ?"

पद्मा की मा बोली—"अब पद्मा हम लोगों से दूर हो गई। जब ज्ञान स्वस्थ हो ले, तो एक दिन शुभ मुहूर्त ······।"

शास्त्रीजी ने कहा—"ज्ञानदेव बहुत ही कठोर, गंभीर और लोहे-जैसा दृढ़ चरित्रवान् है। मुझे भय है कि कहीं वह इनकार न कर दे।"

पद्मा की माँ मुस्किराकर बोली—"अपने शास्त्र-ज्ञान को अलग ही रक्खो। यदि दो दिन के लिए भी पद्मा ज्ञानदेव से अलग हो जाय, तो मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि दोनो में से कोई जरूर पागल हो जायगा, या आत्मघात कर लेगा।"

शास्त्रीजी बैठे भागवत का पारायण कर रहे थे। घबराकर उन्होंने चश्मा उतारते हुए पूछा—"आत्मघात ? हरे, हरे, यह तो महापाप है। शास्त्रों में लिखा है कि ·····।"

पद्मा की माँ झुँझला उठी, और बोली—"तुम्हारी विद्या तो करोड़ रुपयों की है, किंतु बुद्धि है तीन कौड़ी की। सो रहे थे क्या ?"

शास्त्रीजी पत्नी की फटकार सुनते ही होश में आ गये और बोले—"मैंने समझा नहीं, कौन आत्मघात करनेवाला है ?"

पद्मा की माँ अपने पति को जानती थी। वह दुनियादारी से दूर रहनेवाले एक कर्म-निष्ठ तपस्वी थे। उसने फिर से जब सारी बातों को स्पष्ट किया, तो शास्त्रीजी बोले—"समझ गया। जरूर दोनो को अलग करना दोनो की जान लेना होगा। मैं ऐसा निंद्य कर्म नहीं कर सकता।"

पद्मा की माँ आनंद से विभोर हो उठी।

तीसरे दिन ज्ञानदेव होश में आया। उसके खून की जाँच करके डॉक्टरों ने कहा टायफ़ायड है। रोगी को अस्पताल ले जाना अच्छा होगा।"

पद्मा तेज स्वर में बोली—"मैं एक लाख रुपया खर्च करूँगी। अस्पताल को यहीं उठाकर ले आओ।"

ज्ञानदेव की कोठी में ही अस्पताल चला आया। एक डॉक्टर और चार नर्सें रात-दिन ड्यूटी देने लगे।

पद्मा ने फिर भी ज्ञानदेव के निकट से हटने का नाम नहीं लिया।

ज्ञानदेव न तो किसी नर्स का स्पर्श किया हुआ जल पीता, और न दवा ही लेता। उसने पद्मा से कह दिया "कोई दूसरी स्त्री यदि मेरा शरीर स्पर्श कर लेगी, तो मैं बिना दवा और जल के प्राण दे दूंगा।"

पद्मा भय से काँप उठी। शास्त्रीजी भी वहीं मौजूद थे। उन्होंने पद्मा से कहा—"सुन लिया पद्मा, ज्ञान क्या कहता है।"

पद्मा ने धीरे से कहा—"मैं तो पहले ही से जानती थी बाबूजी। इन-जैसा जिद्दी संसार में शायद ही खोजने से मिले।"

पद्मा की मा ने कहा—"और तुझ-जैसी भाग्यवती?"

लज्जा से पद्मा का सूखा हुआ चेहरा क्षण-भर के लिए लाल हो गया। वह सिर झुकाकर मुस्किराई—उसके लाल-लाल होठों पर लज्जा मिश्रित मुस्कान धीरे से उभरी, और खत्म हो गई। किसी ने उस पवित्र मुस्कान को देखा भी नहीं।

एक सप्ताह से पद्मा भी वार्ली-वाटर और फल का जूस ही लेती रही, और उतना ही, जितना ज्ञानदेव लेता था—दिन-भर में पाँच-दस चम्मच।

एक दिन पद्मा कमजोरी, थकान और नींद के मारे बेहोश हो गई। नौकरानियों ने उसे सँभाल लिया। मन टिकते ही वह फिर ज्ञानदेव के निकट जाकर बैठ गई। जब पद्मा की मा ने नौकरानियों से पूछा कि पद्मा कब स्नानाहार करती है, तो एक नौकरानी ने कहा—"माजी, आज एक सप्ताह हुआ, मालकिन ने शायद कुछ भी नहीं खाया। मालिक के लिए जो बार्लीवाटर या फल का रस वह तैयार

करती हैं, उसी में से दो-चार चम्मच ले लेती हैं। डर के मारे हम कुछ कहतीं नहीं। ऐसी तपस्या हमने तो कहीं नहीं देखी माजी।"

पद्मा की मा की आँखों में आनंदाश्रु छा गया।

शास्त्रीजी को जब यह समाचार मिला, तो वह बोले—"नारायण, उसे श्रद्धा और बल देना। वह कठोर धर्म का पालन कर रही है।"

इतना कहकर शास्त्रीजी नारायण की प्रतिमा के सामने भक्ति-विह्वल चित्त से बैठ गए।

कहीं छावँ, कहीं धूप

जंगली हाथी का शिकार बहुत ही रोमांचक होता है।

पालतू हथिनी या हाथी को हाथी के व्यापारी उस जंगल में ले जाते हैं, जहाँ हाथी होते हैं। सिखलाए हुए हाथी जंगली हाथी से मेल-जोल बढ़ाते हैं, उसे धोखा देकर उस खंदक में गिरा देते हैं, जो इसी काम के लिए हाथी के व्यापारी या शिकारी तैयार करके पहले से रखते हैं, और उसे पतली डालियों से ऊपर से ढाँक देते हैं।

हाथी फँस जाता है, और बेचारा मरने के दिन तक पीठ पर भार ढोता है, मनुष्यों की गुलामी करता है। मर जाने पर भी मनुष्य उसकी हड्डियों को बेचता है—दाँत तो कीमती होते ही हैं।

भवानी बाबू भी हाथी के शिकार की कला के जानकार थे। एक दिन उन्होंने अपनी बहन चंपा को सिखला-पढ़ाकर हाथी फँसाने के लिए तैयार किया। वह तैयार हो गई, और साहब की कोठी की ओर टैक्सी पर सवार होकर चल पड़ी। भवानी बाबू भी साथ थे।

चंपा बहुत सुंदरी और भरे हुए शरीर की युवती थी। नई रोशनी की परी होने के कारण उसने अपने आप को आनंद-मौज के लिए सार्वजनिक संपत्ति बना दिया था, जैसे पार्क या तैरने का सार्व-

जनिक तालाब । वह थी तो ऐसी नहीं, किंतु भवानी बाबू ने प्रयास करके उसे अप-टु-डेट बनाया था । भवानी बाबू चंपा का भी उपयोग धन कमाने में करना चाहते थे—यह बात चाहे कहने और सुनने में बुरी भी लगे, किंतु जो व्यक्ति साध्य को ही प्रधानता देता है, साधन की ओर कभी ध्यान नहीं देता, उसके लिए यह बात मामूली से कुछ भी अधिक महत्व नहीं रखती । भवानी बाबू किसी भी उपाय से अधिक-से-अधिक धन बटोरकर अपने को दुनिया के सामने एक शानदार व्यक्ति के रूप में पेश करने को कृतसंकल्प थे । चाहे किसी भी उपाय से हो, उन्हें पैसा प्राप्त करना था । वह कहते थे—"यदि हमारे पास धन रहेगा, तो दुनिया पैर चूमेगी, और प्रतिष्ठा भी प्राप्त होगी । ग़रीब की इज्ज़त नहीं होती, वह चाहे संत हो या आलिम । इसी सूत्र को मन में रखकर भवानी बाबू रात-दिन धन बटोरने का काम करते थे । कौन क्या कहता है, यह जानने की कोशिश वह कभी नहीं करते थे । अपनी धुन में लगे रहना ही उनका काम था ।

चंपा को साहब के बँगले पर पहुँचाकर भवानी बाबू जॉर्ज साहब की कोठी पर पहुँचे । दो-चार महीनों में ही जॉर्ज साहब से उन्होंने गहरी मित्रता पैदा कर ली थी ।

जॉर्ज साहब ने मि० चर्चिल की तरह मोटी चुरुट होंठों में दबाकर 'हल्लो' कहकर उनका स्वागत किया ।

रानी ने लीला से कहा—"अरी, जल्दी कपड़े बदल, मि० भवानी आए हैं । हाँ, सुन ले, जाकर दूर मत बैठना, बगल में सटकर बैठना । विलायत का कायदा है कि जवान लड़कियाँ किसी भी पुरुष से सटकर ही बैठती हैं—दूर बैठने से दोस्ती नहीं हो सकती । समझ गई न ?"

लीला जल्दी-जल्दी कपड़े बदल कर फुदकती हुई कमरे से निकली, और ऊपर मन से मुस्किराती हुई भवानी बाबू की बग़ल में सटकर बैठ गई । भवानी बाबू ने लीला को देखकर सोचा—यदि इसकी मदद मिले, तो सावन-भादों की तरह रुपयों की वर्षा हो ।

शराब की बोतलें आईं, और एक जाम लीला ने अपने हाथ से भरकर भवानी बाबू को दिया, रानी ने अपने पतिदेव को मुस्किराकर पिलाया ।

जॉर्ज साहब बोले—"भाई, विलायत का यही कायदा है कि मेहमान को उस घर की लड़कियाँ पिलाती हैं । मैं तो हिंदुस्तानी तहज़ीब का हाल जानता ही नहीं, माफ कीजिएगा मि० भवानी ।"

भवानी बाबू भी पक्के छतीसा थे । उन्होंने मन-ही-मन कहा—"साले, विलायत का नाम ले-लेकर जो जी चाहे, किए जाओ । कुकर्म करने का यह अच्छा बहाना है कि विलायत में ऐसा ही होता है ।"

जॉर्ज साहब ने चुरुट का डब्बा भवानी बाबू के आगे पेश करते हुए कहा—"लीजिए । जब मैं विलायत में था, लॉर्ड कैंपवेल से रोज़ मिलता था । वह अमेरिका में राजदूत रह चुके थे । पुरानी तहज़ीब के माने हुए जानकार थे । राजघराने में जब-जब भोज होता था, लॉर्ड उसकी व्यवस्था करते थे ।"

जॉर्ज बके जा रहे थे, किंतु भवानी बाबू का ध्यान दूसरी ओर था । वह सोच रहे थे कि यदि चंपा साहब को प्रसन्न कर सकी, तो कल ही पंद्रह हज़ार की गड्डी हाथ लग जायगी ।

किसी धनी सेठ का मामला था, और भवानी बाबू ने उसे सीधा कर देने का ठेका ले रक्खा था । उस रात को साहब के पोते या नाती की छठी थी । इसी बहाने से चंपा को भवानी बाबू ने वहाँ भेजा था । साहब को चंपा चाचा कहती थी । अपने चाचा से कह-सुनकर सेठ का संकट मिटाना चंपा के लिए बाएँ हाथ का खेल था, किंतु भैया ने उसे कई बार धोखा दिया था ।

एक बार किसी बहुत बड़े अधिकारी को फँसाकर अपने भैया को काफी लाभ करा दिया, मगर वादा करके भी भैया ने हीरे का कंगन नहीं खरीद दिया—पूरा रुपया डकार गए । दूसरी बार एक लखपति के बेटे को उसने भैया के कहने पर जेल से उबारा, पर भैया ने एक

छदाम भी नहीं दिया—और भी बहुत-सी घटनाएँ हो चुकी थीं, जिनकी याद चंपा को खिन्न बना रही थी।

ठीक एक बजे, जब सारी दुनिया सो रही थी, चंपा साहब की कोठी से निकली। भवानी बाबू पहले से ही मोटर लिए हाज़िर थे। वह उछलकर गाड़ी में घुस गई।

डेरे पर पहुँचकर भवानी बाबू ने पूछा—"भैया ने क्या कहा चंपा ?"

चंपा उदास स्वर में बोली—"राज़ी नहीं हुए।"

भवानी बाबू बरस पड़े—"तू गधी है। काम की ओर तेरा ध्यान ही नहीं रहता। मैं तो तेरे लिये रात-दिन चिंतित रहता हूँ, और तू मेरी मुसीबतों पर ज़रा भी ध्यान नहीं देती।"

चंपा थकी और उनींदी-सी खाट पर बैठकर बोली—"मैं क्या करूँ भैया ? वह कहने लगे—बदनामी होगी। मामला गंभीर है।"

भवानी बाबू ने सोचकर कहा—"कल फिर जाना तो चंपा।"

चंपा ने मुंह फुलाकर कहा—"साहब की चुड़ैल-जैसी बीबी मेरे जाने से झुंझलाती है, और कहती है कि ······।"

चौंककर भवानी बाबू बोले—"क्या कहती है वह शैतान की नानी ?"

चंपा ने मान-भरे स्वर में कहा—"आजकल की छोकरियाँ बड़ी खतरनाक होती हैं। जिसके घर में घुसती हैं, सत्यानाश कर देती हैं।

भवानी बाबू ने बहन की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"बकने दे शैतान को। हमें अपने काम से मतलब है। तू जानती नहीं, मुझे ही लोग न जाने क्या-क्या कहा करते हैं, फिर साले मेरे दरवाजे पर खाक क्यों छाना करते हैं ? अगर काम बन गया, तो हीरे का कंगन ·······।"

चंपा बोली—"भैया, तुम बच्चों की तरह मुझे भी ठगा करते हो।"

चालाक भवानी बाबू ने पता लगा लिया, उनकी दुलारी बहन ने क्यों नहीं साहब को खंदक में ढकेला। चंपा का एक भी तीर कभी बेकार नहीं जाता था। भवानी बाबू जानते थे कि ब्रह्मास्त्र की तरह जिस-जिस पर चंपा का उन्होंने प्रयोग किया, उसकी लाश ही तड़पती नज़र आई—वह बूढ़ा मि० जेम्स हो या मरियल, बीमार अफ़ीमची करीमअली। सभी चारों खाने चित्त नज़र आए, फिर कोई कारण नहीं कि पुराने प्रेमी और भाई बड़े साहब अछूते रह जायँ।

भवानी बाबू बोले—"कल तुझे हीरे का कंगन लाकर दे दूँगा, तब जाना।"

आनंद से उछलती हुई चंपा ने अपने यशस्वी भैया का कंधा झकझोरते हुए कहा—"फिर मत भूल जाना भैया।"

भवानी बाबू ने स्नेह-भरे स्वर में कहा—"नहीं री पगली, विश्वास रख। तू मेरी बहन होकर कंगन के लिए ललचती है? कह तो, सिर से पैर तक जगमगाते हीरों से ढाँप दूँ।"

सुंदर सपनों से खेलती हुई चंपा ने रात काटी।

दिन चढ़ते ही भवानी बाबू जौहरी की दूकान की ओर चले कंगन लाने। पैसे तो उनकी जेब में थे नहीं, किंतु पैसों से भी कीमती चीज़ उनके दिमाग़ में थी—वह थी अक़ल।

जिसके दिमाग़ में टकसाल होती है, वह धन की परवाह नहीं करता, और खास तौर से भवानी बाबू की तरह के आदमी तो पैसों को कूड़ा-कतवार से कभी अधिक महत्त्व देते ही नहीं। जिस उपाय से भी चाहा, काम बना लिया।

भवानी बाबू, साहब के ड्राइवर को कुछ-न-कुछ देते रहते थे। मौका देखकर वह मोटर ले आया, जिस पर सवार होकर भवानी बाबू जौहरी की दूकान पर पहुँचे। स्वागत-सत्कार का वहाँ तूफ़ान उठ गया।

वहाँ भी लेन-देन की ही चर्चा शुरू हो गई। इनकमटैक्स या

इसी तरह किसी टैक्स के भार से छुटकारा दिलाने का पक्का वचन देकर भवानी बाबू ने हीरे का एक जोड़ा कंगन आसानी से ले लिया। सेठ ने अपना सौभाग्य माना कि जिनका मुँह बड़े-बड़े जोहा करते हैं, जिनका नाम स्मरण करके कितने पापी कानून के वज्रपात से अनायास ही बच जाते हैं, कितने ऊँचे-ऊँचे पदों पर जिनकी दया से आज विराजमान हैं, जो एक साथ ही नेता, शासक, पंडित, कलाकार, आग भड़काने और बाढ़ पैदा करनेवाले और किसी को मजिस्ट्रेट तथा बर्बाद करने की असीम क्षमता रखते हैं, वह बिना बुलाये ही इस गरीब की दूकान पर पधारे, और वह भी एक तुच्छातितुच्छ महातुच्छ काम के लिए—हीरों के कंगन लेने। यह तो उनका बड़प्पन है, उनकी सादगी है।

केवल कंगन लेकर ही भवानी बाबू ने संतोष नहीं किया, दो-चार हजार का और सौदा भी कर लिया।

चंपा प्रसन्न हो गई।

भवानी बाबू का ध्यान लीला की ओर गया। उन्होंने चंपा को इस काम के लिए भी समझाया—"लीला को किसी तरह तुम अपनी सखी बना लो चंपा, वह बहुत ही अप-टु-डेट और सुशिक्षिता लड़की है।"

चंपा तो यह चाहती ही थी कि उसका संप्रदाय बढ़े। वह अपने महान् भाई के साथ जॉर्ज साहब के यहाँ पहुँची। वहीं करोड़पति बाबू भी बैठे थे। रात को जब करोड़पति बाबू के साथ लीला मन बहलाने के लिए बाहर चली, और दोनों घूमते-फिरते उस बन के किनारे पहुँचे, तो करोड़पति ने लीला से पूछा—"वह कौन थी लीला ?

लीला बोली—"भवानी बाबू की बहन। तुम भवानी बाबू को जानते हो ?"

करोड़पति ने कहा—"उस पाजी को कौन नहीं जानता, पक्का लुटेरा है। मेरे पिताजी को लूट लिया।"

लीला बोली—"यह तो असंभव बात है।"

करोड़पति ने कहा—"कसम खाता हूँ। नई मोटर लाइन दिलवाने के लिए दो हज़ार ले गया, फिर एक हज़ार ले गया, और अब मुलाक़ात ही नहीं करता।"

लीला बोली—"तुम्हारे बाबूजी सारे शहर को लूटते हैं, अगर भवानी बाबू ने उनको लूटा तो इसमें बुराई क्या है?"

करोड़पति बोला—"सूम का माल शैतान खाता है, यह तो सनातन धर्म है। मेरे लिये पिताजी के पास कुछ भी नहीं है, और भवानी माला चाहे, तो फिर आकर उनको दिन-दहाड़े लूट सकता है। सुनता हूँ, उसकी बहन भी बहुत खतरनाक है।"

लीला बोली—"खतरनाक? क्या कहते हो जी।"

करोड़पति ने कहा—"ठीक ही तो कह रहा हूँ लीला, वह अपने भाई के साथ प्रभावशाली लोगों के यहाँ जाती है, और उनको नाक पर चूना लगाकर साफ़ निकल आती है। बेचारा मुहम्मदरसीद हाय-हाय करके मर गया। उसकी नौकरी भी चली गई, इसी खूबसूरत चुड़ैल के चलते। आज बेचारा कौड़ी का तीन हो गया।"

लीला पर इसका उलटा असर पड़ा। चंपा की ओर वह और भी आकर्षित हो गई—अपने गुण-स्वभाव के अनुकूल साथी को खोज करना मानव-स्वभाव का एक प्रधान गुण है।

लीला ने कोई जवाब नहीं दिया। दो-तीन दिन बाद फिर चंपा आई। वह अकेली ही थी, और नाट्य-परिषद् में साथ ले जाने के लिये लीला से आग्रह करने आई थी।

एक भारत-प्रसिद्ध नर्तक अपनी नृत्य-कला का परिचय देने उन दिनों पधारे थे। चंपा उस दिन जड़ाऊ गहने पहनकर जगमग कर रही थी। लीला लालच-भरी दृष्टि से चंपा के रत्नों की ओर देखती हुई मन-ही-मन लज्जित हो गई। उसने अपने को ग़रीब और असमर्थ

पाया। लीला के मन में यह बात जम गई कि भवानी बाबू ज़रूर लखपति हैं और शक्तिमान् भी।

लजाती-लजाती लीला ने चंपा से पूछा—"यह नेकलेस कितने में खरीदा ?"

चंपा ने लापरवाही से जवाब दिया—"यह तो छ हज़ार का है, मामूली है।"

छ हज़ार का है, और उस पर तुर्रा यह कि मामूली है—लीला कसमसाकर रह गई। वह छ सौ रुपयों का भी कोई ज़ेवर खरीदने की ताकत नहीं रखती। यदि चंपा मित्र बनाती है, तो लाभ भी उठाती है। लीला अब तक केवल शराब-सिगरेट और सिनेमा तक ही रही, ऐसे मिले उसके फक्कड़ मित्र।

नाट्य-परिषद् में ही चंपा ने एक प्रभावशाली व्यक्ति की ओर इशारा करके लीला को बतलाया—"इन्हीं ने भैया को बीस हज़ार एक मुश्त दिया था, यह नेकलेस अलग से।"

वह सज्जन, जिनकी ओर चंपा इशारा कर रही थी, रामनामी ओढ़े और गले में तुलसी या लकड़ी की माला पहने पहली कतार में बैठे थे—उम्र भी साठ के लगभग थी। सिर के बाल जो बराबर कटे थे, चाँदी की तरह चमक रहे थे।

नृत्य समाप्त होने के बाद जब वह चले, तो चंपा ने निकट जाकर प्रणाम किया। उक्त सज्जन ने आशीर्वाद देकर कहा—"बेटी, तू भी आई थी ?"

लीला की ओर वह एकटक देख रहे थे, किंतु बातें कर रहे थे चंपा से। इसके बाद वह चले गए, तो चंपा ने कहा—"देख लिया न लीला, इनका कितना प्रेम मेरे प्रति है ?"

लीला ने धीरे से कहा –"हूँ।"

इसके बाद दो छोकरों की ओर इशारा करके चंपा ने धीरे से लीला के कान में कहा—"ये दोनो विलायत से आए हैं, बैरिस्टर हैं।

इनके पिता कई मिलों के मालिक हैं, अहमदाबाद और बंबई में मिल हैं। भैया से इनके पिता की ऐसी मित्रता है कि महीने में एकाध बार हवाई-जहाज़ पर उन्हें बंबई या अहमदाबाद जाना ही पड़ता है। दो-दो हवाई-जहाज़ इनके पास हैं। किसी दिन इनसे भी परिचय करा दूंगी।"

लीला मन-ही-मन कृतज्ञ हो गई और बोली—"मिस, तुम्हारे भैया का प्रभाव सारे राज्य पर है, सभी उनका मुंह जोहा करते हैं।"

चंपा ने विनय-पूर्वक कहा—"यह मेरा सौभाग्य है लीला। भैया यदि चाहें, तो जो आज सतमहले पर नजर आते हैं, वे जेल की रोटियां तोड़ते दिखलाई पड़ें। बड़े-बड़े मंत्री भैया से बिना राय लिए एक काम नहीं करते।"

चंपा अपने विश्वविजयी भैया का गुण-कीर्तन कर रही थी, और लीला अपने जले हुए भाग्य से चंपा के सौभाग्य की तुलना करके भीतर-ही-भीतर कटी जाती थी।

लीला ने अपने आपको चंपा से हीन मान लिया, और चंपा के प्रति उसके हृदय में नफरत पैदा हो गई।

चंपा चाहती तो यह थी कि लीला को वह अपनी ओर खींचे, किंतु क्षुद्र स्वभाव के कारण उसने लीला को यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया कि वह सभी दृष्टियों से उससे उच्च है और वह हीन।

ऐसा व्यक्ति, जो किसी को भी अपना प्रशंसक या मित्र नहीं बना सकता, बराबर दूसरे पर यही असर डालने का प्रयत्न करता रहे कि वह उससे श्रेष्ठ है। चंपा में भी यही दुर्गुण था, और लीला का स्वभाव था ईर्ष्या-प्रधान। वह किसी का भी सुख-सौभाग्य देखकर जल उठती थी—लीला में जो कमज़ोरी थी, उस कमज़ोरी को भड़काने-वाली कमज़ोरी चंपा में भी।

लीला कई दिनों तक चंपा के सौभाग्य और अपने दुर्भाग्य को मापती-तौलती रही। अंत में उसने करोड़पति से एक दिन मुंह खोल

कर कहा--"तुम मेरे मित्र और प्रिय साथी हो। तुम्हारे पास पैसों का अभाव नहीं है। मैं अपने पिता को बात-बात के लिये कष्ट देना नहीं चाहती।"

समझकर भी नासमझ बनता हुआ करोड़पति बोला—"इस तरह काम नहीं चलेगा लीला, तुम स्कूल में अध्यापिका क्यों नहीं बन जाती?'

लीला का खून खौल उठा। वह बोली—"शर्म नहीं आती बाबू, ऐसी राय देते। मैं अध्यापिका बनू या नर्स, फिर तुम किस मर्ज की दवा हो? बन लूंगी, जो जी चाहेगा।"

करोड़पति ने व्यापारी की बुद्धि से तुरंत भाप लिया कि लीला अब माल उतारने की चेष्टा कर रही है—वह बगलें झाँकने लगा। मुफ्त या मामूली सा खर्च करके यदि आनंद-मौज का डौल लग जाय, तो करोड़पति-जैसे पक्के सूदखोर व्यापारी कभी पीछे पैर नहीं दे सकते। जहाँ तिजोरी खोलने की बारी आई कि इनकी नानी मरी।

करोड़पति बोला—"लीला, मैं समझता हूँ। मेरे बाप का यह हाल है कि एक बार उन्हें दमा हो गया। एक डॉक्टर ने कहा—"अगर आठ-दस हज़ार आप खर्च कर सकें, और दो साल मदरास में रहना मंजूर करें, तो दमा जड़ से भाग सकता है।"

"पिताजी ने घर आकर पुरानी वही निकाली, और यह पता लगाया कि उनके बाप के मरने पर कितना व्यय हुआ था। वहीं से पता चला कि सात सौ कुल खर्च बैठा था—दाह-संस्कार से आरंभ करके वार्षिक एकोदिष्ट श्राद्ध तक। मेरे अभागे बाप ने यही तय किया कि मर जाने में ही फ़ायदा है।"

लीला बोली—"ऐसे मूजी बाप को जहर खिलाकर मार ही क्यों नहीं डालते?"

करोड़पति इधर-उधर देखकर बोला—"बात फूट जाने का डर है, नहीं तो मैं बाज़ नहीं आता। एक-एक पैसे के लिये हाथ तंग रहता है लीला, कसम खाता हूँ। तुझसे प्रिय मेरा कौन है, यह तो तू भी जानती है रानी।"

इतना कहकर करोड़पति ने लीला का हाथ इस अंदाज़ से पकड़ा कि लीला के मन का सारा अवसाद छू-मंतर हो गया।

करोड़पति फिर बोला—"लीला, मैं दुर्भाग्य का मारा हूँ। तुम्हारे निकट जितनी देर रहता हूँ, उतनी ही देर मन में शांति रहती है। कर्ज़ लेकर ही अपना काम चलाता हूँ। विश्वास करो लीला, कल ही एक मुगल से दो सौ लिया है।"

लीला का मन दुःख से भर गया।

कभी-कभी झूठ भी काम कर जाता है। करोड़पति ने अपने बाप की निन्दा करके और दुखड़ा रोकर लीला को स्थायी तोष दे दिया। वह जानता था, लीला का दिल उतना खराब अभी नहीं हुआ है। अभी वह पैसा बटोरने की कला और इच्छा, दोनों से दूर है। यौवन के आरंभ में नवयुवक स्वप्न-लोक में ही रहना पसंद करते हैं, ठोस धरती पर उतरकर सोचने और तदनुरूप काम करने की प्रवृत्ति उनमें नहीं होती। इस गुण की अधिकता नवयुवतियों में होती है, और वे प्रायः धूर्तों की धूर्तता की बलि-वेदी पर रेत दी जाती हैं।

लीला इधर अपने भाग्य के नाम पर बिसूर रही थी, और उधर पद्मा एक भारी धर्म-संकट में अनायास ही फँस गई।

अब ज्ञानदेव स्वस्थ हो चला था, किंतु पद्मा का हुक्म था कि खाट से नीचे दो सप्ताह नहीं उतरना होगा—अभी कमज़ोरी है। अनन्योपाय ज्ञानदेव खाट पर ही पड़ा रहता था।

पद्मा ने उसी दिन अन्न ग्रहण किया, जिस दिन ज्ञानदेव ने पथ्य खाया। वह भी बहुत ही कमज़ोर और दुबली हो गई थी। उसके पीले चेहरे और आँखों के नीचे की काली धारियों को देखकर शास्त्रीजी अत्यंत पुलकित होते थे। अपनी जीवन-सहचरी से वह बार-बार कहते थे—"तुम्हारी बेटी की तपस्या पूरी हो गई, तप का तेज उसके चेहरे पर चमकता है।"

बात भी कुछ ऐसी ही थी ।

एक दिन दोपहर को पद्मा ज्ञानदेव के सिर पर ठंडा तेल लगा रही थी । सुख से आँखें बंद किए ज्ञानदेव बैठा था । तेल-मालिश कर लेने के बाद पद्मा ने हँसते-हंसते कहा—"अब पुरस्कार मिलना चाहिए सरकार ।"

ज्ञानदेव बोला—"बैठो, तो ऐसा पुरस्कार दूं कि जीवन-भर याद रक्खो ।"

पद्मा खाट के एक किनारे बैठ गई । ज्ञानदेव ने पद्मा का दाहिना हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—"सावधान हो आओ पद्मा, यह अंतिम पुरस्कार देता हूँ ।"

पद्मा जब तक कुछ बोले, ज्ञानदेव ने अपनी उँगली की अँगूठी, जिस पर एक बहुत कीमती हीरा जगमगा रहा था, उतारकर पद्मा की उँगली में पहना दी, और पद्मा की अनामिका से माणिक की अँगूठी अपनी कनिष्ठिका में पहनते हुए कहा—"जाकर मेरी माता को प्रणाम करो ।"

पद्मा सन्नाटे में आ गई । वह सिर से पाँव तक सिहर उठी । यदि उसके पिता ने यह संबंध स्वीकार नहीं किया तो ?"

ज्ञानदेव ने फिर आदेश दिया—"खड़ी क्या सोच रही है पद्मा, मा को प्रणाम क्यों नहीं करती ।"

चुपचाप पद्मा ने आदेश का पालन किया । सामने ही ज्ञानदेव की मा की भव्य तस्वीर लगी थी । ज्ञानदेव ने भी खाट से उतरकर पद्मा के साथ ही माता को प्रणाम करके कहा—"मा, इसे स्वीकार करो ।"

पद्मा को ऐसा लगा कि उसके भीतर प्रकाश और शक्ति की-बाढ़-सी आ गई है । उसने लौटकर कहा—"तुमने मुझे कहीं का भी नहीं रहने दिया ।"

ज्ञानदेव बोला—"मुझसे भिन्न इस संसार में तू कहाँ रहना चाहती थी पद्मा ?"

"कहीं नहीं"—कहकर पद्मा ने झुककर ज्ञानदेव का चरण स्पर्श किया, और कहा—"मैं भी यहीं रहना चाहती थी ।"

दो दिन के बाद पद्मा की मा ने पद्मा की उँगली में ज्ञानदेव की अँगूठी देखकर शास्त्रीजी से कहा–"तुम शुभ मुहूर्त खोजते ही रहे, और तुम्हारी कुलच्छनी बेटी ने शुभ मुहूर्त खोज भी लिया ।"

शास्त्रीजी ने अकचकाकर पूछा—"अरे, यह क्या कहती हो ?"

पद्मा की मा बोली—"दोनों ने अँगूठियों की अदला-बदली कर ली ।"

शास्त्रीजी ने कहा—"हमसे पूछा तक नहीं ।"

पद्मा की मा बोली—"वे तुमसे पूछने आते कि हम अँगूठियों की अदला-बदली करे या नहीं ? तुम भी अजीब आदमी हो जी । संध्या हो गई, संध्या करो । तुम्हारे जैसे आदमी से बात करना भी गुनाह है ।"

शास्त्रीजी ने कहा—"ठीक है । आज नक्षत्र भी बहुत ही फल-दायक है ।"

पद्मा की मा ने कहा—"पद्मा हमसे बिलग हो गई ।"

शास्त्रीजी ने सोचकर जवाब दिया—"और ज्ञान जो उसके बदले में मिला ।"

इंद्र-धनुष

इन्द्र-धनुष में सात रंग होते हैं, और इस दुनिया में कितने रंग होते हैं, इसका पता किसी ने नहीं लगाया ।

अब जॉर्ज साहब इस धुन में लगे कि लीला को किसी तरह ज्ञानदेव पसंद कर ले, और जब ज्ञानदेव की विशाल संपत्ति का वर्णन भवानी बाबू ने सुना, तो उनकी जीभ में उसी तरह पानी आ गया, जैसे मोटी गाय देखकर कसाई की जीभ में पानी आ जाता है । उन्होंने सोचा कि किसी तरह चंपा ज्ञानदेव को मुरीद बना ले ।

लीला जानती थी कि ज्ञानदेव को घेरकर पद्मा उसी तरह सजग रहती है, जैसे अपने मणि को घेरकर विषधर नाग ।

चंपा को यह किस्सा मालूम न था, और न लीला को ही यह पता था कि उसकी सखी चंपा उसी की छाती पर मूंग दलने की योजना बना चुकी है । एक दिन लीला के साथ ही चंपा भी पद्मा से मेल-जोल बढ़ाने पद्मा की कोठी पर गई । पद्मा वहाँ नहीं थी । शास्त्रीजी से पता चला कि वह ज्ञान की कोठी से अभी नहीं लौटी है ।

संध्या हो गई थी । दोनो सखियाँ राहगीरों की नींद-भूख हराम करती हुई ज्ञानदेव की कोठी की तरफ चलीं ।

वहीं पद्मा से मुलाकात हो गई, जो अकेली ड्राइंग रूम में बैठी कुछ पढ़ रही थी। उसने बड़े तपाक से दोनो का उठकर स्वागत किया। चंपा का परिचय जानकर पद्मा ने विशेष आनंद व्यक्त किया। लीला ने पूछा—"संध्या हो गई है। बैठी क्या करती हो। टहलने क्यों नहीं जातीं।"

पद्मा ने सरल भाव से कहा—"ठीक तो है।"

इसके बाद उसने बिजली की घंटी का स्वीच दबाया, और छः फ़ुट लंबा, वर्दी-धारी अर्दली ने आकर सलाम किया।

पद्मा ने बिना उसकी ओर देखे गंभीर स्वर में कहा—"ड्राइवर से कहो, बड़ी गाड़ी लेकर आवे।"

यह शान, यह शासन, यह हुकूमत—लीला मन-ही-मन झल्ला उठी। पाँच मिनट में ही फिर वह अर्दली आया, और सलाम करके खड़ा हो गया। कुछ बोला नहीं। पद्मा पूर्ण गौरव के साथ उठी, और बोली—"चलो।"

लीला की निगाह पद्मा की उस उँगली पर टिकी हुई थी, जिसमें हीरे की दामी अँगूठी जगमगा रही थी। अपने को उसने बहुत रोका, किंतु अंत में पूछ ही डाला—"मिस पद्मा, यह अँगूठी बहुत कीमती जान पड़ती है। कितने में खरीदी?"

पद्मा ने स्नेह से अँगूठी को स्पर्श करके कहा—"जीवन और जहान, इहलोक और परलोक, जन्म-जन्मांतर का संचित पुण्य न्योछावर करके इसे प्राप्त किया मिस लीला।"

लीला तो इस रहस्य-पूर्ण उक्ति का कोई अर्थ नहीं समझ सकी, किंतु चंपा ने भाँप लिया। वह बोली—"यह अँगूठी बहनजी को बदले में मिली है क्या?"

पद्मा के सुंदर गाल पवित्र लज्जा से लाल हो गए। वह उस अँगूठी को अपनी उँगली के चारों ओर खिसकाती रही, कुछ बोली नहीं।

लीला ने फिर मूर्ख की तरह पूछा—"कीमती उपहार पाया मिस पद्मा ने ।"

पद्मा का रोमरोम रोष से जल उठा—कितनी नीच बुद्धि है इस अनार्य-संस्कार-संपन्न छोकरी में, छिः ।

चंपा की तेज़ निगाह से पद्मा का रोष छिपा न रह सका । वह बोली—"लीला बहन, तुम इतना भी नहीं समझीं, औरत की तरह सोचो बहन ।"

लीला समझ गई । अब उसने अपनापन दिखलाने के लिए कहा—"मैं तो मज़ाक कर रही थी । मिस पद्मा ने चुपके-चुपके सब कुछ कर लिया, आखिर हमारा मुंह मीठा कब होगा ?"

चंपा बोली—"इनकी ओर से कल मैं तुम्हारा मुंह मीठा कराती हूँ । हमारी मित्रता इस शुभ घटना के साथ ही शुरू हुई, अतः वह शुभ ही रहेगी ।"

बातों-ही-बातों में चंपा ने अपने यहाँ जल्से का न्योता भी दे दिया, तो पद्मा बोली—"नहीं, कल मेरे यहाँ आप लोग अपनी सखियों के साथ आइए । मेरी तीनो गाड़ियाँ आप लोगों की सेवा में रहेंगी ।"

'मेरी तीनो गाड़ियाँ'—इस वाक्य को पद्मा ने धीरे से, किन्तु अत्यंत दृढ़ता-पूर्वक कहा । लीला के हृदय पर यह वाक्य घूंसे की तरह लगा, और चंपा भी अनमनी-सी हो गई ।

लीला ने फिर पूछा—"ठीक है । आपकी कोठी पर या · · · · ।"

चंपा ने बात काटकर कहा—"अब तो इनकी कोठी यही है, जहाँ से हम अभी आ रही हैं, यहीं जल्सा होगा ।"

पद्मा ने अपने मन में आनंद-मिश्रित लज्जा का अनुभव किया । लीला ने कहा—"मिस चंपा, अभी तो विवाह नहीं हुआ ?"

चंपा ने कहा—"पहले मन विवाह कर लेता है, वही सच्चा विवाह है । लौकिक-विवाह क्या है—समाज उस पर मुहर लगा देता है, धर्म अपनी गवाही अंकित कर देता है ।"

इतनी दूर तक सोचने की आदत लीला को न थी। वह बोली—"आज का नारी-समाज विवाह को जंजाल मानता है, और यह है भी जंजाल ही।

फूल की सार्थकता अपनी टहनी पर महकने में है, न कि गुल-दस्ते में ?"

चंपा ने सोचकर कहा—"यह तो एक दृष्टिकोण है, जिसका समर्थन तुम कर रही हो। यही दृष्टिकोण अंतिम तो नहीं है मिस लीला।"

लीला फिर बोली—"यह दृष्टिकोण नहीं, युग का आदेश है।"

चंपा ने जवाब दिया—"युग ? युग क्या है मिस लीला, अनेक विचारों और आचारों का समूह। सदा से यही होता आ रहा है।"

चंपा की बातों ने पद्मा का ध्यान चंपा की ओर आकर्षित किया। पहले वह चंपा को भी छिछोर स्वभाव की एक तितली मानती थी, किन्तु उसकी बातों से यह स्पष्ट हुआ कि वह समझदारी भी रखती है। जो बहुत-सी उलझी चीजों में से सही चीज़ कौन-सी है, यह पहचाने, उसी को बुद्धिमान् कहा जाता है। चंपा चाहे कैसी भी हो, किंतु वह सही क्या है, यह जानने की कोशिश करती है, और जानती भी है, यह जानकर पद्मा ने मन-ही-मन चंपा को सराहा, और उसके प्रति उसका आकर्षण भी बढ़ गया।

लीला ने कहा—"मैं तुम्हारी बात मानती हूँ, किंतु बंधन बुरा होता है, चाहे वह लोहे का हो या रत्न-खचित सोने का। नारी जब बंधन में एक बार पड़ जाती है, तो उसके पर सदा के लिए टूट जाते हैं। क्या यह बात सही नहीं है ?"

चंपा ने कहा—"सही है, किंतु लता धरती पर नहीं फैलती, और न वह स्वयं अपनी सीध में खड़ी ही हो सकती है—उसे आधार चाहिए"

लीला बोली—यह तो पुराना तर्क है मिस चंपा। मैं इसे नहीं मानती।"

चंपा बोली—"तर्क तो पुराना ही महत्त्व-पूर्ण होता है बहन।"

पद्मा चुप बैठी सुन रही थी, और गाड़ी आगे बढ़ती जाती थी। वह शहर को अपने पीछे छाड़ती हुई पहाड़ियों के बीच की टेढ़ो-मेढ़ी सड़क पर दौड़ने लगी, जहाँ वसंत का वैभव बिखरा हुआ था। शांत वातावरण, पतझड़ की मनोबेधक उदासी और जंगली फूलों की भीनी-भीनी मादक महक—पद्मा का मन सहसा उचट गया। उसने सोचा, उसे ज्ञानदेव के साथ आना चाहिए था—इन वँदरियों के साथ तो किसी शराबखाने, सिनेमा-घर, नृत्यशाला या शोर-गुल से भरा बाज़ारों में ही घूमा जा सकता है, जहाँ मनचले छोकरें सीटियाँ बजावें, और आवाजें कसे। ऐसी सात्त्विक जगह में इनका मन नहीं लगेगा—हंस को कमलों के पराग से सुबासित मानसरोवर चाहिए तो गीध का मन तो श्मशान में ही रमता है, उसे सड़ी हुई लाश चाहिए।

पद्मा ने आदेश दिया—"लौट चलो।"

गाड़ी लौटाली गई।

पद्मा की चुप्पी से कुछ ऊबकर लीला बोली—"मिस पद्मा क्या सोच रही हैं?"

पद्मा ने मुंह खोला। वह बोली—"कुछ तो नहीं। यहाँ के शांत वातावरण ने मुझे तो अलसा दिया।"

चालाक चंपा में एक विशेषता यह थी कि वह जिसके साथ रहती थी, उसी के अनुकूल अपने को बना लेती थी। वह आत्मसंगोपन की कला जानती थी। वह क्या चाहती है, यह कभी जाहिर होने नहीं देती थी, जिसके साथ वह रहती थी, वह क्या चाहता है, इसी पर उसका ध्यान लगा रहता था। अपनी रुचि को दबाकर वह उसी की रुचि का साथ देती थी, जिसकी साथिन बनती थी। भवानी बाबू ने अपनी बहन को इस कला की शिक्षा अच्छी तरह दी थी।

भवानी बाबू विलायती विचार के व्यक्तियों के निकट बैठकर अपने देश की भर-पेट निंदा करते थे, और देश-भक्तों के साथ बैठकर

ऐसे देश-भक्ति के राग अलापते थे कि देखते और सुनते ही बनता था । यही गुण चंपा में भी कूट-कूट कर उन्होंने भरा था । चंपा पद्मा के स्वभाव को समझ चुकी थी, और वह एक भी ऐसा शब्द मुंह से निकालना नहीं चाहती थी, जिससे पद्मा का मत न मिलता हो ।

यह मनोवैज्ञानिक जादू था, जो कभी विफल नहीं होता ।

मोटर लौटी, और वह कुछ ही देर में जनाकीर्ण सड़क पर दौड़ने लगी । एक जगह गाड़ी रोकी गई । अर्दली, जो ड्रावर की बगल में बैठा था, नीचे उतरा, और दरवाज़ा खोलकर पीछे हट गया । पद्मा ने उसके हाथ में एक फ़र्द देकर कहा—"ये चीज़ें खरीद लो ।"

लीला बोली—"आप स्वयं दूकान पर क्यों नहीं जातीं, अपनी पसंद की चीज़ खरीदने में सुविधा होती है ।"

पद्मा ने कहा—"मैं अकेली दूकान पर नहीं जाती ।"

लीला ने फिर पूछा—"अकेली के मानी ?"

चंपा बोली—"मिस, तुम समझी नहीं ? बहन जी का कहना है कि जब इनके साथ ज्ञान बाबू नहीं होते, तो यह गाड़ी से नीचे पाँव नहीं देतीं, और यह वाजिब भी है, मैं इस तरीके को पसंद करती हूँ ।"

लीला ने कहा—"उन्होंने रोक लगा दी है क्या ?"

पद्मा ने जवाब दिया—"मिस लीला, यह तो मेरा अपमान है, जो कोई मेरे ऊपर रोक लगावे या शासन करे । मैं स्वयं अपने ऊपर कठोरता-पूर्वक शासन करती हूँ । जब किसी ने टोक दिया, तो फिर खूबसूरती ही क्या रही ।"

पद्मा के इस जवाब को लीला ने ठीक-ठीक नहीं समझा ? अपने ऊपर शासन करना किस चीज़ को कहते हैं, और किसी के टोक देने से खूबसूरती कैसे खराब हो जाती है, आदि बातों को समझना उसके लिए असंभव ही था ।

चंपा, जो पद्मा की बग़ल में बैठी थी, दिखावटी भावावेश में आकर बोल उठी—"बहनजी, जी चाहता है, आपका मुंह चूम लूं। आप इस युग में कहाँ से आ गईं। इससे बड़ा स्त्रीत्व की महिमा दूसरी हो भी नहीं सकती—धन्य हैं आप।"

चाटुकारिता-भरी इन बातों ने पद्मा को प्रसन्न कर दिया, किंतु लीला उस बेबूझ पहेली को ही सुलझाती रह गई, जिसे पद्मा ने उसके सामने रखकर निष्ठुर परिहास किया था।

सामान खरीदकर सभी कोठी की ओर लौटे।

दूसरे दिन जलसा हुआ। दो-तीन दर्जन अतिथिनियाँ पधारीं। रात को दस बजे चहल-पहल रही।

प्रत्येक आनेवाली महिला ने ज्ञानदेव को देखने की लालसा मन में छिपा रक्खी थी, किंतु वह कहीं नज़र नहीं आया। यह भी अचरज की ही बात थी। लीला ने अछता-पछता कर कहा—"मिस पद्मा, डॉक्टर ज्ञान नहीं नज़र आए?"

पद्मा बोली—"हैं तो, किंतु उन्होंने कहा कि मेरी कोई जरूरत नहीं है। तुम्हारी सखियाँ हैं, तुम्हीं उनका स्वागत करो।"

लीला का मन इस जवाब से नहीं भरा। उसने फिर सवाल किया—"क्या वह औरतों के संपर्क में आना पसंद नहीं करते?"

पद्मा इस सवाल से झल्ला उठी, क्योंकि प्रकारांतर से लीला उसके ज्ञानदेव पर आक्षेप कर रही थी। वह बोली—"मिस लीला, आप जानती हैं, उनका जीवन लंदन के वातावरण में आरंभ हुआ। जन्म भी वहीं का है। २५-२६ साल की उम्र में वह यहाँ आए। ऐसी अवस्था में यह सवाल ही नहीं उठता कि वह स्त्रियों के संपर्क में आना बुरा समझते होंगे। जिनका जन्म भारत में हुआ है, जिन्होंने कभी विलायत का मुंह नहीं देखा, वे तो खाँटी विलायती बन जायँ, और डॉक्टर असंस्कृत, यह कैसे हो सकता है?"

लीला ने फिर मूर्खता का परिचय दिया—"तो वह हमसे अलग क्यों हैं?"

पद्मा ने कहा—"कह तो दिया मिस लाला, आप समझने की कोशिश क्यों नहीं करतीं।"

चंपा ने भी सोचा था कि ज्ञानदेव की निकटता प्राप्त करने का यह शुभ अवसर होगा, वह भी निराश हुई।

दो-तीन दिन बाद जब चंपा फिर पद्मा के यहाँ आई, तो ज्ञान को उसने अच्छी तरह देखा। ज्ञान के प्रज्वलित पुरुषत्व ने चंपा को चकित कर दिया। वह हँसती हुई पद्मा से बोली—"बहन जी, एक बात कहूँ? आप बुरा न मानिएगा, यही प्रार्थना है।"

पद्मा भी मुस्किराकर बोली—"आप कहिए न, क्या बात है?"

चंपा बोली—"आपके ज्ञान बाबू को देखकर मैं मान गई कि आपने जो उन्हें उस दिन छिपाकर रक्खा था, वह उचित ही है। ऐसे धन को कोई भी आप-जैसी ज्ञानवती स्त्री अपना हृदय चीरकर उसमें छिपाकर रक्खेगा।"

पद्मा चंपा की पीठ पर धीरे से हाथ रखकर बोली—"मज़ाक करती हैं बहनजी, चाँद को कोई अपनी पलकों के भीतर कैद करके रख सकता है? वह तो चमकेगा, और सारी दुनिया के लिए चमकेगा।"

चंपा ने पद्मा के मर्मस्थल को छूकर उसके कठोर मौन में दरार डाल दी। उस धूर्त रमणी की यह शानदार जीत थी कि पद्मा उसके सामने अपना घूँघट उठावे, और अपने को स्पष्ट करे। चंपा एक गूढ़ योजना बनाकर पद्मा से संपर्क बढ़ा रही थी, केवल जान-पहचान या मोटर पर हवाखोरी लक्ष्य न था। चंपा ने यह मान लिया था कि वह पद्मा का सहारा लेकर ही ज्ञानदेव तक पहुँच सकती है। वहाँ तक पहुँच जाने पर फिर पद्मा की ज़रूरत ही नहीं रहती। उसका अपना रूप और आकर्षण ही सहायक होता। चंपा को अपने रूप का भरोसा था, क्योंकि उसने बहुत बार उसका सफल उपयोग किया था।

चंपा यह भी चाहती थी कि पद्मा के द्वारा ही वह ज्ञानदेव का अध्ययन भी करे, वह यह पता लगावे कि ज्ञानदेव किस वस्तु को नापसंद और किस वस्तु को पसंद करता है ।

यह तो चंपा को पता चल ही गया था कि ज्ञानदेव स्नेह और घृणा, दोनों पूरा ज़ोर लगाकर करता है — उसके स्वभाव में ढीलढाल नहीं है । वह किसी चीज़ को मज़बूती से पकड़ सकता है, और उसी ताक़त से उठाकर धरती पर पटक भी दे सकता है—ऐसे स्वभाव का व्यक्ति बहुत ही खरा और साथ ही खतरनाक भी होता है । उससे समझौता नहीं किया जा सकता है—वह या तो सब कुछ दे देगा, या लात मारकर दूर फेंक देगा. और मन से बिसार देगा ।

चंपा भीतर-ही-भीतर सिहर उठी—क्या वह सफल होगी, इस जलती आग को मुट्ठी में बाँधने में ।

चंपा के स्त्रीत्व ने कहा—"यह तेरी जीत नहीं, स्त्रीत्व की जीत होगी । डर मत । आगे बढ़—नतीजा चाहे जो हो, किंतु अपने को मिटाना मत ।"

अपने को अ-लिप्त रखकर केवल काम निकालने की कला भवानी बाबू ने चंपा को सिखला कर साफ़-साफ़ कह दिया था—"औरत और 'बाज़' में एक ही दुर्गुण होता है—दोनों शिकार मारकर किसी नज़दीक वृक्ष की डाल पर जा बैठते हैं, और नोच-नोचकर खाना शुरू कर देते हैं । तू स्वयं अपने को कहीं डुबो न देना, वर्ना मतलब तो सधेगा नहीं, तेरा सारा जीवन ही सटिग्रामेंट हो जायगा ।"

चंपा ने इस मंत्र को याद कर लिया था, किंतु जब उसने ज्ञानदेव को देखा, तो उसका 'स्व' विद्रोही हो गया । चंपा डरी कि कहीं मैं इस ज़ोरदार लहर में पड़कर सदा के लिये समाप्त न हो जाऊँ । उसका यह भय अर्थहीन तो था नहीं । फिर भी चंपा चंपा थी ।

आखिर कुछ भी हो, चंपा नवयुवती थी, उसके भीतर भी लालसाओं के ज्वार-भाटे आते-जाते रहते थे, उसकी आँखों में भी वसंत की

मादकता कसकसाहट पैदा करती थी। वह कब तक अपने को निचोड़-कर केवल अपने उस्ताद भैया की कभी न भरनेवाली थैली भरती रहे—इस काम का कहीं अंत तो नजर आता था नहीं। हाँ, जब चंपा के सुनहले दिन लद जाते, और रूपहली रात सिर पर झलकने लगती, तो शायद उसके भैया उसका पिंड छोड़ देते—अच्छी तरह पेरकर रस निकाल लेने के बाद ईख की सीठी के लिए एक ही काम बाकी रह जाता है, अपने को चूल्हे में झोंककर अपने शरीर के रस को खौलाना। छिः यह भी कोई जीवन है, या जीवन की परिणति है।

जिस दिन दुनिया चंपा का त्याग कर देगी, उस दिन वह भी अपने को पकड़कर रख नहीं सकेगी—उसके हाथ भी तो थककर कमज़ोर हो जायँगे, और उनका काम रह जायगा केवल सिर पीटना और एक दूसरे को मलना, या दूसरे के आगे हाथ पसारना।

चंपा थर-थर काँपने लगी, अपने भयानक भविष्य की कल्पना करके। उसने निश्चय किया कि अब अपने लिए भी कुछ करना है, अपने विषय में भी सोचना है, अपना उपयोग अपने हित में भी करना है। लीला की तरह चंपा केवल वर्तमान को लेकर ही नहीं जीना चाहती थी। वह सोचना भी जानती थी, और सोचा भी करती थी।

पद्मा एक दुर्लंघ्य दीवार की तरह ज्ञानदेव को घेरकर खड़ी थी। ज्ञानदेव भी उसके बंधन में सुख से बँध चुका था। पद्मा को जितनी बाँधने की चिंता नहीं थी, उससे अधिक ज्ञानदेव को बँधे रहने की फिक्र रहती थी। प्रलोभनों से भरे हुए इस संसार में ज्ञानदेव अपना कल्याण बंदी जीवन में ही पाता था। यदि पद्मा के बाँधने में कभी त्रुटि भी रह जाती तो ज्ञानदेव उस त्रुटि का संशोधन करके मानो पद्मा से कहता—"इस तरह बाँधो, और भी कसकर बाँधो, ऐसा बाँधो कि इस जन्म में तो क्या, उस जन्म में भी वह ढीला न पड़ने पावे।

जब स्वयं बंदी ही बंधन-प्रिय हो, तो फिर बाँधनेवाले के उत्साह का क्या कहना है।

चंपा ने ज्ञानदेव को चारों तरफ़ से घूमकर देख लिया, कहीं भी उसे ज़रा-सी भी असावधानता नज़र नहीं आई, और न बिनावट में कुछ फाँक दिखलाई पड़ी।

वह हताश नहीं हुई। वह जानती थी कि जब पद्मा का आत्म-विश्वास सीमा पार कर जायगा, तब उसके प्रयत्न में आप-से-आप लापरवाही पैदा हो जायगी। अत्यंत आत्मविश्वास लापरवाही पैदा कर देता है।

'देखो, और प्रतीक्षा करो'—की नीति को अपनाकर चंपा चुपचाप मौके की राह देखने लगी, जो वाजिब भी था।

चंपा बार-बार पद्मा के यहाँ जाने लगी, और इस तरह उसने पद्मा के मन में अपना एक स्थान बना लिया। परीक्षण के तौर पर जब एक सप्ताह वह पद्मा के यहाँ नहीं गई, तो एक पत्र के साथ पद्मा की गाड़ी चंपा के दरवाजे पर जाकर खड़ी हो गई। पद्मा की बुलाहट ने चंपा को यह बतला दिया कि पद्मा के मन में उनका एक स्थान निश्चित हो गया है। यदि यह बात न होती, तो पद्मा उसका अभाव अनुभव ही नहीं करती। यह पहला मोर्चा था, जिसे चंपा ने आसानी से जीत लिया। लीला लंदन की लाड़ली बनने के चक्कर में ही व्यस्त रहती थी। वह अपने छिछोरे और उचक्के साथियों के साथ अपने लिए नरक-निर्माण करती रही—कमाओ, खाओ, और मौज उड़ाओ के सिद्धांत का वह पालन कर रही थी, जो उसके बाप के कथनानुसार आधुनिक योरप का महामंत्र था।

कोई बनने के फेर में पड़कर बिगड़ जाता है, तो कोई बिगड़ते-बिगड़ते बनने लगता है।

लीला विलायती मिस-बाबा बनने के चक्कर में पड़कर समूल नष्ट होना चाहती थी, और चंपा खूबसूरत-डाकू का जीवन व्यतीत करते-करते हठात् ऊपर उठने के लिए ज़ोर मारने लगी।

ज्ञानदेव ने एक दिन पद्मा से पूछा—"बाबा को मैं आजकल नहीं देख रहा हूँ—क्या बात है?"

पद्मा बोली—"जब देखो, तब भागवत लिए बैठे रहते हैं।"

ज्ञानदेव बोला—"पद्मा, पता लगाओ, बाबा के हृदय में कुछ दर्द ज़रूर है, जिसे दबाने के लिये उन्होंने यह तरीका पसंद किया है—उत्तम लोगों का यही मार्ग है।"

पद्मा ने सिर झुका कर धीरे से कहा—रत्ना दीदी की शादी की बड़ी चिन्ता है।"

ज्ञानदेव ने कहा—"तुम्हें दीदी की शादी की चिंता है या नहीं ?"

पद्मा ने सिर हिलाकर यह जतला दिया कि उसे चिंता नहीं है।

ज्ञानदेव ने पद्मा की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"जब तक बड़ी बहन का विवाह नहीं हो जाता, छोटी बहन का विवाह हो नहीं सकता। तुम भी चिंता करो कि जल्दी ही दीदी के हाथ पीले हो जायँ।"

पद्मा ने सिर को ज़रा-सा एक ओर करके ज्ञानदेव की छाती पर रख दिया, और धीरे से कहा—"मेरी शादी कई बार होगी ? एक बार तो हो ही गई।"

ज्ञानदेव ने पद्मा की ठोढ़ी पकड़कर उसका मुंह ऊपर उठाते हुए कहा—"ज़रा दुल्हन का मुंह तो देखूं, सुंदर है या नहीं।"

पद्मा ने आँखें बंद कर लीं, तो ज्ञानदेव ने कहा—"तुमने आँखें बंद कर लीं।"

पद्मा बोली—"मैं दूल्हे को दुबारा पसंद करना नहीं चाहती।"

कमरे की खुली खिड़कियों से बसंत की हवा दबे पैरों भीतर घुसी—मेंहदी के फूलों की महक का उपहार लिए।

दिन समाप्त हो चुका था। गोधूलि सोना न्योछावर करने आई थी। इसके बाद रात आई, ताराओं के दीप सजाए—दीवाली मनाने।

धर्म-संकट

वसंत समाप्त हो गया, और धूल-भरी फूत्कार करती हुई गर्मी आई। आकाश धूल के ववंडर से धूमिल हो गया, तथा दिशाएँ भी डरावनी दिखलाई पड़ने लगीं।

डॉक्टरों ने राय दी कि ज्ञानदेव को किसी ठंडी जगह में जाकर रहना चाहिए। वह भयानक बीमारी से किसी तरह उबरा था। पद्मा भी इसके लिए चिंतित थी कि किसी तरह ज्ञानदेव शिमला, मंसूरी या दार्जिलंग जाना स्वीकार कर ले। ज्ञानदेव टालता जाता था। उसका टालना पद्मा के मन में बेचैनी पैदा कर देता था।

दोपहर को जब ज्ञानदेव गर्मी मे विकल हो रहा था, पद्मा ने उसे राज़ी करने का यह अच्छा अवसर पाया। वह बोली—"क्यों जी, तुम कहीं जाते क्यों नहीं ?"

ज्ञानदेव ने कहा—"नहीं जाऊँगा।"

पद्मा नाराज़ होकर बोली—"क्यों नहीं जाओगे, कारण बतलाना होगा।"

ज्ञानदेव ने जवाब दिया—"कारण भी नहीं बतलाऊँगा।"

पद्मा झुंझला उठी, और तेज़ आवाज़ में बोली—"तुम्हारी ही ज़िद्द चलेगी क्या ? तुम सातवें आसमान से ही बात करते हो। यह मुझे अच्छा नहीं लगता।"

ज्ञानदेव डर गया, और नरम स्वर में बोला—"जाऊँगा।"

पद्मा का गुस्सा अभी उतरा न था। वह बोली—"फिर इतनी हुज्जत क्यों फैलाई तुमने ?"

ज्ञानदेव ने कहा—"मैं अकेला नहीं जाऊँगा; यदि जाऊँगा, तो मर जाऊँगा।"

पद्मा घबरा गई, और बोली—"अरे, ऐसी बात न बोलो। तुम बोलना भी नहीं जानते।"

ज्ञानदेव ने कहा—"बाबा तुम्हें जाने देंगे ?"

पद्मा बिना आगा-पीछा सोचे तड़ से बोली—"बाबा कौन होते हैं मुझे रोकनेवाले! तुम्हारे साथ जाने में कोई क्यों रुकावट डालेगा ?"

ज्ञानदेव ने कहा—"अरी पगली, अभी विवाह हुआ है ? समाज क्या कहेगा ?"

पद्मा ने गंभीरता-पूर्वक सोचकर कहा—"सभी तो जानते हैं कि मैं तुम्हारी ...... क्या कहूँ जी, बतलाते क्यों नहीं।"

ज्ञानदेव मुस्किराकर बोला—"प्रेमिका हो।"

पद्मा उछलकर खड़ी हो गई, और बोली—"छि: कैसी बातें बोलते हो। मैं तुम्हारी प्रेमिका हूँ, और तुम मेरे चहेता हो ?"

जब तक ज्ञानदेव कुछ बोले, फूत्कार करती हुई पद्मा चली गई। ज्ञानदेव के बुलाने पर भी नहीं लौटी—जो गई, सो चली ही गई।

संध्या समय वह नहीं लौटी, तो ज्ञानदेव की व्यग्रता बढ़ गई।

पद्मा अपने आपको रोक न सकी, और उसी जलती दोपहरी को कोठी पर पहुँची। उसका चेहरा ताँबे की तरह तप रहा था। वह अपने कमरे में घुसी, और भीतर से किवाड़ बंद करके फूट-फूटकर रोने लगी। ज्ञानदेव उसे अपनी चहेती समझता है, इससे बढ़कर

उस गर्विता नवयुवती के लिए और क्या वेदना हो सकती थी। जब संध्या भी समाप्त हो गई, और रात आई, और पद्मा ने अपना कमरा नहीं खोला, तो उसकी मा का हृदय छटपटा उठा।

पद्मा की बड़ी बहन रत्नसंभवा भी आ गई थी। मा के इशारे से रत्ना ने किवाड़ खटखटाना शुरू किया। पद्मा ने दरवाज़ा खोला, तो रत्ना ने देखा कि उसके बाल बिखरे हुए हैं, और आँसुओं से चेहरा तर है।

जब रत्ना अंदर घुसी, तो पद्मा ने फिर अंदर से दरवाज़ा बंद कर लिया। अपनी बहन को एकांत में पाकर पद्मा फिर सिसक उठी। रत्ना ने अपने आँचल से पद्मा के आँसू पोंछकर पूछा—"पद्मा, इस पागलपन का कारण क्या है? क्यों रो-रोकर जान दे रही है?"

पद्मा ज़ोर से रोती हुई अपनी बहन के गले में बाँहें डालकर बेहोश-सी हो गई। रत्ना भी घबरा उठी कि यह तमाशा क्या है।

जब रुलाई का वेग रुका, तो पद्मा बोली—"दीदी, मैं एक पतिता औरत हूँ।"

विकल होकर रत्ना बोली—"तू क्या कह रही है पद्मा?"

पद्मा ने रो-रोकर सारा किस्सा बयान कर दिया, तो रत्ना के हाथ के तोते भी उड़ गए। वह बोली—"ज्ञानदेव इतना गिरा हुआ व्यक्ति है।"

पद्मा ने रत्ना के मुंह पर हाथ रखकर कहा—"ऐसा न कहो दीदी, जो कुछ कहना हो, मुझे ही कहो, वह देवता-स्वरूप हैं।"

रत्ना के अचरज का ठिकाना न रहा। वह पद्मा को हटाती हुई बोली—"तू भी एक पहेली है पद्मा?"

पद्मा ने कहा—"दीदी, उनका इसमें क्या दोष है? नहीं, मैं उनमें दोष नहीं पाती। मैं चाहे पतिता होऊँ या और कुछ, वह अग्नि की तरह पवित्र तथा गंगा की तरह पुण्यमय हैं।"

रत्ना ने कुढ़कर कहा—"फिर यह रोदन-क्रंदन किस लिये हो रहा था?"

पद्मा ने कोई जवाब नहीं दिया ।

मा ने दरवाज़े पर आकर कहा—"रत्ना, ज्ञान आया है ।"

रत्ना ने दरवाज़ा खोलते हुए कहा—"आई अइया ।"

ज्ञानदेव शास्त्रीजी के निकट बैठा था । रत्ना ने दूर से ही देखा। पद्मा ने इशारे से अपनी बहन से पूछा—"ज्ञान किधर है ?"

रत्ना ने इशारे से ही बतला दिया—"वहाँ, उस तरफ़ ।"

जल्दी-जल्दी पद्मा ने कपड़े बदले, और निःशब्द अपनी कोठरी से निकलकर बाहर आई । उसने देखा, ज्ञान मोटर पर आया है । शायद कहीं जाने का विचार हो ।

पद्मा लौटी, और रत्ना को भी जल्दी-जल्दी कपड़े बदलने का आदेश दिया ।

रत्ना ने धीरे से पूछा—"कपड़े बदलकर क्या होगा ?"

पद्मा बोली—"जल्दी कर दीदी ।"

रत्ना ने भी कपड़े बदल लिए, तो पद्मा रत्ना को खींचती हुई ले चली ।

ड्राइवर ने उतरकर सलाम किया, और दरवाज़ा खोल दिया । पद्मा ने रत्ना को ढकेलकर मोटर में बैठाया, और खुद भी भीतर घुसी । उसने ड्राइवर से कहा—शहर की तरफ़ चलो ।"

ड्राइवर ने गाड़ी शहर की ओर मोड़ी, तो रत्ना बोली—"अरी चहेती, अपने चहेते की गाड़ी पर मुझे बदनाम करने के लिए क्यों लिए जा रही है ?"

पद्मा ने अपनी रत्ना दीदी का मुंह चूम लिया—कोई जवाब नहीं दिया । वेचारी अइया रत्ना को इधर-उधर खोजती फिरी । जब दोनों बहनें नहीं मिलीं, और गाड़ी भी नज़र नहीं आई, तो पैर पटकती हुई वह शास्त्रीजी के कमरे में घुसी, और झल्लाकर बोली—"तुमने अपनी दोनो दुलारियों को इतना सिर चढ़ाया कि मेरी जान पर बन

ज्ञानदेव ने पद्मा के संसर्ग से कन्नड़ और मदरासी भाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था, जिसका पता न तो शास्त्रीजी को था और अइया को। शास्त्री जी ने चश्मा उतारते हुए कहा—"क्या हुआ ? बतलाती क्यों नहीं।" अइया बोली—"होगा क्या, मेरा सिर। दोनो ज्ञान की गाड़ी पर न-जाने किधर हवाखोरी करने भाग गई। यह भी कोई तरीका है ?"

शास्त्रीजी ने कहा—"क्यों आसमान सिर पर उठा रक्खा है तुमने ? पद्मा अपनी बहन को यदि अपनी ही गाड़ी पर कहीं ले गई, तो इसमें शोर-गुल मचाने की क्या जरूरत है ?"

अइया बोली—"यह तो ठीक ही है, किन्तु ......।"

"किंतु-परंतु कुछ नहीं"—शास्त्रीजी ने कहा। ज्ञान का मन आनंद से भर गया, और वह इसलिये कि पद्मा ने अपने अधिकार का उपभोग किया।

पद्मा के विदा होने के बाद ज्ञानदेव निश्चिंत होकर बैठ गया—वह सोच नहीं पाता था कि रत्ना के विवाह की चर्चा कैसे आरंभ करे।

एक अवसर आ गया, जब स्वयं चर्चा चल गई। शास्त्रीजी ने ज्ञानदेव के आगे एक फोटो रखकर कहा—"देखो तो बेटा, तुम्हारी रत्ना के लिये यह वर ठीक रहेगा ?"

ज्ञानदेव ने साग्रह चित्र लेकर देखा—वह एक स्वस्थ और रूपवान् नवयुवक का चमकता हुआ चित्र था। ज्ञानदेव संतोष प्रकट करके बोला—"सुंदर है। किन्तु विवाह कब तक होगा ?"

शास्त्रीजी ने दीवार में लगी हुई श्रीकृष्ण की तस्वीर की ओर देखकर कहा—"क्या बतलाऊँ बेटा, समझ में नहीं आता।"

अइया, जो निकट ही बैठी थी, बोली—"बेटा, सोलह हजार की व्यवस्था करके ही आगे की बात हम सोच सकते हैं।"

ज्ञानदेव ने कहा—"मा, आप विवाह तो ठीक कीजिए।"

अइया ने कहा—"बात तय हो चुकी है, अपनी ही ओर से देर हो रही है। रत्ना के बाद पद्मा........।"

पद्मा की चर्चा चलते ही ज्ञानदेव ने लज्जा से सिर झुका लिया। शास्त्रीजी ने और अइया ने भी ज्ञान के इस संकोच को देखा। आँख के इशारे से शास्त्रीजी ने अइया को बोलने से रोक दिया।

सावधान होकर अइया ने फिर कहना शुरू किया—"समय बीत रहा है। मैं बार-बार कहती हूँ कि आप घर जाकर रुपयों का प्रबंध कीजिए तो कोई जवाब नहीं देते।"

शास्त्री ने कहा—"मैसूर में मेरा एक मकान और ज़मीन भी है। पंद्रह साल से मैं वहाँ नहीं गया। पहले मदरास-विश्वविद्यालय में था। चार साल जर्मनी और लंदन में रहकर यहाँ आया, तो फिर लौटकर दक्षिण जाने की इच्छा ही नहीं हुई। यही कारण है कि मैं अब तक जाने की बात केवल सोच ही रहा हूँ, जा नहीं रहा हूँ।"

ज्ञानदेव ने कहा—"यहीं प्रबंध हो जाने से आप इतनी लंबी यात्रा के कष्ट से बच जाइएगा। पता नहीं वहाँ जाने पर भी प्रबंध हो या न हो।"

अइया ने कहा—"यहाँ हम क्या कर सकते हैं बेटा।"

ज्ञानदेव बोला—"मा, आप इस काम का भार मुझे सौंपिये।"

शास्त्रीजी बोले—"बेटा ज्ञान, हम तो इस शरीर का ही भार तुम्हें सौंपने जा रहे हैं, यह काम तो एक तुच्छ-सा प्रश्न है।"

ज्ञानदेव, जो अब तक उदास-सा था, पुलकित हो उठा, और बोला—"अपनी महायात्रा के समय पिताजी ने जो कहा था, वह मुझे स्मरण है। मैं उनके अंतिम आदेश को कैसे भूल सकता हूँ बाबा।"

शास्त्रीजी की आँखें सजल हो गईं, और वह श्रीराम, श्रीराम का उच्चारण स्नेह गद्‌गद कंठ से करने लगे। पिता की याद आते ही ज्ञानदेव का हृदय भर आया।

कुछ देर मनोबेधक सन्नाटा रहा—मानो सभी बोलना भूल गए हों। जब हृदय बोलने लगता है, तब वाणी चुप हो जाती है।

ज्ञानदेव ने कहा—"मा, अब मेरी विनय है कि आप लोग मुझे रोकिए मत। रत्ना दीदी के विवाह का प्रबंध नारायण करेंगे। यदि आप लोगों ने बीच में हाथ डाला, तो मैं यह मान लूंगा कि मुझे ग़ैर समझा गया, और मेरा हृदय टूट जायगा।"

अइया का हृदय उमड़ आया। वह वाष्प-रुद्ध कंठ से बोली—"बेटा ज्ञान, तुम्हें हम रोकें, इतनी शक्ति नहीं है। तीन साल हुए सुब्रह्मण्य ने पत्र तक नहीं भेजा। वह किसी नर्स से विवाह करके नागपुर के कैंप में है। मैं तो तुम्हें पाकर ही पुत्रवती हुई। उसने तो हमें बिलकुल ही त्याग दिया।"

इतना कहकर अइया अत्यधिक अधीर हो गई, और शास्त्रीजी का धीरज भी टूट गया। दोनों की दशा देखकर ज्ञानदेव का हृदय उमड़ आया। फूल में कीट रहता है, और पंखुरियों को कुतरता जाता है, किंतु फूल उसे छाती में छिपा कर रखता है। उसी तरह किसी सज्जन और ज्ञानी के भीतर जो वेदना छिपी होती है, वह उसके जीवन को, सुख और शांति को रात-दिन कुतरती रहती है, किंतु वह सज्जन और ज्ञानी व्यक्ति सब कुछ सह लेने में ही अपना सुख देखता है, अपना कल्याण मानता है। विद्वान् और शांत स्वभाव के शास्त्रीजी अपने एकमात्र पुत्र का यह व्यवहार सह रहे थे, किंतु कभी खुलकर आह भी नहीं करते थे। जब अइया अपने भीतर की इस मर्मांतक व्यथा को मुंह पर लाई, तो शास्त्रीजी का धीरज हिल गया। उन्होंने कराहकर कहा—"ज्ञान, मेरे जैसों के लिए इस संसार में नारायण हैं। मैं किसको पुकारूँ बेटा। जब तक द्रौपदी अपने बलवान् पतियों और भीष्मादि गुरुजनों की ओर ताकती रही, दुःशासन उसका वस्त्र खींचता रहा, और सबसे निराश होकर जब उसने नारायण को पुकारा, तो दृश्य ही दूसरा उपस्थित हो गया। नारायण तो वहीं उपस्थित

थे—देर कर रही थी तो द्रौपदी ही पुकारने में। अच्छा हुआ, जो मेरे सामने नारायण ही हैं, न पांडव हैं और न भीष्मादि।

इतना कहकर शास्त्रीजी आसन से काँपते हुए उठे, और "मैं अभी आया", कहकर चले गए।

ज्ञानदेव करुणा के अतलस्पर्शी सागर में डूब गया। वह नहीं जानता था कि शास्त्रीजी अपने भीतर आग छिपाए हरे-भरे वृक्ष की तरह छाया और फूल-फल दान कर रहे हैं। जो जितना सह सकता है, वह उतना ही पूज्य व्यक्ति माना जाता है, छिछली नदी और सागर में यही स्थूल अंतर है। सागर अपने भीतर हाहाकार छिपाये शून्य आकाश की ओर ताकता रहता है—वह रत्नाकर है, छिछली नदी नहीं।

दुर्दैव और दुर्भाग्य-भार सहने की ताकत सबमें नहीं होती। जो भीतर से अतुल शक्ति-संपन्न होता है, ज्ञानाग्नि से जिसके भीतर की दुर्बलताएँ जलकर खाक हो गई हैं, वही दुर्दैव या दुर्भाग्य की ज़ोरदार लाठी सह सकता है। शास्त्रीजी में इतना बल था, और उन्होंने सहा। जो आज पुत्र रहते भी पुत्र-हीन और असहाय है, जो अगाध चिंता-सागर में डूब रहा है, और जिसके सामने कोई सहारे का हाथ नहीं है, उस व्यक्ति के मानसिक उतार-चढ़ाव का सही-सही अंदाज लगाना असंभव है।

जब शास्त्रीजी कमरे के बाहर चले गए, तो ज्ञानदेव ने कहा—"मा, छोटी-सी बात को लेकर आप लोग नाहक शरीर को छलनी बना रहे हैं। मेरी प्रार्थना है कि इस काम की चिंता आप मुझे सौंप दें। मैं जो चाहूँ करूँ।"

अइया ने सोचकर कहा—"बेटा, मैं तुम्हें सौंपूं क्या। जो कुछ भी है, वह तुम्हारे सामने है। जैसा चाहो, करो।"

ज्ञानदेव प्रसन्न होकर बोला—"आपने बहुत बड़ा वर दिया मा, अब आप जाकर उनसे कहिए कि विवाह का दिन निश्चित करें।

हम वही देने को तैयार हैं, जो वे चाहेंगे—दस क्या पचास हज़ार भी हम देंगे मा। रत्ना दीदी का विवाह इसी साल हो जाना चाहिए।"

इसी समय शास्त्रीजी ने कमरे में प्रवेश किया। ज्ञानदेव चुप हो गया।

अइया ने कहा—"सुनते हो जी, ज्ञान क्या कहता है?"

शास्त्रीजी ने कहा—"मैं यहाँ था ही कहाँ।"

अइया ने कहा—"ज्ञान कह रहा है कि रत्ना की शादी का दिन निश्चित कीजिए और दस क्या, पचास हज़ार भी वे चाहें, तो कोई बात नहीं है।"

शास्त्रीजी का चेहरा अत्यंत गंभीर हो गया। उन्होंने कहा—"यदि मैं कह दूं कि ज्ञान हमारे लिए इतना बड़ा भार न उठावें, तो ?"

ज्ञानदेव ने कहा—तो बाबा, साथ ही आपको यह भी कहना पड़ेगा कि आज से ज्ञान को मैंने लात मारकर अपनी शरण से हटा दिया।"

शास्त्रीजी दोनों कान पर हाथ रखकर बोले—नारायण, नारायण, बेटा, यदि तू मुझे गोली भी मार देता, तो शायद इतनी पीड़ा का अनुभव मैं नहीं करता।"

ज्ञानदेव शांत स्वर में बोला—"बाबा, किसी को कर्तव्य-पालन करने से विमुख करना क्या आप-जैसे धर्मप्राण आचार्य के लिए उचित है ?"

शास्त्रीजी ने कहा—"ज्ञान, तू कभी मेरे सामने मुंह नहीं खोलता था, और आज प्रहार पर प्रहार किए जा रहा है बेटा, कारण क्या है ?"

ज्ञानदेव ने कहा—"बाबा, यह मेरा अंतिम प्रयास है। या तो मुझे कर्तव्यपालन का अवसर ही मिलेगा या आपके साथ ही भारत को भी प्रणाम करके बिदा हो जाऊँगा। मेरा यहाँ कौन है बाबा,

जो कुछ हैं, आप हैं। जब आपने भी मेरा त्याग कर दिया, तो फिर मेरे लिए ऑक्सफोर्ड की कुर्सी ही सब कुछ है।"

इतना बोलकर ज्ञानदेव ने एक लिफ़ाफ़ा शास्त्रीजी के चरणों के निकट रख दिया।

वह एक पत्र था, जो लंदन से आया था। ऑक्सफ़ोर्ड में प्राच्य दर्शन के अध्ययन की व्यवस्था की गई थी, और ज्ञानदेव को लेक्चरर का पद स्वीकार करने के लिए आग्रह किया गया था।

पत्र पढ़कर शास्त्रीजी ने कहा—"नहीं, तुम भारत से नहीं जा सकते। इस पत्र को फाड़कर फेंक दो।"

ज्ञानदेव ने पत्र को तुरंत फाड़कर फेंक दिया, और कहा—"बाबा की आज्ञा शिरोधार्य है।"

शास्त्रीजी ने अचरज-भरी आँखों से ज्ञानदेव की ओर देखते हुए कहा—"मुझे तो तुमने अवाक् कर दिया ज्ञान।"

ज्ञानदेव ने कहा—"बाबा, यह तो मेरा धर्म है कि आपका जो आदेश हो, उसका पालन करूँ।"

शास्त्रीजी बोले—"तो यह मेरा भी धर्म है बेटा, कि धर्म की दृष्टि से जिस कर्त्तव्य को तू पालन करना चाहे, उसमें मैं सहायक न भी बन सकूं, तो विघ्न पैदा न करूं।

ज्ञानदेव ने कहा—"मा, मुझे मनचाहा वरदान मिल गया। अब आप रत्ना दीदी के विवाह की शीघ्र व्यवस्था कीजिए। जो कुछ कहना-पूछना हो मुझसे ही पूछें, जो आदेश देना हो मुझे ही दें, नाराज मुझपर हों, प्रसन्न भी मुझ पर ही हों—बाबा को इन झगड़ों से कोई मतलब नहीं,।"

शास्त्रीजी ने कहा—"तथास्तु यही होगा। तुम ऐसा ही करो। मैं दर्शक रहूँगा, कर्त्ता तो स्वयं नारायण है ही।"

ज्ञानदेव जब अपनी कोठी पर आया, अत्यन्त पुलकित था। वहां उसने पद्मा और रत्ना को देखा, जो चम्पा से बैठी बातें कर

रहीं थीं। ज्ञानदेव चुपचाप ऊपर चला गया, और पद्मा को बुल-वाया—वह सहम गई। ज्ञानदेव आ गया है, इसका पता उसे न था। वह टहल-घूमकर जब लौटी, तो उसने चम्पा को प्रतिक्षा करते पाया। चम्पा ने उलहना दिया कि तीन दिन मैं बीमार रही किन्तु आपने सुधि नहीं ली।

पद्माने कोई सफाई नहीं दी। उसका चुप रहना ही बहुत बड़ी सफाई थी—कभी-कभी वाणी से अधिक मौन बोलता है।

चम्पा ज्ञानदेव के सामने पहुँची। वह अपराधीन की तरह सिर झुकाए खड़ी रही। ज्ञानदेव को यह अच्छा न लगा। जब पद्मा एक सत्याधारिणी की तरह तेजस्विता दिखलाती रहती थी, ज्ञानदेव को यह बोध होता था कि पद्मा को जो पद उसने दिया है, वह उसपर अपने को स्थित मानती है। ज्ञानदेव यह चाहता था कि पद्मा अपने आप को छोटा या हीन न अनुभव करे—यदि वह ज्ञान-देव को घर का स्वामी और अपने को आश्रित या शक्तिहीन मानने लगेगी तो निकटता पीछे की ओर तेजी से खिसकती हुई दोनों के बीच में एक शून्य रेखा प्रस्तुत कर देगी।

ज्ञानदेव इसी में अपने को सुरक्षित मानता था कि पद्मा और उसके बीच किसी तीसरे के लिए जरा सा भी स्थान न रह जाय। पद्मा आकर जब खड़ी हो गई तो ज्ञानदेव बोला—"मैं तुम्हारे बाबा के निकट से आ रहा हूँ। रत्ना दीदी का विवाह तुरन्त ही होगा। सारी व्यवस्था का भार तुम पर है। मैं कुछ नहीं जानता। जैसा चाहो, करो।"

पद्मा बोली—"तुमने मुझसे पूछा भी नहीं ?"

ज्ञानदेव ने कहा—"तुम आज थी कहाँ ?"

पद्मा सिर झुकाए खड़ी रही, उसने जवाब नहीं दिया, तो ज्ञानदेव ने फिर कहा—"किसी-न-किसी दिन तुम मेरी जान ले लोगी। पद्मा, तुमने उत्तरदायित्व स्वीकार किया है, उसकी उपेक्षा मत करो।"

पद्मा ने धीरे से कहा—"ग़लती हो गई, अब ऐसा न होगा।"

ज्ञानदेव ने कहा—"तो मेरे लिए नाश्ते का प्रबंध करो। अब तक भूखा ही हूँ। मैंने दवा भी नहीं ली—कौन देता ?"

पद्मा अपनी भूल पर मन-ही-मन कराह कर रह गई। जब से पद्मा ने ज्ञानदेव की सुख-सुविधा का भार उठाया था, ज्ञान ने अपने को पद्मा की मरज़ी पर छोड़ दिया था। अपने शरीर की ओर वह तनिक भी ध्यान नहीं देता था। उसने पद्मा से कह दिया था—"यह मिट्टी का भार सँभाल सको, तो सँभालो, नहीं तो इसे किसी खंदक में डाल दो—मैं कुछ नहीं जानता।"

पद्मा ने रसोई घर में घुसी, जल्दी और तूफान पैदा कर दिया। नौकरानियाँ विकल हो उठीं—मालकिन कभी रसोई घर में नहीं आती थीं।

निचले कमरे में बैठी चंपा और रत्ना पद्मा की प्रतीक्षा करती रहीं। ऊब कर चंपा बोली—"रत्ना बहन, अब बैठना कठिन हो रहा है। पद्मा बहन कब दर्शन दें, पता नहीं।"

रत्ना बोली—"ज्ञानदेव कठिन बीमारी भुगतकर उठा है। पद्मा ही उसकी सेवा-सँभाल रखती है। बिना पद्मा के आदेश के वह एक घूंट पानी भी नहीं पी सकता—यह हाल है बहन जी।"

चंपा मुस्किराकर बोली—"तब तो हमारी दीदी डिक्टेटरी कर रही हैं।"

रत्ना ने उदास स्वर में कहा—"ऐसा भाग्य सबके लिए संभव नहीं है बहनजी।"

चंपा क्वाँरी थी। बीसवीं साल-गिरह मना चुकी थी, किंतु उसके भैया विवाह की बात भी नहीं सोचते थे—विलायत का उदाहरण कहते थे "अभी तो चंपा निरी नादान बच्ची है, विलायत में साल की उम्र के बाद लड़कियाँ विवाह-शादी की बात सोचती हैं।"

चंपा का मन भी उदास हो गया। जब पद्मा का ऐसा स्थान ज्ञानदेव के हृदय में है, तो किस तरह उसे पदच्युत किया जा सकता है। निराश व्यक्ति प्रायः निर्दय हो जाता है। चंपा के मन में भी क्रूरता की आग भड़की, और फिर दब गई। वह प्रतीक्षा करना चाहती थी अवसर की, जिसकी शिक्षा उसके भाई ने दी थी।

लाचार मानव

सर्वशक्तिमान् की लाचारी कितनी दयनीय होती है, यह एक अचरज की बात है। मानव जाना चाहता है किसी ओर, पहुँच जाता है किसी तरफ़, वह करना चाहता है कुछ, और कर बैठता है कुछ। वह पछताता है, कुढ़ता है, हाथ मलता है, और फिर छाती पर पत्थर रखकर चुप हो जाता है।

पता नहीं चलता, ऐसी कौन-सी शक्ति या हमारे ही मन में छिपी हुई कौन-सी चुड़ैल है, जो इधर से उधर घसीटती रहती है, और दम लेने नहीं देती। जॉर्ज साहब का भी कुछ यही हाल था। वह पहले अच्छे-ख़ासे ज़मींदार थे। एक हवा आई, और सूखी पत्तियों की तरह ज़मींदारी हवा में बेपनाह उड़ती नज़र आई। ख़ैरियत यह थी कि जॉर्ज साहब उस डूबती नाव से चिपके नहीं रहे, वर्ना इनका नामो-निशान भी मिट जाता, और पगली लहरें इन्हें भी निगल जातीं, डकारतीं भी नहीं।

विष तो किसी जादू के ज़ोर से समाप्त हो गया, किंतु फूत्कार करने की आदत अभी नहीं छूटी थी, वह छूटने की चीज़ भी नहीं है – जॉर्ज साहब अब केवल फूत्कार पर ही जीवित थे। यह एक बुरी स्थिति थी, जिसकी दलदल में वह बेचारा अँगरेजी तराश का

अभागा भारतीय फँस चुका था। कुछ लोगों की बनावट बहुत ही लचकदार होती है। वे जैसी स्थिति में पहुँच जाते हैं, अपने को उसी स्थिति के लायक आनन-फानन बना लेते हैं। ठीक इनके विपरीत कुछ लोगों की बनावट सूखी हुई लकड़ी-जैसी होती है। वे घुन की खुराक बन जाते हैं—किसी उपयोग में अपने को लाने नहीं देते। जॉर्ज साहब कुछ इसी तरह के आदमी थे। कर्ज़ बढ़ता जा रहा था, चिंता बढ़ती जा रही थी, परेशानियाँ ज़ोर पकड़ती जा रही थीं, किंतु वह अपनी जगह से हिलने का नाम नहीं लेते थे। हिलते कैसे, सारी दुनिया उनके लिए अपरिचित जो थी। अपनी एकमात्र कन्या लीला को भी उन्होंने इसी साँचे में ढाला था।

शरीर को ही सब कुछ माननेवाले और भौतिक सुखों के लिए ही जीवित रहनेवाले अंत में दुःखी तो होते ही हैं। जब खुशी के दिन लदने लगते हैं, सुखों का स्रोत सूखने लगता है, स्थिति ऐसी हो जाती है, जैसे कोई पुराना गला-सड़ा कपड़ा हो—इधर सियो, तो उधर फट जाय, तो इस काग़ज़ की नाव पर चढ़नेवालों का बुरा हाल हो जाता है।

लीला ने अपना सारा ध्यान आधुनिका बनने की ओर लगा रक्खा था, और उसके सामने जीवन का कोई ठोस लक्ष्य ही नहीं था, सिवा इसके कि छोकरों के साथ पेवंद की तरह चिपकी रहे। जॉर्ज साहब लीला की इस हेय दशा पर ध्यान नहीं देते थे। वे कहते थे—"विलायत में ऐसा ही होता है। जंगली और संस्कार-हीन हिंदुस्तानियों का तरीका अपनाकर सभ्य-समाज में हम मुंह नहीं दिखला सकते।"

एक रात को रानी ने अपने पति से कहा—"सुनते हो जी, लीला की शादी इसी सप्ताह कर दो, नहीं तो अनर्थ हो जायगा।"

जॉर्ज साहब ने पूछा—"अनर्थ क्या होगा ?"

रानी बोली—"मैं हर महीने उसे दवा खिला देती थी, किंतु दो महीने से दवा देती हूँ, तो उसका असर ही नज़र नहीं आता। यह चिंता की बात है।"

जॉर्ज साहब ने गले की टाई को ज़रा इधर-उधर खिसकाकर कहा—"यह जंगलियों का मुल्क है डार्लिंग, विलायत में ऐसे बहुत-से अस्पताल हैं, जहाँ लॉर्डों तक की कुआँरी लड़कियाँ जाती हैं, और . . . ।"

रानी ने अपना सिर पीट लिया। वह रुआसी-सी होकर बोली—आग लगे तुम्हारी बुद्धि को। अरे, यहाँ मुंह में तारकोल लगने जा रहा है, और तुम विलायत का राग अलाप रहे हो।"

जॉर्ज साहब ने कहा—"तारकोल कैसे लगेगा ?"

रानी बोली—"नहीं जी, चंदन लगेगा, मलयागिरि का चंदन।"

जॉर्ज साहब ने विषय की गंभीरता का थोड़ा-सा अंदाज़ लगाया, और कहा—"ओ, समझ गया। ऐसा तो होता ही है डार्लिंग, जब तुम्हारी शादी हुई थी, तो लीला दो महीने की . . . . ।"

रानी का धीरज छूट गया। वह दाँत पीसकर बोली—"बेशर्म, पतित—छिः ।"

भय से जॉर्ज साहब थर-थर काँपने लगे। रानी का कोप सँभालना उनके बूते के बाहर की बात थी।

लीला रात को बारह बजे राजीव के साथ लौटी, तीन-चार छोकरे और भी थे। दो बजे रात तक लीला अपने कमरे में गाती-बजाती रही। रानी ने खाट पर औंधे मुंह पड़कर रोने में ही सुखानुभव किया।

जॉर्ज साहब शैंपन, हाइट हार्स, स्काच ह्विस्की आदि का नाम स्मरण करके एक बोतल ठर्रा पीकर सो गए। उनकी नाक की तीव्र घर्घर शब्द कोठी के कोने-कोने में गूंजने लगी।

विलायती तर्ज़ पर सारी रात नाच-गाकर लीला भी सो गई, तो दिन को ११ बजे उसकी आँखें खुलीं। वह थकावट से इस कदर चूर थी कि उठ नहीं सकती थी, शराब के नशे और नाच ने उसे तोड़-मरोड़ कर रख दिया था। दो-तीन बार उसकी मा बंद दरवाज़े के निकट से लौट गई। जॉर्ज साहब बढ़िया सूट पहनकर अपनी

पुरानी फ़ोर्ड पर कहीं चले गए थे। गाड़ी की भड़-भड़ आवाज़ बहुत देर तक रानी सुनती रही, और जब वह आवाज शून्य में विलीन हो गई, तो वह बोली—"हे भगवान्, ऐसी दया करो कि यह मोटर उलट जाय, और वह अँगरेज़ का बच्चा कुचल कर मर जाय।"

जीवन में उसने शायद पहली बार भगवान् की आवश्यकता का अनुभव किया, वह भी मोटर उलटने के लिए।

चंपा का भी अजीब हाल था।

वह अपने भैया के लिये अपना उपयोग करते-करते ऊब उठी थी। उसे ऐसा विश्वास हो गया था कि अब उसका निस्तार नहीं है। अपने मन का सौदा वह कर नहीं सकती थी, यह एक भारी कुढ़न थी। भैया अपना पेशा चलाने के लिये चोरी, डकैती, खून, नोट बनाना, नकली सिक्के ढालना, लीडरी, सभाओं की सदारत, चंदा, चकमा, दरबारदारी, चापलूसी और न जाने क्या-क्या करते ही रहते थे। बड़े-बड़े मंत्रियों की तरह उनका भी दूर होना था। तूफानी दौरा भी करते थे, संगठन और उखाड़-पछाड़ की कला के भी वह माहिर थे। इतना करते हुए भी उनका पेट नहीं भरता था। नित्य किसी-न-किसी का गला बड़े आदमियों के नाम पर घोटना उनके लिये लाज़िमी था। चंपा को भी चैन की नींद सोने नहीं देते थे। आज इसके यहाँ मित्रता बढ़ाने के लिये उसे भेजा, तो कल उसके यहाँ नाता जोड़ने के लिये जाने को उत्साहित किया। सभी तथाकथित बड़े और प्रभावशाली लोगों के यहाँ चंपा का आना-जाना था।

वह अपने वर्तमान जीवन से भीतर-ही-भीतर ऊब उठी थी। यह बात नहीं है कि उसे इस तरह घूमना-फिरना और बड़े लोगों के यहाँ आना-जाना बुरा लगता था, किंतु वह आज़ादी चाहती थी कि अपने मन से किसी को पसंद करे, किसी का त्याग भी करे। जो बराबर दूसरे के चौके से ही भोजन प्राप्त करते हैं, उनकी रुचि आहत हो जाती है। अपनी रुचि जैसी कोई चीज रह ही नहीं जाती—जो

कुछ मिल जाय, उसे ही स्वीकार कर लेना—और वह भी दो-चार दिन नहीं, जीवन-भर—भारी मानसिक दंड है। इसी मानसिक दंड को भुगतती हुई चंपा का रोम-रोम कराह उठा। अब जब कभी भवानी बाबू उसे कहीं जाने के लिये उत्साहित करते, तो वह कहीं तो जाती, और कहीं जाने से यह कहकर इनकार कर देती कि तबीअत ठीक नहीं है।

भवानी बाबू ने सोचा कि अब चंपा से काम बनने को नहीं है। वह चुप रहनेवाले व्यक्ति तो थे नहीं। उन्होंने लीला का उपयोग करना चाहा। जॉर्ज साहब के यहाँ अचानक उनका आना-जाना बढ़ गया। भवानी बाबू उन व्यक्तियों में थे कि यदि उनका मतलब उनके बाप से सिद्ध नहीं होता, तो वह उसके मुंह पर भी तमाचा मारकर चले जाते।

जॉर्ज साहब को उन्होंने अपने यहाँ चाय पर बुलाया, और उसी दिन शहर के बड़े-से-बड़े प्रभावशाली और शक्तिमान् व्यक्ति भी पधारे। उच्च अधिकारी और धनपति भी आए—जॉर्ज साहब ने अपनी आँखों से भवानी बाबू का चमत्कार देख लिया। लीला भी कम प्रभावित नहीं हुई।

चंपा ने भी भुवन-मोहिनी रूप धारण किया था। भवानी बाबू ने आग्रह किया था कि वह पद्मा को जरूर बुला लावे, किंतु पद्मा ने साफ़-साफ़ कह दिया—"मैं अकेली नहीं जा सकती।"

चंपा बोली—"मैं तो डॉक्टर ज्ञान को भी बुलाने आई हूँ। वह कहाँ हैं ?"

पद्मा बोली—"वह अपने पुस्तकालय में है, और वहाँ बिना बुलाए मैं जा नहीं सकती, यह मुसीबत है।"

चंपा ने अचरज-भरे स्वर में कहा—"आप भी नहीं जा सकतीं बहनजी, यह क्या कह रही हैं आप ?"

पद्मा ने कहा—"यह नियम मेरा ही बनाया हुआ है। मैं स्वयं अपने बनाए हुए नियम का पालन कड़ाई से करती हूँ मिस चंपा।"

चंपा मन-ही-मन झुंझला उठी, किंतु मुस्किराती हुई बोली—"बहनजी, आपने डॉक्टर ज्ञान को कैद कर रक्खा है ।"

यही बात चंपा ने एक बार कही थी । पद्मा का मन तिक्तता से भर गया, किंतु वह भी मुस्किराकर ही बोली—"मिस चंपा, किसने किसको कैद कर रक्खा है, यह बतलाना कठिन है । मैं उन्हें क्या खाकर कैद करूँगी ।"

चंपा ने कहा—"स्त्री पुरुष से अधिक बलवान् होती है बहनजी, यदि स्त्री चाहे, तो पुरुष की नाक में नकेल डालकर चौरस्ते-चौरस्ते नचावे ।"

पद्मा को इतनी छिछली बात सुनने का अभ्यास न था । हीन विचार और हीन मनोवृत्ति का परिचय देकर चंपा प्रसन्न हुई, किंतु पद्मा लज्जा से सिहर उठी—छिः ! इतनी गिरी हुई औरत भी हो सकती है ।

पद्मा को चुप देखकर चंपा ने अपने को सँभाला, और फिर कहा—"किंतु आप तो जिन उच्च आदर्शों का पालन कर रही हैं, वे यद्यपि सोलहवीं सदी के हैं, किंतु हैं सुन्दर ।"

पद्मा का फिर भी मौन भंग नहीं हुआ । उसका चेहरा लाल हो गया था, और भौंहों पर बल आ गया था । चंपा सहम गई । वह यह नहीं जानती थी कि बात बनाने से बात नहीं बनती ।

चंपा ने फिर पूछा—"आप चुप क्यों हो गईं ?"

पद्मा ने कहा—"सोच रही हूँ कि आप क्या कह रही हैं । कोई नई बात जब सुनती हूँ, तो मन न-जाने कैसा हो जाता है ।"

चंपा ने कहा—"आपके यहाँ के फ़ोन का नंबर क्या है दीदी ?"

पद्मा जैसे चौंक पड़ी, और बोली—"फ़ोन ? हाँ, वह था तो, किंतु मैंने उसे अपनी कोठी पर भेजवा दिया है । मेरी रत्ना दीदी का विवाह जो होनेवाला है—फोन की बार-बार ज़रूरत पड़ती ही है ।"

चंपा ने ऊपर मन से प्रसन्नता प्रकट करके कहा—"खुशी की बात है बहनजी, तब तो डॉक्टर ज्ञान भी बहुत ही व्यस्त रहते होंगे।"

पद्मा ने कहा—"नहीं मिस चंपा, तीन महीने पहले वह सख्त बीमार थे। उनका शरीर ऐसा नहीं है कि कष्ट उठावें।"

ज्ञान की बीमारी की बात याद आते ही पद्मा का गला भर आया। चंपा की तेज़ निगाहों से यह बात छिपी न रह सकी। उसने मन-ही-मन कहा—"यह औरत भी कितनी मक्कार है।"

चंपा ने कहा—"तो अकेले शास्त्रीजी ही······?"

पद्मा बोली—"नहीं मिस, बाबा क्या करेंगे, वह तो स्वाध्याय और उपासना में ही लगे रहते हैं। काम का सारा भार मेरे ऊपर पड़ा है। किसी तरह मैं निबाहे जा रही हूँ।"

इसी समय किसी ज़ेवर बनानेवाली बड़ी फ़र्म का कोई प्रतिनिधि आया। चंपा से आदेश लेकर पद्मा ने उसे बुला लिया। वह मोटर पर सारी दूकान लाद कर ले आया था। टेबिल पर उसने बाज़ार लगा दिया। सादे और जड़ाऊ गहनों के प्रकाश से चंपा की आँखें चौंधिया गईं। दोनों ने मिलकर ज़ेवर पसंद करना शुरू किया। चंपा कीमती से कीमती गहने पसंद करती। यह उसकी दुष्ट-बुद्धि का ही नमूना था। वह यह देखना चाहती थी कि पद्मा क्या कहती है। पद्मा ने उन सभी ज़ेवरों को पसंद किया, जिन्हें चंपा ने चुना था। कीमत का हिसाब किया गया, जो आठ हज़ार हुआ।

पद्मा दूसरे कमरे से चेक लिखकर लिए आई, और वह एजेंट अपना बाज़ार समेट कर चला गया।

चंपा का चेहरा उतर गया। वह बोली—"बहनजी, अपने लिये आपने ज़ेवर······?"

पद्मा ने कहा—"नहीं जी, आप भूल गईं क्या, दीदी का विवाह जो है।"

चंपा ने फिर सवाल किया—"डॉक्टर ज्ञान को आपने नहीं दिखलाया ?"

पद्मा बोली—"उन्हें दिखलाती, तो ये सारे ज़ेवर लौटा दिए जाते ।"

चंपा ने कहा—"क्यों ?"

पद्मा बोली—"एक बार की कहानी है कि मि० एम० आयंगर की पत्नी आई । उनके कान में दो कीमती फूल चमक रहे थे । बातों-ही-बातों में मैंने उनसे कहा—'बड़े अच्छे फूल थे ।' संध्या समय जब मैं अपनी कोठी से लौटकर आई, तो उन्होंने अपनी जेब से निकालकर दो जोड़े फूल मेरे सामने रक्खे, जो आयंगर की पत्नी के फूलों से पाँच गुने अधिक कीमत के और सुंदर थे । तब से मैंने कान उमेठकर यह प्रण किया कि उनके सामने मुँह नहीं खोलूँगी ।"

पद्मा अपने सौभाग्य की कहानी कह रही थी, किंतु चंपा के लिये वही कहानी घोर दुर्भाग्य की थी । अपने भैया से एकाध ज़ेवर प्राप्त करने के लिये उसे कितना खून के आँसू रोना पड़ता है, यह तो उसका जी ही जानता है । वह मन-ही-मन छटपटा उठी कि वह किस उपाय से पद्मा का स्थान प्राप्त करे । महीनों के आने-जाने पर ज्ञानदेव से उसका इतना ही परिचय हुआ था कि वह दो बार उसे निकट से देख सकी, और प्रणाम कर सकी—बस ।

जो हो, पर चंपा हारनेवाली छोकरी तो थी नहीं । वह भवानी बाबू की बहन थी, जिस भवानी बाबू ने बिना पूंजी का व्यवसाय विशाल पैमाने पर शान से चला रक्खा था । लाखों लूटकर लाना और खाक की तरह उड़ा देना ही जिनके जीवन का लक्ष्य था ।

चंपा ने मन-ही-मन कहा—"अगर तुझे दूध की मक्खी बनाकर न छोड़ा, तो मेरा नाम चंपा नहीं । इतरा ले कुछ दिन और ।"

चंपा जाने का नाम नहीं लेती थी, और पद्मा ऊब उठी थी । वह आई थी न्योता देने, किंतु ऐसा जमकर बैठी कि उठना ही भूल गई।

पद्मा ने घड़ी देखकर कहा—"अब वह पुस्तकालय से बाहर आने ही वाले होंगे ।"

चंपा बोली—"तो मैं उनसे भी आज संध्या-समय चलने के लिये आग्रह करना चाहती हूँ ।"

पद्मा कुछ जवाब दे कि सीढ़ियों से किसी के उतरने की आहट मिली । दो मज़बूत पैर बड़ी शान से सीढ़ियों को तय कर रहे थे । दो मिनट बीतते-न-बीतते ज्ञानदेव कमरे में आया, और दरवाज़े पर ही झिझककर खड़ा हो गया ।

पद्मा ने कहा—"आइए न, मिस चंपा आपको न्योता देने आई हैं ।"

हाथ जोड़कर ज्ञानदेव ने चंपा को प्रणाम किया । वह कमरे में आ गया । चंपा की आँखें ज्ञानदेव के चेहरे पर से फिसल पड़ती थीं । वे उसके चमकदार चेहरे की ओर देख नहीं सकती थीं । चंपा ने मन-ही-मन कहा—"आह, पुरुष इसी को कहते हैं । धन्य है पद्मा, जो ऐसे प्रज्वलित हुताशन को खेलौना बनाकर खेला करती है ।"

ज्ञानदेव शांत, गंभीर स्वर में बोला—"पद्मा, बाबा यहाँ आए थे ?"

पद्मा ने कहा—"नहीं । मैं गई थी । सारी व्यवस्था हो गई ।"

ज्ञानदेव बोला—"अच्छा किया ।"

चंपा ने कहा—"मैं आपसे एक प्रार्थना करना चाहती हूँ ।"

ज्ञानदेव ने कहा—"आदेश दीजिए क्या सेवा की जाय ?"

चंपा ने कहा—"आज संध्या समय मेरे यहाँ कुछ संभ्रांत मित्रों को चाय पर भैया ने बुलाया है, सो आप भी पद्मा बहन के साथ पधारिए ।"

ज्ञानदेव ने पद्मा की ओर देखकर कहा—"इन्होंने मुझे बहुत ही एकांन्तप्रिय बना दिया है, यों मैं भी भीड़ से घबराता हूँ । और किसी दिन आज्ञा-पालन करूँगा ।"

बात खत्म हो गई, किंतु इसी बहाने चंपा ज्ञानदेव से कुछ बातें करना चाहती थी, उसका संकोच छुड़ाने के लिये। वह बोली—"मुझे बड़ी खुशी होती, यदि आप आना स्वीकार कर लेते।"

ज्ञानदेव ने उठते-उठते कहा—"पद्मा, अपनी बहनजी को समझा दो।"

इतना कहकर ज्ञानदेव दूसरे कमरे में पर्दा उठाकर चला गया।

चंपा उस कमरे के हिलते हुए पर्दे को प्यासी आँखों से देखती रही।

जब मानव सत्य को प्राप्त करने में असमर्थ हो जाता है, तब वह कल्पित सत्य का आश्रय ग्रहण करता है, कल्पना की शरण में जाता है। चंपा का भी यही हाल था। उसकी समस्त चेतना को घेरकर ज्ञानदेव प्रकाशित हो रहा था। जब वह घर लौटी, तो उसने अपने को बहुत ही थका हुआ पाया। सिर पर का भार तो शरीर को ही थकाता है, किंतु जो भार मन पर लद जाता है, वह शरीर और मन, दोनो को चूर-चूर कर देता है। चंपा आँखें बंद करके लेट जाती, और मन-ही-मन ज्ञानदेव का सपना देखा करती—इस स्थिति तक वह पहुँच गई। ज्यों-ज्यों वह ज्ञानदेव का चिंतन करती जाती, त्यों-त्यों उसका मन अपने उन तमाम प्रशंसकों से हटता जाता, जिनसे घिरी रहने में कभी वह सुखानुभव करती थी। वह पद्मा को पीछे ढकेल कर आगे बढ़ना चाहती थी। रूप तो प्रकृति ने उसे दिया ही था, अब रही गुण की बात, सो उसकी गति यहीं पर आकर रुक गई। ज्ञानदेव को पद्मा ने रूप के ही बंधनों में नहीं बाँधा था। रूप का काम बाँधना है भी नहीं—वह केवल अपनी ओर खींच लेने-भर की ताकत रखता है। बाँध रखने का काम गुण का है—रस्सी को भी गुण कहा जाता है, दोनों के गुण में समानता है, इसीलिये। चंपा इतनी दूर तक सोच नहीं सकती थी। वह शारीरिक आकर्षण और पार्थिव संबंध को ही सब कुछ मानती थी। कारण यह है कि

अव तक उसने अपने रूप-यौवन का ही उपयोग किया था। जिस अस्त्र का उपयोग सिपाही सफलता-पूर्वक बार-बार करता है, उस पर उसका विश्वास भी जम जाता है, यह स्वाभाविक भी है। पद्मा जिन लोगों के संपर्क में आती थी, वे भी इसी तराश के लोग थे। आध्यात्मिक चेतना-जैसी चीज़ तो उनमें थी नहीं। वे अपने पद या अपनी शक्ति का उपभोग पार्थिव सुखों के लिये करते रहते थे। इस धरती और शरीर से भिन्न उनके लिये कहीं कुछ भी न था। चंपा के मन का भी गठन इसी पोली धरती पर हुआ था। उसने पद्मा को अपदस्थ करने के लिये अपने वाह्य सौंदर्य को अस्त्र के रूप में चुना। वह विश्वास पूर्वक जानती थी कि किसी-न-किसी दिन ज्ञानदेव का ज्ञान हरण करके ही छोड़ेगी और पद्मा की ओर से उसके मन में घृणा और उपेक्षा पैदा करा देगी।

चंपा यह नहीं जानती थी कि ज्ञानदेव के भीतर की बनावट किस धातु की है। वह था तो धरती का ही एक साधारण मानव, किंतु मा की शिक्षाओं ने उसके भीतर के तम को सदा के लिये मिटा दिया था। मा ने उसे वतला दिया था कि जीवन क्या है, और उसका उपयोग कैसे करना श्रेयस्कर होगा। जो ज्ञान मा के अमृत से भी पवित्र दूध के साथ ज्ञानदेव ने पान किया था, उसी से उसके मानसिक शरीर का निर्माण और पोषण हुआ था। ज्ञानदेव का ज्ञान वाह्य संस्कारों का दिया हुआ न था। उसने जो कुछ प्राप्त किया था, अपने भीतर से ही।

चंपा ने ज्ञानदेव को भौतिक आँखों से देखा, और गिरे हुए छिछोरे मन के द्वारा पहचाना। ज्ञानदेव और चंपा के बीच में आकाश और पाताल में जितना अंतर हो सकता है, उतना ही अंतर था, फिर भी चंपा अपने रूप का भरोसा करके, वेशर्मी का भरोसा करके, उत्तेजित कर देने वाली अपनी आसुरी शक्ति का भरोसा करके, आधुनिकता का भरोसा करके, चटक-मटक का भरोसा करके आगे बढ़ने की ताक में थी।

उसके भाई ने समझाया था कि भौंरे की तरह फूल-फूल का रस तो लेना, किंतु किसी फूल पर रीझना मत। अपने हृदय को सदा अलग रखना, और जो मिले, उसे ऐसा विश्वास दिला देना कि तू उन्हीं की है। चंपा ने इस उपदेश को हृदयंगम किया था, किंतु ज्ञानदेव के मामले में भूल गई। उसने अपने आपको न्योछावर कर दिया ज्ञानदेव के चरणों पर।

चंपा पद्मा के निकट से हँसती हुई उठी, यद्यपि मन-ही-मन वह रो रही थी। वह लीला के यहाँ पहुँची निमन्त्रण देने। लीला अपने कमरे में बैठी सिगरेट-पर-सिगरेट फूंक रही थी। चंपा ने बैठते ही पूछा—"मिस लीला, तुम कितनी सिगरेटें रोज़ खाक कर डालती हो ?"

लीला ने सगर्व कहा—"एक टिन ५५५ नित्य मुझे चाहिए मिस चंपा।"

चंपा बोली—"तुम्हारे सुंदर होंठ जल गए हैं, आँखों की पलकों पर सूजन भी है। आँखों के नीचे काले, गहरे दाग़ भी मैं देख रही हूँ। तुम आत्मघात करने पर तुली हो क्या मिस ?"

लीला खिलखिलाकर हँसी और बोली—"मिस, यह जवानी और चाहनेवाले, दोनों कुछ ही दिनों के लिए हैं। मैं चाहती हूँ कि अपने रूप और यौवन के प्रत्येक क्षण का उपयोग करूँ। बचाकर रखने से भी न तो रूप ही रहेगा और न यौवन। कमाओ, खाओ और मौज उड़ाओ—यही मेरा सिद्धांत है।"

चंपा ने कहा—"मिस, तुम अपने वर्तमान का उपयोग इस बुरी तरह कर रही हो कि वह तुम्हारे भविष्य को भी चबाता जा रहा है।"

लीला खिलखिलाकर हँसी और बोली—"मिस चंपा, मुझे उपदेशक नहीं, साथी की ज़रूरत है।"

चंपा चुप लगाकर सोचने लगी। उसने अपनी ग़लती मान ली। पद्मा और लीला, दोनो ही उसके लिये विघ्न थीं। चंपा यह जानती

थी कि लीला का ध्यान भी ज्ञान की ओर लगा हुआ है। यदि यह कुपथगामिनी अपने आप नष्ट हो जाती है, तो इसमें मेरा तो हित ही है। चंपा ने लीला को उत्साहित करने की दुर्नीति को अपनाना ही हितकर माना।

निमंत्रण स्वीकार करके लीला ने कहा—"बाबा को मत न्योता देना। उनके सामने मन उभरता नहीं, और न दिल की कली ही खिलती है।"

चंपा ने लीला के मन के उभरने और दिल की कली खिलने-वाली बात को मन-ही-मन मंजूर कर लिया और कहा—"ऐसा ही होगा।"

लीला के साथ चार-पाँच सिगरेट फूंककर चंपा मचलती हुई टैक्सी पर बैठी, और फिर मि० सेन, अली, सिंह, दास, रोबिन, सरदार, चौधरी आदि की कोठियों की प्रदक्षिणा करती हुई घर पहुँची।

भवानी बाबू आनंद से फुदकते हुए बोले—"साहब भी आवेंगे। चलो, काम बन गया।"

जीवन क्या है ?

चमार भी मौज में आकर नहीं, लोगों की आवश्यकता को निगाह में रखकर ही जूते बनाया करता है। और मानव ? क्या कहा जाय—धड़ाधड़ बच्चे धरती पर आते ही रहते हैं। मानव को जो गढ़ रहा है, वह इतना भी नहीं सोचता कि इनकी ज़रूरत क्या है, वह इतना भी नहीं जानता कि आवश्यकता से अधिक मानव गढ़ देने का नतीजा खराब ही हुआ है—मानव का बाज़ार-भाव बहुत ही गिर गया है। चंपा ने भी अपने को इसी दृष्टि से देखा। उसने सोचा, वह इस धरती पर मानो बेबुलाए ही आ गई—कहीं उसके लिये स्थान नहीं है। माता-पिता मर गए, और भैया ने आश्रय दिया। यह तो कोई कृतज्ञ होने की बात नहीं है—मा-बाप के मर जाने पर भाई अपनी बहन की रक्षा करता ही है, किंतु उपयोगितावादी भैया ने बहन को अपने पेशे के लिये कारगर समझा, और इसी उपयोग में लाया।

आजकल जितने प्रकार के यज्ञ चल पड़े हैं, उन सभी यज्ञों से श्रेष्ठ यज्ञ है दलाली—यज्ञ, और मन लगाकर भैया इसी यज्ञ में जुटे रहते हैं। चरखा-यज्ञ, भू-दान-यज्ञ, ज्ञान-दान-यज्ञ, शिक्षा-दान-यज्ञ

आदि यज्ञ-महायज्ञ अल्प फल देनेवाले हैं, किंतु दलाली—यज्ञ प्रत्यक्ष फलदाता माना गया है। चंपा ने यह मान लिया कि वह इसी श्रेष्ठ यज्ञ में बलिदान होने के लिये धरती पर आई है—दूसरी कोई उपयोगिता उसके लिये नहीं है। उसका हृदय धिक्कार से भर गया।

चंपा का मन उसी के चारो ओर चक्कर मारने लगा। वह ज्यों-ज्यों अपने संबंध में सोचती, विचार करती, भीतर की कुरूपता उसके सामने स्पष्ट होती जाती। चंपा ने यह कभी सोचा भी नहीं था कि वह भीतर से इतनी कुरूपवती है, बाहर से लुभावना दिखलाई पड़नेवाला उसका मादक यौवन वस्तुतः गंदगियों को एक लेप-मात्र है, जिसे उसने अपने शरीर पर चढ़ा रक्खा है। चंपा ने अपने आपको देखा, किंतु वह बहुत देर तक देख न सकी। धीरे-धीरे फिर पुरानी धुरी पर ही उसका मन घूमने लगा। मनुष्य पहले आदतों को बनाता है, फिर आदतें उसे अपना रूप दे देती हैं—जैसे शराबी, अफ़ीमची, जुआरी, झूठा, दग़ाबाज़ आदि-आदि। हवा का एक ज़ोरदार झोंका आया, चंपा धरती से कुछ ऊपर ज़रूर उठ गई, किंतु फिर धरती पर ही पैर जमाकर खड़ी हो गई;

चंपा ने स्नान किया, और शीशे के सामने खड़ी होकर कहा—"धत् तेरे की, यह जीवन मौज करने के लिये हैं। न यह जवानी बराबर रहेगी, और न यह शरीर ही स्थायी है—मैं बेकार चिंता की आग में अपने को झुलसाया करती हूँ।"

उसने जी लगाकर शृंगार किया। भवानी बाबू ने एक टैक्सी मँगवाई, और मि० ज़ाफ़रहुसैन की कोठी के सामने जाकर टैक्सी रुकी।

दूसरे दिन सबेरे चंपा जब जागी, तो उसका सिर दर्द के मारे फटा पड़ता था। पिछली रात को उसने कितनी शराब पी ली थी, इसका पता उसे न था। साठ साल के बूढ़े मि० ज़ाफ़र तो पीनेवालों में अपना श्रेष्ठ स्थान रखते थे। चंपा के सामने धीरे-धीरे पिछली

रात की प्रत्येक बात स्पष्ट होने लगी। उसके भैया कब उसे वापिस लेने आए थे, और कैसे वह घर तक पहुँची, यह उसे याद न था—वह तो बेहोश हो गई थी—आठ-दस पेग गले के नीचे उतारते ही।

चंपा कराहकर उठी, और दीवार का सहारा लेकर स्नान-घर में घुस गई। दोपहर को उसके भैया हँसते हुए पधारे, और अपनी बहन से बोले—"बाज़ार चलो चंपा, आज नौ-रत्न की एक अँगूठी ख़रीदूँगा

चंपा कुछ लजाती हुई बोली—"भैया, जैसी अँगूठी उस दिन पद्मा की उँगली में तुमने देखी थी, वैसी ही अँगूठी मुझे चाहिए।"

भवानी बाबू ने बहन की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"पगली, वह कम-से-कम बीस हज़ार का हीरा है। देखती नहीं, एक इंच तो लंबा और पौन इंच चौड़ा है—चमक ऐसी है कि आँखें चौंधिया जाती हैं।"

चंपा ने घबरा कर कहा—"इतनी कीमती अँगूठी है ?

भवानी बाबू ने कहा—"इतना बड़ा हीरा इस शहर में किसी के पास नहीं है। बंबई में शायद मिले।"

चंपा बोली—"तब अँगूठी नहीं लूंगी।"

भवानी बाबू ने पाँच हज़ार का सौदा किया था। किसी को वह ठेका दिलवा रहे थे, जो मि० ज़ाफ़र की बदौलत मिल गया।

भवानी बाबू ने कहा—"आज मैं टूर पर जा रहा हूँ। एक मीटिंग है, और बड़े-बड़े नेताओं का आगमन होगा। मुझे ही सभा का प्रबंध करना है। चंदे में सात-आठ हज़ार उगाह चुका हूँ। जाना ज़रूरी है।"

चंपा ने मान-भरे स्वर में कहा—"भैया, चंदे की आमदनी में मेरा हिस्सा नहीं होगा क्या ?"

भवानी बाबू ने कहा—"तू जानती नहीं चंपा, तीन हज़ार तो ख़र्च करना पड़ा—चंदे का पैसा सोलहो आने पेट में नहीं जाता।"

चंपा बोली—"भैया, बाज़ार का बहुत-सा बिल मेरे सिर पर है।"

"कितना होगा ?"—भवानी बाबू ने पूछा ।

चंपा बोली—"शापुरजी शराबवाले का ही छ सौ है, फिर कपड़े-बाले और कमरचंद-स्टोर का अलग ।"

भवानी बाबू ने कहा—"दे दिया जायगा । ज्ञानदेव क यहाँ आना-जाना है या नहीं ?"

चंपा ने कहा—"भैया, वहाँ पद्मा की डिक्टेटरी चलती है । वह मूर्ख ज्ञान पद्मा के चरणों का ग़ुलाम बना हुआ है ।"

भवानी बाबू ने सोचकर कहा—"यदि तू जी लगाकर कोशिश कर, तो मैं ज्ञान से ही तेरी शादी कर दूं । तू जानती नहीं चंपा ! इस शहर में सबसे अधिक धनी ज्ञानदेव है । मैंने पता लगाया है, पंद्रह लाख तो उसके बैंक में है, और फिर लाखों की अचल संपत्ति भी तो है ।"

चंपा ने आश्चर्य से मुंह फाड़कर भवानी बाबू की ओर देखा और पूछा—"भैया, इतना अपार धन कैसे उसके बाप ने प्राप्त किया ?"

भवानी बाबू ने कहा—"वह इस प्रांत का सबसे बड़ा डॉक्टर था, और सबसे गंदा सूम । चार-पाँच सौ रुपये नित्य कमा लेता था । खर्च कुछ था ही नहीं । देखते-देखते रुपयों का अंबार लग गया । अब वह मदरासी शास्त्री अपनी लड़कियों को भेज-भेजकर ज्ञान का घर लूट रहा है । किसी दिन वह अपने घर की राह लेगा, मगर जाते-जाते ज्ञान को तबाह कर देगा । वह मूर्ख विलायती दिमाग़ का छोकरा भीख माँगता नज़र आएगा ।"

चंपा ने सोचकर जवाब दिया—"यही शक तो मुझे भी है । पद्मा मक्कार और धोखेबाज़ औरत है । वह एक दिन सारा माल-मत्ता समेट कर राही हो जायगी ।"

भवानी बाबू ने धीरे कहा—"चंपा, जैसे भी हो, अपना काम सिद्ध करना ही पुरुषार्थ है । धर्म-अधर्म का शोर मचानेवाले कायर हैं या मूर्ख । राजनीति के मैदान में मैंने यही सीखा है कि अगर अपना

काम बनता हो, तो एकलौते बेटे का भी खून कर दो, लड़की और मां को भी कंजरों के हाथ बेच दो, मगर अपना मतलब ज़रूर साधो।"

चंपा बोली—"भैया, यही तो सच्चा जीवन है। मैंने देखा है, जो रात-दिन माला फेरा करते हैं, वे एक-न-एक दिन गली-गली भीख माँगा करते हैं। मैं ऐसों से नफ़रत करती हूँ।"

भवानी बाबू बोले—"सुनो चंपा, जो आज हमें देखकर हँसते हैं, वे ही कल हमारे दरवाज़े पर नाक रगड़ने नज़र आवेंगे—धन संसार का प्रपितामह है। निंदा-स्तुति और पाप—पुण्य की परवा वे ही करते हैं, जो गधे होते हैं। तुम जानती हो चंपा, घर से फटी धोती लपेटे आया था, और आज शहर क्या, इस प्रांत का कोई भी बड़ा आदमी ऐसा नहीं है, जो मेरे जूतों को न चूमता हो।"

चंपा ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए भैया की वीरता को सराहा—"भैया, हमारी उन्नति से पास-पड़ोसवाले जलते हैं।"

भवानी बाबू ने कहा—"तू पागल है चंपा, जलनेवालों के ही अंदाज से अपनी उन्नति का अनुमान करो।"

चंपा बोली—"भैया, मंत्री क्यों नहीं बन जाते?"

भवानी बाबू ने हँसकर कहा—"तेरे दरवाज़े पर कितने मंत्री आते-जाते रहते हैं चंपा, अगले चुनाव में मंत्री बनकर भी दिखला दूंगा।"

आनन्द गद-गद होकर चम्पा ने कहा—"तब तो जलनेवाले और जलेंगे। वह दिन कितने आनन्द का होगा जब हम बड़ी कोठी में जायेंगे, दरवाजे पर पचास हजार की गाड़ी और बन्दूक लिए तिलंगा, वाह!" आंखें बन्द करके चम्पा झूमने लगी, और भवानी बाबू चले गए। बहुत देर तक चम्पा अपने भैया के बल-पौरुष को स्मरण करके पुलकित होती रही।

आज उसे किसी शानदार व्यक्ति के साथ शिकार में जाना था, शेर के शिकार में। शिकार पार्टी रात को २ बजे बिदा होने जा रही थी। चम्पा का जाना जरूरी था।

पहले जब यहां गोरे साहब थे, शिकार के लिए जंगलों में जाते थे। उनके जाने के बाद जिन्होंने उनका स्थान सुशोभित किया, उन्होंने शिकार की शुभ परम्परा को कायम रखा।

एक करोड़पति सेठ शिकार-पार्टी का व्यय-भार वहन कर रहे थे। भवानी बाबू की मारफत सारा प्रबन्ध हो रहा था। सेठ के सिर पर दो-तीन लाख इन्कम-टैक्स लदा था जिसका भार भवानी बाबू वहन कर रहे थे। एक दूसरे के सहायक हुए बिना संसार का काम चल ही नहीं सकता। चम्पा भी शिकार-पार्टी के साथ थी। शिकार के बड़े हुजूर शेर पर गोली दागेंगे या नहीं, किन्तु चम्पा के अचूक निशाना का क्या कहना है। बड़े हुजूर का शिकार करके जब चम्पा लौटेगी, तो उसके भैया जरूर चालीस हजार की गाड़ी खरीद देंगे, यही तो प्लान था, जो भवानी बाबू ने बनाया था। उनकी बनायी योजना कभी विफल नहीं होती थी।

शिकार-पार्टी में चार सज्जन थे, और पांचवीं थी चम्पा। शराब की बोलती हुई लाल-पीली दर्जनों बोतलें और न जाने क्या-क्या थी।

चम्पा शिकारी पोशाक पहने जिस समय शान से चली देखने वालों ने अपने सीने के भीतर हवाई जहाज की पंखी चलने जैसा अनुभव किया।

चार-पाँच दिन तक जंगल की अत्यंत स्वास्थ्यवर्धक हवा खाकर चंपा लौटी, मगर भाग्य को क्या कहे—वह बीमार लौटी। वह किसी तरह अपने कमरे में घुसी, और खाट पर जो गिरी, तो दो-तीन सप्ताह बाहर नहीं निकली।

इसी बीच में पद्मा का विवाह संपन्न हो गया। चंपा के लिये

यह दुहरा आघात था। वह पड़ी-पड़ी मन-ही-मन विसूरती रही—यह शिकार भी हाथ से निकल भागा। भवानी बाबू भी ज्ञानदेव पर बहुत नाराज हुए, और गरजकर बोले—"उस मदरासी को तो जेल भेजवाता हूँ, और ज्ञानदेव पर एक लाख इनकमटैक्स लगवा देता हूँ।"

इतना कहकर भवानी बाबू कमरे से तूफ़ान की तरह निकले, और नौकर से दहाड़कर कहा—"टैक्सी ला। अबे सुन तो, जो टैक्सी एकदम नई, चमकदार हो वही लाना। जा, जल्दी कर।"

वह फिर चंपा के निकट पहुँचे और बोले—"अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। पद्मा को बीच से जैसे भी हो, हटा दो, और ज्ञानदेव पर अपना प्रभाव डालकर.... समझ गई न ?"

चंपा ने सिर हिलाकर धीरे से कहा—"कैसे होगा, यही सोच रही हूँ।"

भवानी बाबू ने कहा—"कैसे होगा ? हिम्मत और अक्ल से तो संसार को हिला दिया जा सकता है। पहले पद्मा के हृदय में विश्वास पैदा करो। जब विश्वास पैदा हो जाय, तब अपना मतलब साधना। राजनीति बतलाती है कि जो सीने में छुरा भोंकता है, वह खूनी है, और जो पीठ में छुरा भोंकता है, वह पुण्यात्मा और सफल प्राणी है, सभी उसका सम्मान और आदर करते हैं। सीने में छुरा भोंकनेवाले के गले में फाँसी का फंदा डाला जाता है, और जो पीठ में छुरा भोंकता है, उसके गले में जयमाला शोभा पाती है।"

भाषण देकर भवानी बाबू चले गए—वह दस-पाँच मिनट से अधिक कहीं टिकते न थे, यह उनकी विशेषता थी।

चंपा पीठ में छुरा भोंकने के महत्त्व को जानकर प्रसन्न हुई। आशा का प्रकाश फिर उसके सामने चमक उठा।

पद्मा को यह ज्ञात नहीं था कि उसकी कोठी से केवल दो मील की दूरी पर खाट पर लेटी हुई एक सुंदरी उसके लिये छुरे पर सान दे रही है। पद्मा विवाह की खुशी में फूली नहीं समाती थी, जो

उचित भी था। वह सुख और सुहाग, दोनो की रानी बनकर यदि इतरा रही थी, तो इसमें अचरज क्या था। रत्ना अपने पति के साथ विलायत जाने की व्यवस्था करने में चुपके-चुपके लगी हुई थी। अगले साल उसका पति विशेष शिक्षा प्राप्त करने विलायत जा रहा था। शास्त्रीजी वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करने की तैयारी में लगे थे, और अइया ज्ञान को पाकर संसार को चुनौती दे रही थी। वह कहा करती थी—"मेरी बाज़ी जीत गई। पद्मा को देकर वदले में ज्ञान-जैसा वेटा मिला।"

शास्त्रीजी हाथ जोड़कर भक्ति-गद्गद चित्त से कहते थे—"भगवान् करे, तुम्हारा यह आनंद जन्म-जन्मांतर बना रहे। मैं तो निश्चित हो गया—अपना कल्याण कैसे हो, यही मुझे करना है। आज मुझ-सा सुखी संसार में कौन है।"

भवानी बाबू भी तो आत्म-कल्याण में ही लगे थे, और चंपा ने भी आत्म-कल्याण का ही मार्ग अपनाया था।

भवानी बाबू और शास्त्रीजी के आत्म-कल्याण में शायद कुछ अंतर था, जिसे आज की दुनिया नहीं मानती। इस तर्क में सिर खपाना बेकार है।

प्रश्न यह है कि आखिर जीवन क्या है ?

शास्त्रीजी ने जो रास्ता पसंद किया था, वह जीवन है, या भवानी बाबू विश्वास पूर्वक जिस मार्ग पर चल रहे थे, वह जीवन है ?

इसमें संदेह नहीं कि भवानी बाबू के साथ चलनेवालों की संख्या अपरिमित थी, जब कि शास्त्रीजी शायद अकेले ही थे।

संसार के हित की योजना गढ़नेवाले यदि जीवन को गढ़न की योजना बना लेते, तो संसार का रूप ही कुछ दूसरा होता।

चंपा अपने विचारों मे खोई हुई-सी रहने लगी, ज्ञान को उसने मानो सदा के लिये गँवा दिया। यह उसके लिये बहुत ही बड़ा आघात था। इधर जॉर्ज साहब भी काफ़ी मर्माहत हुए। वह चाहते

थे, उनकी शुभलक्षणी कन्या को ज्ञान स्वीकार कर ल. तो सिर पर का सनीचर उतर जाय, यह भी नहीं हुआ ।

लीला ने एक नया रोग पाल लिया था, जिसकी चिंता अब उसे भी सताने लगी थी । मानसिक दुश्चिंताओं के उत्कोवन से छुटकारा पाने के लिये उसने दिन-रात पीना शुरू कर दिया था । वह लगातार पीती और खूब पीती । लीला की मा ने लीला को समझाना चाहा, किंतु जॉर्ज साहब ने कहा—"विलायत में जब लड़कियाँ जवान हो जाती हैं, तो खूब पीती हैं, क्योंकि वे अपने प्रेमियों के साथ रहना पसंद करती हैं, और वहाँ के जवान छोकरे शराब को बहुत पसंद करते हैं ।"

जॉर्ज साहब ने सब कुछ गँवा कर भी विलायत का झंडा यहाँ भी कभी झुकने नहीं दिया—यह कुछ कम विशेषता न थी । भवानी बाबू से उनकी दोस्ती भी गहरी हो गई थी । लीला को अपने साथ लेकर भवानी बाबू मोटर पर हवा भी खाने लगे थे, और लीला जो चाहती थी, वह तुरंत मुहैया भी कर देते थे । लीला का खर्च बहुत बढ़ गया था, और अब उसका ध्यान धन की ओर भी गया था, यद्यपि पहले वह केवल मित्रों के साथ जीवन का श्रेष्ठ सुख-लाभ करने में ही लगी रहती थी—सैर-सपाटा, पिकनिक, नाच, शराब, सिनेमा, बड़ी-बड़ी पार्टियाँ और दामी मोटरों की सवारी । जितने अधिक युवक लीला के पीछे जुलूस बनाकर चलते थे, उसे विशेष आनंद आता था । इसे वह अपने रूप-यौवन की शानदार जीत मानती थी । उसके पिता की छाती भी गर्व से फूल जाती थी कि उनकी दुहिता का शहर में इतना यश है ।

समय ने करवट बदली, और लीला के सिर पर कर्ज़ का भार बढ़ने लगा । अब वह पैसे की ओर भी झुकी । इस काम के माहिर भवानी बाबू थे ही ।

भवानी बाबू ने जॉर्ज साहब की गिरती हुई माली-हालत को भी

सँभालने का वादा किया, और चार-पाँच सौ रुपये देकर उन्होंने लीला का कर्ज़ चुकता कर दिया। अब लीला उसके हाथ की कठपुतली बन गई। हल्के मामलों में तो वह लीला का उपयोग करते, और जहाँ गहरी रकम की बात होती, वहाँ चंपा तो थी ही।

एक दिन जॉर्ज साहब से भवानी बाबू ने कहा—"जनाब, उद्योगी को ही धन मिलता है। मैं कट्टर हिंदू हूँ, धर्म ही मेरा सब कुछ है, किंतु दूसरे महायुद्ध में एक सेठ के साथ मैंने हज़ारों गाएँ अमेरिकनों के बावर्चीखाने में भेजवाई। फी गाय पचीस रुपया कमीशन मिलता था। मैंने पचास हज़ार रुपया तीन महीने में पीटकर धर दिया। पास में पैसा होगा, तो बड़े-बड़े गुणी, पंडित, नेता, देश-सेवक, कलाकार, दरवाज़े पर सिर झुकाते नज़र आवेंगे।"

जॉर्ज साहब मुंह फाड़कर भवानी बाबू की ओर देख रहे थे। भवानी बाबू ने शराब की दूसरी बोतल से एक पेग ढालते हुए कहा—"एक कहानी सुनाऊँ? विश्वास कीजिएगा! मेरे एक हिस्सेदार की लड़की बहुत ही हसीन थी। एक विलायती फ़ौजी अफ़सर की नज़र उस पर पड़ी। फिर क्या था, देखते-देखते मेरे साथी ने लाखों का व्यवसाय खड़ा कर लिया।"

जॉर्ज साहब ने कहा—"सो कैसे?"

भवानी बाबू बोले—"फ़ौजी ठेके के द्वारा, और कैसे? मैं भी उस ठेके में साथ था।"

जॉर्ज साहब उत्सुक होकर बोले—"आपने कितना लाभ उठाया?"

भवानी बाबू ने कहा—"करीब सत्तर हज़ार। मेरे ही कहने पर उसने अपनी लड़की को कर्नल के पास जो भेजा था। वह लड़की बाद में बीमार पड़ी, और मर गई।"

जॉर्ज साहब ने मुंह बनाकर कहा—"उफ़्, वह मर कैसे गई?"

भवानी बाबू ने इधर-उधर देखकर धीरे से कहा—"गर्भ ..... लोक-लाज के भय से लड़की की मा ने .... संखिया ....।

बड़ी मूर्खता की उसने। यदि वह मेरी लड़की होती, तो ..... क्या बतलाऊँ, लाखों बटोर लेता।" शराब के नशे में भवानी बाबू पेट का सारा पाप उगल रहे थे।

जॉर्ज साहब ने मन-ही-मन हिसाब बैठाया, तो यही पता चला कि दूसरे महायुद्ध के समय लीला केवल दस साल की थी। उन्होंने सोचा—आह। यदि एक बार फिर विश्व-युद्ध छिड़ जाय, तो सारी काई जो शरीर पर लग गई है, छूट जाय। एक पेग और पीकर भवानी बाबू अपनी कुर्सी से तलमलाते हुए उठे, और जॉर्ज साहब की गोद में बैठ कर गले से लिपट गए। कुर्सी चरमरा उठी। जॉर्ज साहब भी नशे में झूम रहे थे। भवानी बाबू रोने लगे, और बोले—"भैया जॉर्ज, मैं तुम्हें मालामाल कर दूंगा। लीला को लफंगों से बचा लो। बदनामी फैल जाने से किसी बड़े आदमी के यहाँ इसे साथ ले जाना असंभव हो जायगा।"

जॉर्ज साहब की जाँघ की हड्डी कड़कड़ा उठी। वह किसी तरह भवानी बाबू को अलग करके बोले—"आपने ठीक ही कहा। मैं लीला को अब रोक रखता हूँ—कहीं आने-जाने नहीं दूंगा।"

बस, यही तो मैं चाहता हूँ"—भवानी बाबू झूमते हुए बोले। उन्होंने लीला को बुलवाया। वह अपने कमरे में करोड़पतिलाल के के साथ बैठी किसी पिकनिक की योजना बना रही थी।

लीला आई। वह भी नशे में ही थी। भवानी बाबू ने लपककर लीला का हाथ पकड़ा, और उसे हृदय से लगाते हुए कहा—"आज से तू मुझे चाचा कहना। मैं तेरा चाचा बन गया।"

इसके बाद जेब से निकालकर दो-तीन सौ के नोट लीला के हाथ में देते हुए कहा—"ले बेटी, यह तेरी नज़र है।"

ऊपर मन से लीला ना-ना करती रही, तो जॉर्ज साहब बोले—"लीला, चाचा का मन नाराज़ हो जायगा, ले लो।"

इस तरह जॉर्ज साहब के भाई और लीला के चाचा बनकर भवानी बाबू जब अपने डेरे पर लौटे, तो वहाँ उन्होंने चंपा को नहीं पाया।

पूछने से पता चला—मि० लियाकत आये, और चंपा को साथ लेकर चले गए।

भवानी बाबू गुस्से से उबल उठे, और बोले—"जिसे भूँकना सिखलाया, वही काटने दौड़े। अब चंपा खुद बड़े आदमियों से सौदा पटाने लगी—यह जुर्रत। इस कमीनेपन की वह सजा दूंगा कि फिर हाँ।"

एक पूरी बोतल ठर्रा पीकर भवानी बाबू इच्छा न रखते हुए भी सो गए।

चंपा सबेरे लौटी—ठीक ब्रह्ममुहूर्त में, जिस समय पद्मा खाट का त्याग करके और स्नानादि से निश्चित होकर ज्ञानदेव को जगाती और स्नानादि से निवृत्त होकर प्राणायाम और व्यायाम करने में उसे प्रवृत्त करती थी। इसी समय शास्त्रीजी उठकर शांति-पाठ करते थे, और अहल्या उठकर भागवत का पाठ करती थीं।

समय तो वही है, काल-प्रवाह तो अपनी चाल से प्रवाहित होता ही रहता है। अपनी-अपनी रुचि और प्रकृति के अनुसार लोग उसका उपयोग और उपभोग करते हैं। वह किसी के लिये न तो रुकता है, और न किसी के भय से भागता ही है।

चंपा भी शराब के उखड़ते हुए नशे से परेशान हो रही थी। उसका अंग-अंग टूट रहा था। चेहरा पीला पड़ गया था, जैसे किसी ने हलदी पोतकर बिदा किया हो। आँखें एक-एक इंच भीतर धँस गई थीं। होठ काले पड़ गए थे। वह गर्दन झुकाकर धीरे-धीरे चल रही थी। सारी रात का जागरण और नृत्य-संगीत का परिश्रम अलग से।

वह कराहती हुई आई, और खाट पर गिर पड़ी—बेहोशी-सी

आने लगी। वह अपने को सँभाल न सकी—खाट से लुढ़क कर नीचे गिरी, और बेहोश हो गई।

कमरा भीतर से बंद था। फ़र्श पर ही आराम से पड़ी रही। दिन को आठ बजे उसकी आँखें खुलीं, और किसी तरह खाट पर जाकर सो रही, तो बारह बजे जागी।

भवानी बाबू सबरे ही जागकर किसी आवश्यक काम से दूर पर चले गए थे। किसी गाँव में डाका पड़ा था। कुछ लोग पकड़े भी गए थे।

पर-दुःख-कातर भवानी बाबू पुलिस के चंगुल से बेचारे तथाकथित डाकुओं को मुक्ति दिलाने गए थे। दारोग़ा जी अपने ही आदमी थे। मामला तय हो गया। एक हज़ार का नकद सौदा पटाकर भवानी बाबू तीन दिन बाद घर लौटे।

चंपा तब तक स्वस्थ हो गई थी. और फिर किसी जल्से में जाने की बात सोच रही थी।

भवानी बाबू अपनी बहन को स्वस्थ देखकर पिछली बात भूल गए और फिर नई योजना बनाकर अर्थोपार्जन की ओर ध्यान देने लगे।

परिणाम

लीला का वह रोग बढ़ता ही गया, जिसकी चिंता उसकी माँ को थी। तीसरा महीना भी पार हो गया। गुप्त दवाइयों का कोई असर नहीं पड़ा।

वर्षा होकर आकाश साफ़ हो गया था—श्रावण शुक्ल पक्ष का चाँद आकाश से मानो जीवन की वर्षा कर रहा था, और बादलों के टुकड़े जहाँ-तहाँ बिखरे हुए थे। शून्य आकाश के ये अतिथि बहुत ही शांत दिखलाई पड़ते थे, यद्यपि कुछ देर पहले इनका रूप डकैतों-जैसा डरावना था।

करोड़पति आया। लीला तो पहले ही से बन-ठन कर बैठी थी। ज्ञानदेव को प्राप्त करने की उसकी आशा समूल नष्ट हो गई, तो उसने करोड़पति को ही अपने मन में ज्ञानदेव मान लिया, और अपने को पद्मा। वह उच्छ्वसित हृदय से करोड़पति का चिंतन करती, और अपने मन को तोष देती।

करोड़पति और लीला दोनो टहलते हुए उस बन की ओर चले, जो सामने ही था। आगे-आगे लीला चल रही थी, और पीछे-पीछे पैंट की जेब में हाथ डाले अनमना-सा करोड़पति चल रहा था। बन के भीतर अंधकार और प्रकाश का सुंदर दृश्य था। उलझी हुई

डालियों की छाया धरती पर बहुत ही लुभावनी दिखलाई पड़ती थी शुक्ला-त्रयोदशी का चाँद भी पूरे उरूज पर था ।

लीला एक जगह रुकी, और करोड़पति से बोली—"तुम नहीं जानते, मुझे क्या हो गया है ?"

करोड़पति सब जानता था । वह अनजान-जैसा मुंह बनाकर बोला—"नहीं तो, क्या हुआ है ?"

लीला ने लज्जा से सिर झुकाकर कहा—"तीन महीने का ···।"

करोड़पति के चेहरे पर शैतानी हँसी फूट पड़ी । वह बोला—"खुशी की बात है, मिठाई खिलाना ।"

लीला बोली—"खुशी की बात है ? मैं क्वाँरी जो हूँ ?"

करोड़पति ने कहा—"क्या हुआ, जो तुम क्वाँरी हो । आजकल की आधुनिकाएँ एक दर्जन गर्भ धारण करके क्वाँरी ही बनी रहती हैं, यह तो शायद पहला हो या दूसरा ।"

लीला ने कहा—"यह कैसा निष्ठुर परिहास है बाबू ?"

करोड़पति बोला—"परिहास ? मैं परिहास नहीं करता । तुम्हारी उम्र पच्चीस के लगभग होगी । तुम्हारे पिता ने अभी तक तुम्हें मिस बाबा ही मान रक्खा है । खाने-खेलने की पूरी आज़ादी भी उन्होंने दे रक्खी है, तो परिणाम क्या होगा । खुद सोचती क्यों नहीं ?"

लीला बोली—"तुम मुझे अपनी बातों से छेद रहे हो बाबू । मेरा जीवन संकट में फँस गया है ।"

करोड़पति फिर मुस्किराया, और बोला—"इस गर्भ के बाप से कहो, वह स्वीकार कर ले, किंतु तुम किसे कहोगी ? नतीन, जौन, अलीअसरफ़, राजीव, सरदार तलवारसिंह, सुखाड़ी भगत ···· ?"

लीला के सिर में चक्कर आ गया । वह अर्धमूर्छितावस्था में ही बोली—"पैरों पड़ती हूँ, मुझे इतना अपमानित मत करो ।"

करोड़पति का स्वर कड़ा हो गया । वह बोला—"मक्कार औरत, तू क्या चाहती है कि तेरे इस ग़लीज़ को मैं अपने सिर पर लाद लूं ?"

लीला थर-थर काँपने लगी। वह पसीने से तर हो गई। वह भिखारिन की तरह करोड़पति के पैर पकड़ने को झुकी। वह उछलकर पीछे हट गया, और बोला—"मेरे पैर क्यों पकड़ती है ? मैं तो तेरे लिये स्टेट बैंक था—जब चाहा, रुपया ऐंठा, और शराब से अपने खास दोस्तों का स्वागत किया। लीला, अब मुझे और मूड़ने की कोशिश मत करो। तुम्हारी पचासों चिट्ठियाँ मेरे पास सुरक्षित हैं।"

लीला पत्थर की मूर्ति-सी खड़ी हो गई। करोड़पति शराबी की तरह गालियाँ बकता-बकता जब थक गया, तो लीला बोली—"और जो भी कहना चाहो, कल के लिये मत छोड़ो, कह डालो।"

करोड़पति लीला के इस कड़े रूख से मन-ही-मन डर गया। वह नरम स्वर में बोला—"मैं बार-बार कहता था कि आवारों का साथ मत करो।"

लीला ने कहा—"और आप क्या हैं, शरीफ़ ?"

करोड़पति बोला—"मैं भी तो आवारा ही हूँ—ठीक ही तो कह रही हो। बात यह है कि मैं इस पाप को स्वीकार नहीं कर सकता। अच्छा हो कि तुम किसी दूसरे का पल्ला पकड़ो।"

इतना कहकर करोड़पति तेज़ी से चला गया। उस बन में अकेली लीला रह गई।

उसके पैरों को मानो लकवा मार गया हो। वह बहुत देर तक खड़ी रही। और जब ध्यान भंग हुआ, तो डरकर चारों तरफ़ देखने लगी। रात को वह बन सायँ-सायँ कर रहा था। दूर पर उल्लू बोल रहा था। घटाएँ फिर घिर आई थीं, और अंधकार छा गया था।

लीला डरी नहीं—वह लौट चली, और अपनी कोठी पर पहुँचकर ही रुकी। उसने मन-ही-मन कुछ इतना कठोर निश्चय कर लिया था कि उसका अंतर पथरा गया था, अनुभव-शून्य हो गया था।

जो अपने प्राणों को प्यार नहीं करता, उसे मरण-भय नहीं सताता—स्थिति ऐसी आ गई थी कि लीला ने भी प्राणों को प्यार करना

छोड़ दिया था। वह जब अपनी कोठी पर लौटी, तो वहाँ उसने अपने को कुछ अस्वस्थ पाया। सिर के भीतर मानो सारे शरीर का खून जमा होकर उबल रहा था। उसने खूब सिर बांधा, और फिर आलमारी से बोतल निकालकर जी भर कर पी ली। दो चुल्लू शराब पेट में जाते ही उसके दिल और दिमाग़ का नक़्शा बदल गया।

वह बोली—"छिः यह कौन-सी बड़ी चिंता की बात है, जो मैं प्राण देने पर उतारू हूँ। इस बला से छुटकारा पाने के सैकड़ों तरीके हैं।"

अपमान और अवसाद की मारी पीड़ाजनक कड़वाहट उसके मन से निकल गई। इस भय से कि कहीं नशा उतरने पर फिर मानसिक मंथन न शुरू हो जाय, वह रात-भर पीती रही।

दूसरे दिन चंपा आई। लीला ने एकांत में ले जाकर चंपा से अपना हाल कहा, तो वह गंभीर होकर बोली—"तुमने बड़ी ग़लती की। पहले क्यों नहीं कहा। एक लेडी डॉक्टर मेरे भैया की परिचिता हैं। चिंता मत करो। काम हो जायगा।"

लीला ने मन-ही-मन कहा—"यह कितनी दयावती महिला है।"

तीसरे दिन चंपा आई, और बोली—"बात हो गई। वह तो एक हज़ार से कम लेना ही नहीं चाहती थीं, किंतु मैंने पाँच सौ में बात पक्की कर ली है।"

लीला को जैसे सनाका मार गया—पाँच सौ, हे भगवान् ! वह बोली—"पाँच सौ तो बहुत होता है मिस चंपा।"

चंपा ने कहा—"तो जाने दे।"

लीला घबराकर कहने लगी—"मेरा क्या होगा? यह तीसरा महीना भी अब समाप्ति पर है। जान पड़ता है, ज़हर खाना पड़ेगा।"

चंपा ने मन-ही-मन कहा—"तुझ-जैसी आवारा में इतनी शर्म कहाँ से पैदा हो गई ?" चंपा ने लीला को अवारा कहा, किंतु उसका ध्यान अपनी ओर न था। प्रशंसा करनेवाले की दृष्टि अपनी ही ओर

रहती है, और निंदा करनेवाला प्रायः अपने को बाद देकर ही जीभ की कतरनी चलाता है ।

चंपा लापरवाह-सी बोली—"मैं क्या करूँ मिस लीला ? कितना खतरनाक काम है । ग़लती हो जाय, तो डॉक्टर को जेलखाने की हवा खानी पड़े ।"

"बात तो ऐसी ही है"—लीला चिंता में डूबती-उतराती बोली । अंत में उसने अपने कुछ ज़ेवरों को बेचने का निश्चय किया । चंपा ने इस काम में सहायता देने का वचन दिया ।

लीला का मन फिर आशा से भर उठा, तो चंपा ने कहा—"मैं इस झंझट से मुक्त हूँ । इसी लेडी डॉक्टर ने सदा के लिये संकट ही मिटा दिया । भैया ने इस सेवा के बदले में उस लेडी डॉक्टर को अस्पताल में नौकरी दिलवा दी थी । बेचारी भूखों मरती थी ।"

लीला बोली—"तुमने भैया से कैसे कह दिया ?"

चंपा बोली—"तो किससे कहती ? मेरे हिताहित का भार किस पर है ? मैं भैया से कभी दुराव नहीं रखती । वह साक्षात् देवता हैं मिस लीला । भगवान् करे, मुझे हज़ार जन्मों तक ऐसा ही भाई मिले ।"

लीला बोली—"बाबा कहते हैं, विलायत में प्रत्येक स्त्री को यह कानूनन अधिकार है कि वह अपने गर्भ को रक्खे या नष्ट करा दे ।"

चंपा बोली—"आज़ाद देश में सब कुछ संभव है । अभी तो हमारी आज़ादी ही दो दिनों की है । जब जन-चेतना फैलेगी, तो शादी, व्याह, सभी गंदी बातें कानून बनाकर समाप्त कर दी जायगी । सभी घर होटल बन जायँगे, और सभी पार्क मिलन-मंदिर । तब न तो कोई किसी की बेटी रहेगी, और न बहन । केवल दो ही वर्ग रहेंगे, स्त्री और पुरुष । भैया कहते थे, वह अगली बार जब मंत्री बनेंगे, तो इस तरह के सुधार कानून बनाकर ज़रूर रहेंगे । तब तक हमारा देश योरप के मुकाबले में खड़ा ही नहीं हो सकता, जब तक यह पुराने संस्कारों का ग़ुलाम है ।"

लीला ने पूछा—"मिस चंपा, नाते-रिश्ते का झंझट तो और भी विपदा है। यह मेरी मा है, यह बहन है, यह बेटी है—यह सब क्या बखेड़ा है। स्त्रियों को नाते-रिश्ते का जाल फैलाकर धूर्तों ने गुलाम बनाया है। हवा और प्रकाश की तरह स्त्रियों को आज़ाद रहना चाहिए।"

चंपा ने कहा—"भैया कहते हैं, स्त्रियों के लिये विवाह ही नरक है। पुरुष भी विवाह करके अपने जीवन को विकसित होने से रोक देता है, जो एक नैतिक और राष्ट्रीय अपराध है।"

लीला बोली—"उनका विचार उसी तरह के हैं, जैसे किसी स्वतंत्र देश के जन-नायक के होने चाहिए।"

चंपा ने कहा—"भैया जहाँ जाते हैं—वह चाहे लेखकों का मजमा हो या संगीतज्ञों का, कट्टर राजनीतिज्ञों का दंगल हो या अराजकों का, कवियों की गोष्ठी हो या किसी सरकार का सेक्रेटरियट — उनको लोग घेर लेते और प्रवचन करने का बाध्य करते हैं। जनता और सरकार, दोनों को जोड़ने की यदि कोई कड़ी है, तो वह हैं भैया।"

लीला ने कहा—"इतना बड़ा व्यक्तित्व सैकड़ों साल से इस राज्य में पैदा ही नहीं हुआ था।"

लीला इतना कहकर चंपा का मुँह देखने लगी। चंपा ने कहा—"दिन-भर मेरे घर पर भीड़ लगी रहती है। उधर से कोई उच्च अधिकारी फ़ाइल लिये आदेश लेने पहुँचे, तो इधर से कहीं का कोई उच्च अधिकारी फ़ाइल लिए आदेश लेने पहुँचे, तो इधर से कहीं का कोई अरब-खरब-पति मोटर लिए हाज़िर है। जनता के तो भैया प्राण ही हैं।"

अब लीला ऊब चुकी थी, किंतु भवानी बाबू की प्रशंसा सुनना उसके लिए लाजिमी था। चंपा नाराज़ हो जाती, तो सारा मामला ही बंटाधार हो जाता। दूसरे दिन चुपके से अपने जेवर बेचकर लीला चंपा के साथ उस लेडी डॉक्टर के यहाँ पहुँची, जिसकी चर्चा

चंपा ने चलाई थी । वह लेडी डॉक्टर न होकर किसी अस्पताल की नर्स थी । बुढ़िया और चुड़ैल-जैसी थी काली-कलूटी और दुबली-पतली घिनौनी वह नर्स ।

उसकी शकल देखकर लीला को भय लगा, पर उपाय ही क्या था । दवा मिल गई । बात यह है कि पचास रुपए में चंपा ने बात तय की थी । वह एक साँस में लीला के साढ़े चार सौ रुपए डकार गई ।

लगातार दलाली करते-करते चंपा का भी स्वभाव ऐसा हो गया था कि वह भी हर जगह पैसे की ही गंध सूंघती फिरती थी । लीला के रुपए पार करके चंपा ने लीला को कृतज्ञ भी बना लिया ।

जब लीला सारे झंझटों से एक सप्ताह में मुक्त हो गई, तो चंपा ने पूछा—"मिस लीला, यह तो बतलाओ कि किसके चलते तुम संकट में फँसी थीं ?"

सरल हृदय से चंपा के कानों में लीला ने करोड़पति का नाम बतला दिया । चंपा करोड़पति को जानती-पहचानती थी । वह शहर के कुख्यात आवारों में विशेष स्थान रखता था, फिर चंपा क्यों नहीं जानती । उसने सोचा किसी तरह करोड़पति से भी कुछ उगाहा जाय । उसने लीला को तैयार किया । भवानी बाबू से जब चंपा ने सारा किस्सा बयान किया, तो वह उछल पड़े, और बोले—"हज़ारों का सौदा तुरंत हो जायगा, बात की बात में ।"

भवानी बाबू ने शहर के विख्यात गुंडे छक्कन को इस काम में लगाया, और तय हुआ कि यदि करोड़पति सीधी तरह राह पर न आवे, तो खुली सड़क पर उसे जूतों से पीटा जाय ।

छक्कन तैयार हो गया, और बोला—"मालिक, आपका हुक्म हो तो सिर भी कटवा सकता हूँ । बचानेवाले तो आप हैं ही ।"

भवानी बाबू ने कहा—"तुम्हारे कई खतरनाक मुकदमों को मैंने खटाई में डलवाया है, किसी की परवा मत करो, और पहले उसे

यही कहो कि पाँच हज़ार हाज़िर करे। यदि न माने, तो जूतों से पीटकर ठीक कर दो।"

छक्कन चला गया, और भवानी बाबू कलम लेकर अपना भाषण लिखने लगे। किसी बहुत बड़े स्कूल का शिलान्यास करने के लिये इन्हें साग्रह चुना गया था। शिक्षा-विभाग के बहुत से अधिकारी भी निमंत्रित थे। अपने भाषण में भवानी बाबू ने यही कहा था कि—"जब तक शिक्षा में क्रांतिकारी सुधार नहीं किए जाते, विद्यार्थियों का नैतिक-स्तर ऊपर नहीं उठ सकता।" भाषण के अंत में भवानी बाबू ने देश के नवयुवकों को अनैतिकता के ख़िलाफ़ क्रांति करने के लिए पुकारा था।

स्कूल की ओर से भवानी बाबू को एक अभिनंदन-पत्र भी दिया जानेवाला था, जिसमें उन्हें संस्कृति का अग्रदूत कहा गया था।

सभा में भवानी बाबू के साथ चंदा भी गई थी। राज्य के कई नेता भी पधारे थे, जो भवानी बाबू का मुंह जोहा करते थे।

स्कूल को एक हज़ार चंदा देकर और करीब आध मन माला पहनकर तथा जुलूस में ३२ घोड़ों की गाड़ी पर बैठकर भवानी बाबू लौट आए।

छक्कन को उन्होंने बुलवाया, और कहा—"यह काम करो, तो फिर एक दूसरा काम बतलाऊँगा।"

छक्कन बोला—"मालिक, करोड़पति दो हज़ार देने को राज़ी है।"

भवानी बाबू ने कहा—"तब दो चार जूते लगवा दो, पाँच हज़ार दे देगा। निर्भय होकर काम करो। दारोगा मेरा अपना आदमी है।"

छक्कन प्रसन्न होकर विदा हुआ।

गुंडों से धमकाया जाकर करोड़पति भी चौकन्ना हो गया था। उसने अपने बाप का पिस्तौल चुपके से चुरा लिया, और शान से बाज़ार की सैर करने लगा।

एक दिन एकाएक कुछ गुंडों ने उसे घेर लिया। खुले बाज़ार

में यह तमाशा हुआ। छक्कन भी निकट ही खड़ा था, और ललकार रहा था कि—"मारो साले को।"

बाज़ार में शोर मच गया। करोड़पति ने अचानक पिस्तौल निकालकर सीधे छक्कन पर वार कर दिया। गोली लगते ही वह छः फुट का भारी जवान धड़ाम से गिरा। भगदड़ मच गई। दूकानें बंद होने लगीं। छक्कन एक बार इस करवट से उस करवट घूमा, और ठंढा पड़ गया। करोड़पति हतज्ञान-सा खड़ा रहा। पिस्तौल से एकाएक होनेवाले इतने भयानक परिणाम की उसे आशा न थी। किसी जादू के ज़ोर से यह सब हठात् हो गया। कोई भी दुर्घटना क्षण-भर में ही घटित होती है, और मानव यह सोच भी नहीं पाता कि यह सब कैसे हो गया। करोड़पति कुछ देर अकचकाया-सा खड़ा रहा, और उसने परिस्थिति की गंभीरता का अनुभव किया—अब वह एक खूनी था, और खूनी को फाँसी पर लटकना होता है।

रात का समय था, नौ बज रहा था। लीला अपने कमरे में लेटी थी कि पागल की तरह करोड़पति एकाएक भीतर घुसा। वह काँप रहा था। लीला खाट से उछल पड़ी, उसने किसी संकट की कल्पना की। करोड़पति ने आते ही लीला से कहा—"मेरी रक्षा करो लीला, मैं······मैंने खून किया है।"

लीला चिल्लाई—"खू········।"

'न' उच्चारण करने के पहले ही करोड़पति ने उसका मुंह कसकर बंद कर दिया। एक मिनट में करोड़पति ने लीला को बतला दिया कि उसने कहाँ और कैसे खून कर दिया।

लीला का हृदय घबरा उठा, वह सोचकर बोली—"तुम बगलवाले कमरे में चुपचाप रहो। बाबा को खबर देती हूँ।"

करोड़पति बोला—"पैरों पड़ता हूँ लीला, मेरे लिये संसार में भी जगह नहीं है। फाँसी की रस्सी मानो मुझे खदेड़ रही है। तो ऐसा लगता है कि वह रस्सी साँप की तरह बल

खाती हुई पीछे-पीछे दौड़ रही है। मेरी रक्षा करो, मैंने बड़ी भूल की थी।"

लीला बोली—"चुप रहो, उस कमरे में जाओ।"

लीला ने उठकर दरवाज़ा बंद कर दिया। करोड़पति फिर बोला—"पुलिस आएगी, जेल में बंद होना पड़ेगा, फिर फाँसी, फाँसी लीला !!!"

लीला अजीब मुसीबत में फँस गई। करोड़पति को वह कपड़े बदलनेवाली छोटी कोठरी में बंद करती, और वह फिर बाहर निकल आता। उसके सिर पर खून सवार हो गया था, उसकी मानसिक अवस्था बिलकुल ही चंचल थी। लीला का घबराहट से मुंह सूख रहा था। वह कभी पसीना पोंछती, तो कभी पानी पीती। करोड़-पति के प्रति उसका जो रोष था, वह कहाँ ग़ायब हो गया, इसका पता नहीं। अब लीला इसी चिंता में पड़ी कि वह कैसे उस पापी को फाँसी से बचावे।

कुछ देर बाद फिर करोड़पति कोठरी से बाहर निकला, और बोला—"लीला, मैंने जान-बूझकर खून नहीं किया, पिस्तौल चल गई, और एक व्यक्ति मर गया। मरने दो—बाहर पुलिस तो नहीं है ? फाँसी ...... भयानक कष्ट।"

लीला ने फिर पकड़कर करोड़पति को बंद कर दिया। वह किवाड़ पीटता हुआ कोठरी के भीतर से बोला—"मुझे डर लगता है लीला, खोलो .....।"

लीला धीरे से बोली—"ईश्वर के लिये चिल्लाओ मत। अपने साथ मुझे भी जेल में बंद कराओगे क्या ?"

करोड़पति ने कहा—"लीला, यहाँ जो शीशा है, उसके भीतर से एक भयानक मूर्ति झाँक-झाँककर देखती है। मैं डर से काँप रहा हूँ। दरवाज़ा खोलो।"

लीला ने सिर पीट लिया। वह गिड़गिड़ाकर बोली—"पागल तो नहीं हो गए, शीशे के भीतर से कौन झाँकेगा।" उफ़्। अब क्या उपाय करूँ। इसका दिमाग़ ही खराब हो गया है।

अंदर से करोड़पति ने कहा—"पुलिस आवे, तो उससे कह देना कि यहाँ कोई नहीं है। वह अंदर आने का हठ करे, तो.....।"

लीला दाँत पीसकर बोली—"चुप भी रहो। क्यों बावैला मचा रक्खा है।"

करोड़पति ने कराहकर जवाब दिया —"क्षमा करना, अब नहीं बोलूंगा। किंतु लीला, वह लंबा-तगड़ा जवान एक मिनट में गिरकर मर गया। अचरज की बात है, बहुत अचरज की।"

लीला चुप हो गई। वह केवल सुनती रही, बोलने से करोड़पति बोलने को और भी उत्साहित होता। लीला ने घड़ी देखी, तो एक बज रहा था। घटाएँ घिर आई थीं, और ज़ोरदार वर्षा भी शुरू हो चुकी थी। लीला का कलेजा धक्-धक् कर रहा था। प्रत्येक ऐसे शब्द से, जो बाहर से आता था, वह पुलिस के आने का अनुमान करती थी। मोटर के हॉर्न की आवाज़ कानों में पड़ते ही उसे सनाका मार जाता था—आ गई पुलिस। जो भी हो, लीला के शरीर में एक स्त्री का हृदय था, और वह हृदय जानते या अनजानते कभी-कभी अपना काम करता ही रहता था। करोड़पति की नीचता तो ऐसी थी कि लीला अपने हाथों से भी उसका खून कर देती, तो कोई दोष न था, किंतु उस संकट-काल में लीला सब कुछ भूल गई, और प्राणप्रण से करोड़पति की रक्षा करने में ही लगी रही। उसके हृदय में जो आहत और कुचला हुआ प्रेम था, उसने अपना असर पैदा किया। एक दिन लीला ने जिसको प्यार किया था, जिस मूर्ति की उसने पूजा की थी, उसे अपने ही सामने चूर-चूर होते देखने को वह तैयार न थी—नारी-हृदय के रहस्यों को समझना असंभव है।

घड़ी ने दो बजने की सूचना दी। लीला उसी कोठरी के दरवाज़े पर बड़ी-सी कुर्सी पर लेट कर आँखों-ही-आँखों में रात काट रही थी। वह सोच रही थी — सबेरा होते ही भवानी बाबू को बुलवाकर करोड़पति की रक्षा की व्यवस्था का भार सौंपना ही उपयुक्त होगा।

ठीक दो बजे रात को अंदर से करोड़पति चिल्लाया—"बचाओ, वह फिर झाँक रहा है।"

इसके बाद ही गोली चलने की आवाज़ आई, और फिर शीशा फूटने की तीखी झनझनाहट।

गोली चलने की आवाज़ से कोठी का प्रत्येक व्यक्ति जाग उठा। डाकू का संदेह हुआ, और जॉर्ज साहब तकिए के नीचे से भरी हुई पिस्तौल लेकर बाहर निकले। रानी चिल्लाकर मूर्छित हो गईं। खैरियत यह थी कि माली और दरबान दूर पर थे। वहाँ तक यह तूफान नहीं पहुँचा।

लीला चीख उठी—"अरे, यह क्या हुआ।"

उसने किवाड़ खोलकर देखा, कहीं करोड़पति ने आत्मघात तो नहीं कर लिया। वह नहीं जानती थी कि उसके पास वह भरी हुई पिस्तौल है, जिससे उसने खून किया था।

लीला ने व्याकुल आँखों से देखा, पिस्तौल लिए करोड़पति खड़ा-खड़ा काँप रहा है, और जो सामने कीमती शृंगारदान था, उसका बेलजियम का शीशा चूर-चूर होकर फ़र्श पर बिखरा हुआ है।

जॉर्ज साहब बाहर दरवाज़ा पीटने लगे। लीला के लिये यह दोहरी मुसीबत थी। लीला को यह भय था कि कहीं पागल करोड़-पति अपनी भरी हुई पिस्तौल का उपयोग अपने ऊपर, उसी पर या उसके पिता पर न कर बैठे।

लीला ने क्षण-भर में करोड़पति की कोठरी के दरवाजे को बाहर से बंद कर दिया और फिर दौड़कर अपने कमरे का दरवाज़ा खोला।

घबराए हुए, हाथ में पिस्तौल लिए जॉर्ज साहब अंदर आए । लीला बाप से लिपट गई, और रोती हुई सारा किस्सा कह सुनाया ।

घबराकर जॉर्ज साहब फ़र्श पर ही बैठ गए, और बोले—"यह तूने क्या किया ।"

लीला सिर झुकाकर, पिता से सटकर बैठ गई—वह मानो बेहोश होना चाहती थी ।

अवसर और लाभ

छक्कन के मारे जाने का समाचार जब भवानी बाबू ने सुना, तो उनकी बाछें खिल गईं। छक्कन शहर का कुख्यात गुंडा था। लूट, डाका, खून, चोरी उसका पेशा था—उसका गिरोह भी खतरनाक था। भवानी बाबू उसके रक्षक थे, और वह एक बार भी जेल नहीं गया। उसने जो भी अपराध किए सभी दबा दिए जाते थे। पुलिस का तो विशेष कृपापात्र ही था, और ऊपर की पैरवी भवानी बाबू के अधीन थी। यों तो भवानी बाबू या इनके जैसे प्रभावशाली महापुरुषों की दया से गुंडे और डाकू फूला-फला करते, और खून तथा डकैतियों का अंत नजर नहीं आता था, किंतु छक्कन तो भवानी बाबू का बिलकुल ही हृदय था अपने विरोधियों को भवानी बाबू इसी गुंडे की सहायता से यमलोक की हवा अनायास ही खिलवा देते थे। अचरज तो यह था कि बड़े लोगों का भी समर्थन छक्कन-जैसों को उपलब्ध था, जो जनसाधारण में आदरणीय कहे जाते थे।

छक्कन जब मारा गया, तो भवानी बाबू इसलिये प्रसन्न हुए कि करोड़पति का बाप ज़रूर दस-बीस हज़ार की गठरी खोलेगा—बेटे को तो वह बचाना ही चाहेगा

अपने कमरे म सामने 'विलायती परी' की एक चमकदार बोतल रखकर भवानी बाबू ने चंपा को बुलाया वह फुदकती हुई आई, और कुर्सी पर बैठ गई दो तीन पेग गले के नीचे उतारकर भवानी बाबू ने कहा—"कुछ सुना है चंपा, छक्कन मारा गया।"

चंपा ने अकचकाकर कहा—"हैं, मारा गया? किसने मारा?"

भवानी बाबू बोले—"करोड़पति ने गोली चला दी थी। तुम मि० करीम के यहाँ जाकर ऐसी व्यवस्था करा दो कि मामला तूल पकड़ जाय। मि० करीम चाहेंगे, तो सब हो जायगा।"

चंपा ने सोचकर कहा—"भैया, करीम बराबर नशे में रहता है, और .... ।"

"समझ गया।"—भवानी बाबू ने कहा—"मामला टेढ़ा है। मैं जाता मगर मुझे साहब के साथ टूर में जाना है कल संध्या-समय लौट सकूंगा।"

करीम एक भयानक आदमी था—स्वभाव से ही नहीं, देखने में भी। छः फ़ुट लंबा और तीन मन भारी। भूत-जैसी शकल तो थी ही, उम्र भी ५० से ऊपर ही थी। वह घोर शराबी और इतना अनाचारी था कि एक के बाद तीन बीवियों को जहन्नुम की हवा खिला चुका था। एक को तो उसने आग में जला-जलाकर मारा, और दो को ज़हर दे दिया। चौथी बीवी टी०बी०-अस्पताल में जिंदगी के अंतिम दिन की राह उत्सुकता-पूर्वक देख रही थी। अपनी दो छोटी-छोटी बच्चियों का गला उसने इसीलिये घोंट दिया था कि इस दुनिया में किसकी हिम्मत है, जो करीमहुसैन का दामाद बने।

वह पुलिस-विभाग का राक्षस कहा जाता था, जहाँ शृंगार करके चंपा को जाना था।

भवानी बाबू तो साहब की शानदार गाड़ी पर चढ़कर टूर पर चले गए, जहाँ उन्हें अनेक सभाओं में उच्च संस्कृति का संदेश अभागी जनता को देना था, और देश के जीवन-स्तर को ऊपर उठाने के लिये

योजना पेश करनी थी। इधर चंपा टैक्सी मँगवाकर मि० करीम के बँगले पर गई।

जैसा कि बराबर होता था, करीम साहब अपने तीन-चार जिगरी दोस्तों के साथ आराम से बैठे शराब के लुत्फ़ उठा रहे थे। चंपा दूसरे दरवाज़े से कोठी के भीतर घुसी। एक विश्वासी खानसामे ने आकर इशारे से साहब को शुभ संवाद दिया। बराबर का यही कायदा था।

करीम साहब ने कहा—"यहीं भेज दो।"

चंपा बनी-ठनी वहीं पहुँची, जहाँ दोस्तों के साथ करीम साहब झूम रहे थे। चंपा को देखते ही करीम साहब ने फ़रमाया—"आप तो मेरी पुरानी दोस्त हैं, फिर इतना तकल्लुफ़ क्यों करती हैं?"

चंपा ने अदा से सिर झुकाकर कहा—"जी, यों ही।"

करीम साहब ने पूरा ज़ोर लगाकर ठहाका मारा, और कहा—"दोस्तो, आजकल की इन परियों के नखरों के मारे तो मैं और भी तंग रहता हूँ। इन्हें ही देखिए न, बीसों बार आई-गई, मगर आज घूंघट काढ़े बैठी हैं।"

इतना कहकर करीम साहब ने चंपा का हाथ पकड़ा, और खींचकर अपनी बगल में बैठा लिया। वह घबरा गई, जो वाजिब भी था।

एक शराबी दोस्त ने एक गिलास शराब भरकर, चंपा के होठों में लगाकर कहा—"लीजिए, मेरी जान।"

चंपा को जैसे सनाका मार गया—अरे, ऐसा तो कभी नहीं होता था।

उसने झुंझलाकर गिलास को पीछे ठेल दिया, और कहा—"मि० करीम, यह क्या हो रहा है?"

करीम साहब फिर ठठाकर हँसे, और बोले—"वही हो रहा है, जिसकी तमन्ना आपके दिल में थी। लीजिए, और नखरे छोड़िए।"

करीम ने अपने दो गज़ लंबे, मोटे हाथ से चंपा को कसकर पकड़ लिया, और बल-पूर्वक दो पेग तेज़ शराब पिलाकर कहा—"कहिए, कैसा रहा ?"

चंपा क्या बोलती। वह तो चीख भी नहीं सकती थी। इसके बाद फिर करीम साहब ने गिलास में शराब ढालकर कहा—"मेरी रानी, अब अपने मन से पी ले।"

चंपा ने दोनो हाथों से करीम साहब को ठेलते हुए कहा—"रहम कीजिए। मैं जाना चाहती हूँ।"

करीम साहब ने फिर चंपा को कसकर पकड़ा, और तीसरी गिलास शराब उसके मुंह में उँडेलकर कहा—"यह औरत भी अजीब है। तीन गिलास पी गई, मगर नशे का नाम नहीं।"

चंपा का सिर घूम रहा था—नशा, अपमान और भय के मारे। वह छूटने के लिये हाथ-पैर मारने लगी, तो करीम साहब ने उसे सोफ़े पर से फ़र्श पर ढकेलते हुए कहा—"कमीनी औरत, तू जानती नहीं कि मैं कौन हूँ ? सीधी तरह बैठ, नहीं तो बेंत से मार-मारकर हलाल कर दूंगा।"

तेज़ नशे ने चंपा को बेहोश कर दिया था। वह औंधे मुंह फ़र्श पर पड़ी ही रह गई। करीम साहब ने पुकारा —"कल्लू।"

एक ठिगना-सा, मोटा व्यक्ति आया, जो हाथ में एक लंबा-सा छुरा लिए हुए था। करीम साहब बोले—"अबे, छुरा लिए क्यों आया ?"

कल्लू ने कहा—"हुज़ूर, कीमा बना रहा था।"

करीम साहब ने हुक्म दिया—"इस औरत के सिर पर तीन-चार बालटी पानी डालो।"

कल्लू ने चम्पा का झुक कर कन्धा हिलाया और कहा—"अरे उठ, चल भी।" चम्पा नहीं उठी, तो करीम साहब ने दूसरा आर्डर दिया—"अबे, मरे हुए कुत्ते को जिस तरह डोम घसीटतें हैं

उसी तरह इसकी एक टांग पकड़ कर घसीट। जब होश में आ जाए, तो यहाँ हाजिर कर।"

कल्लू ने चम्पा को पीठ पर एक धौल जमा कर कहा—"अजीब मक्कार है।" इसके बाद उसकी एक टांग पकड़ कर घसीटना शुरू कर दिया।

चम्पा की चेतना लौट आई, और वह चिल्लाई—"छोड़ दो, यह क्या करते हो।"

अपने मित्रों के साथ करीम साहब तालियाँ बजा-बजा कर हंसने लगे। चम्पा कांपती हुई उठ बैठी। करीम साहब ने कहा—"इस तरह भी रूठा जाता है जानेमन। यह लीजिए जान हाज़िर है।

चम्पा को पकड़कर करीम साहब ने फिर अपने एक मित्र के बगल मे बैठा दिया। उस मित्र ने भी जैसे-तैसे चम्पा को एक गिलास शराब पिलाकर कहा—"अजी, आप भी बहुत बनतीं हैं। नई दुनियां का तो यह स्लोगन ही है कि खाओ-पिओ मौज करो। आप भी बाबा आदम के वक्त की तहज़ीब ढो रही हैं—लाहौला।"

चम्पा मैदान के फुटबाल की तरह कभी इस दोस्त के बगल में तो कभी उस शराबी की गोद में लुढ़कने लगी। शराबियों को बड़ा आनन्द आया। ज्यों-ज्यों रात खिसकती जाती, शराबियों का सुर बढ़ता ही जाता। कुछ ही देर में चम्पा पूरी तरह बेहोश हो गई—शराब के नशे में।

दूसरे दिन जब चम्पा की चेतना लौटी, तो उसने अपने को अस्पताल के एक कमरे में पाया। दो-तीन डाक्टर जो भवानी बाबू के जूतों के दास थे, घबराए हुए चम्पा के देख-भाल में तत्पर थे।

चम्पा को पीछे पता चला कि पुलिस उसे अस्पताल पहुंचा आई, और यह रिपोर्ट लिखा दी गई कि यह औरत शहर के बाहर अमुक स्थान पर बेहोश पाई गई।

जहाँ चंपा को बेहोशी की हालत में पुलिस ने पाया था, वह

स्थान करीम साहब की कोठी से तीन-चार मील दूर था। वहाँ एक शराबखाना था, और आजकल की भाषा में पतित बहनों का अखाड़ा भी।

चंपा के शरीर में यदि ताकत होती, तो वह ज़रूर अस्पताल के ऊपर से कूदकर जान दे देती।

चंपा ने पुराने दकियानूसी युग के विरोध में यह एक क्रांति की थी। कभी जब नए युग के पुजारी इतिहास लिखने बैठेंगे, तो चंपा का नाम नया युग लाने के लिये जिन लोगों ने आत्मविसर्जन किया था, उन्हीं के साथ लिखेंगे। यह तो दुर्भाग्य की बात थी, जो चंपा के महत्त्व को उन पढ़े-लिखे अप-टु-डेट डॉक्टरों ने भी नहीं समझा, और वे कानाफूसी करने लगे।

एक-दो दिन में ही चंपा के मन का विषाद मिट गया। वह घर लौटी, और पूर्ण गौरव के साथ पद्मा के यहाँ भी गई।

भवानी बाबू भी देश में जोश फैला कर जब लौटे, तो उनके साथ एक हुजूम आया—सभी तबके के लोग थे। दरबार गरम हो गया, और काग़ज़ के चीथड़ों की तरह नोटों की वर्षा होने लगी। भवानी बाबू यही कहते जाते थे कि—"भाई, इतनी रकम क्या अकेला मैं ही चाट जाता हूँ। बड़े-बड़े लोग हैं, सबको खुश रखना पड़ता है।"

पूछने पर चंपा ने कह दिया—"मैं एकाएक बीमार हो गई। मि० करीम के यहाँ नहीं जा सकी।"

भवानी बाबू की त्योरियाँ चढ़ गईं। कहने लगे—"अपने मन से उसकी कोठी पर छिप-छिपकर जायगी, मगर एक बार जब मैंने कहा, तो नानी मर गई। मैं सब समझता हूँ।"

चंपा बोली—"भैया, मैं मरकर बची, आप इतना ही जानिए। अगर शरीर ठीक रहता, तो एक बार क्या, बीस बार जाती।"

भवानी बाबू नरम पड़कर बोले—"तू समझती नहीं। मामला किसी दूसरे के हाथ में चला जायगा, तो फिर पछताना होगा।"

चंपा ने कोई जवाब नहीं दिया, तो भवानी बाबू ने चंपा की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"आज तबीअत कैसी है ? अभी समय है । अगर आज भी जाकर काम बना ले, तो पंद्रह हज़ार ...... ।"

"चूल्हे में जायँ पंद्रह हज़ार ।"—चंपा ने रोदन-मिश्रित स्वर में कहा, और वह उठकर दूसरे कमरे में चली गई ।

भवानी बाबू की समझ में यह रहस्य नहीं आया । वह अकचकाये से उस तरफ़ देखते रह गए, जिधर चंपा गई थी ।

भवानी बाबू अपने दरबार में आकर बैठ गए । बीसों व्यक्ति बैठे थे, और दरवाज़े पर आठ-दस मोटरें भी चकाचौंध पैदा कर रही थीं जो बैठे थे, वे भी साधारण व्यक्ति नहीं थे—धनी, मानी, विद्वान्, सुधारक, नेता, सभी आचार-विचार और संस्कार के पुरुषों का मेला-सा लगा हुआ था । भवानी बाबू झूमते हुए जैसे ही दरबार में आए, सभी आदर से उठ खड़े हुए । जिसकी ओर भवानी बाबू की निगाह घूम जाती, वह हाथ जोड़े खड़ा हो जाता । बिलकुल ही मुग़ल बादशाह-जैसी शान थी । एक-एक, दो-दो शब्द बोलकर उन्होंने सबको टहला दिया । जो एक-दो व्यक्ति बच गए, वे भवानी बाबू के अंतरंग मित्रों में से थे ।

विपुल गौरव और सम्मान में भूले हुए कभी भवानी बाबू ने यह नहीं सोचा कि वह किधर जा रहे हैं, और अपने साथ अभागे साहब को भी घसीटे लिए जा रहे हैं । जिस तरह फूलों से ढके हुए मुर्दे की दयनीयता बाहर नहीं नज़र आती, उसी तरह भवानी बाबू की भी मानसिक दरिद्रता और हेयता नज़र नहीं आती थी ।

चंपा ने भी रोशनी की जगमगाहट में अपने सच्चे रूप को कभी नहीं देखा ।

भवानी बाबू की पत्नी अपढ़ और गँवई-गाँव की एक फूहर औरत थी, पर थी रूपवती । उन्होंने सोचा, यदि इसे भी आधुनिकता की रोशनी दिखा दी जाय, तो चंपा पर ही निर्भर रहना नहीं पड़ेगा ।

पर यह काम था ज़रा कठिन, किंतु भवानी बाबू के लिए संसार म कुछ भी कठिन न था। जो डाकू और संत, दोनो का विश्वास प्राप्त कर सकता है, जो खून और ज़हरखोरी करके भी अपने नेतृत्व को चमकाए रख सकता है, जो रात-दिन दलाली और खुलकर घूसखोरी करता हुआ भी बड़े लोगों की पूजा प्राप्त कर सकता है, जो धोखा और विश्वासघात करके कितनों का गला काट सकता है, जो एक साथ ही गो-रक्षिणी और कसाईखाना, दोनो का संचालन कर सकता है, उसके लिए कौन-सा काम असंभव है।

भवानी बाबू के लिए कोई भी कर्म बर्जित न था, और न कुछ भी कर गुज़रना ही असंभव था। वह खून-पर-खून करवा कर भी अहिंसावतार ही कहे जाते थे, बिना पशु-भेद के मांसादि खाकर भी उच्च आसन पाने के अधिकारी माने जाते थे, तथा पैसा के लिए अपने देश तक को बेच देने की जिनमें हिम्मत थी, वह आधुनिक युग के अग्रदूत कहकर ही पुकारे जाते थे। खैरियत यही थी कि उनका प्रभाव अपने ही इलाके तक था—कहीं विश्वव्यापी होता, तो संसार का क्या रूप होता, यह सोचते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

अचरज की बात तो यह है कि ऊँची कुर्सियों पर अधिकार-पूर्वक बैठनेवाले और सड़कों पर मारे-मारे फिरनेवाले—दोनो ही भवानी बाबू को मसीहा मानते थे।

वह जिस पर नाराज़ हो जाते थे, उसका सत्यानाश होते देर नहीं लगती थी। मि० करीम पर एक बार नाराज़ हुए, तो उसकी नौकरी जाते-जाते तो बची, मगर तीन साल के लिए पदोन्नत्ति रुक गई। जब किसी तरह उसे इसका पता चल गया, तो उसने भी मूछों पर ताव देकर कहा—"अच्छा, कभी-न-कभी समझ लूंगा।" चंपा की जो उस दिन दुर्गति हुई, उसके भीतर यही रहस्य छिपा था।

करीम ने जी भरकर बदला वसूल किया। जब उसने चंपा को

अपने गुणों का परिचय दे दिया, तो जोश ख़त्म हो जाने के बाद भयभीत हो गया। भवानी बाबू की भयानकता का वह सताया हुआ था ही।

करीम ने मन-ही-मन कहा—"अगर उसने फिर मेरे ऊपर हाथ उठाया, तो एक दिन बच्चू को खुली सड़क पर गोली मार दूंगा, और जेल चला जाऊँगा। बहुतों का खून उस घड़ियाल ने पीया है, सबका बदला मैं ही वसूल करूँगा।"

भवानी बाबू की पत्नी का नाम था तो बुधिया, किंतु उन्होंने ऐसे भद्दे नाम को बदल दिया था। नाम म्यान की तरह होता है, जिसके भीतर तलवार होती है। तलवार चाहे उतनी पानीदार न भी हो, किंतु म्यान तो सुंदर होनी ही चाहिए। बुधिया नाम बदलकर रक्खा गया। मिथिलेंद्रकुमारी। निश्चय ही बुधिया अपने इस नाम का शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकती थी। वह संक्षेप में अपने को कुमारी ही कहा करती थी। चंपा ने प्रयास करके अपनी ख़ूबसूरत भाभी को अक्षर-ज्ञान करा दिया था। अब वह संगीत स्वर में किस्सा तोता-मैना और सारंगा-सदावृक्ष पढ़ लिया करती थी। भवानी बाबू कहते थे, यदि कॉमनसेंस विकसित हो जाय, तो पढ़ने-लिखने की कोई ज़रूरत नहीं। यह कॉमनसेंस का विकास तो घर से बाहर ही हो सकता है, कोठे में कैद रहने से नहीं। हर जगह जाना और तरह-तरह के लोगों से मिलना, उनको समझना और अवसर की ताक में रहकर अपना उल्लू सीधा करना—भवानी बाबू के विचार से यही कॉमनसेंस था।

चंपा ने अपनी भाभी के सामान्य ज्ञान की वृद्धि के लिए काफ़ी प्रयास किया। स्त्रियों में तो यों भी सामान्य ज्ञान का अभाव नहीं होता—ज़रा-सा सहारा या अनुकूलता प्राप्त होते ही यह ज्ञान प्रलयंकर रूप धारण कर लेता है।

कुमारी हाथ-भर का घूंघट निकालकर सबसे पहले साहब की सेवा

में चंपा के साथ हाजिर हुई। साहब ने अपन हाथों से उसका घूंघट खोला, और कहा—"भवानी मेरा छोटा भाई है।"

कुमारी रूपवती तो थी ही। २५-३० साल की होने पर भी षोडशी ही जान पड़ती थी। साहब प्रसन्न हुए, और उन्होंने मन-ही-मन कहा—"साला भवानी भी बड़ा भाग्यवान् है, एक मैं हूँ, जो .. राम-राम।"

इसके वाद उन्होंने अपने हाथों से कुमारी के गले में सोने का एक दमकता हुआ हार पहना दिया, और दुलार से पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"यह तुम्हारा ही घर है। जब जी चाहे आना, और जिस चीज़ की ज़रूरत हो, विना संकोच कह देना।"

चलते समय साहब ने कुमारी के हाथ में नकद भी कुछ दिया, जो काफ़ी से भी अधिक था।

कुमारी पछताई कि वह इतने दिनों तक घर में क्यों छिपी बैठी रही। चंपा का सुख-सौभाग्य कुमारी के दिल में काँटे की तरह चुभा करता था। वह लाचार थी। जब उसने भी घूंघट उघारकर रंगीन दुनिया को देखा, तो उसका रोमरोम बिहँस उठा—वाह, यह दुनिया कितनी मज़ेदार है।

दो-चार महीने की ही ट्रेनिंग ने कुमारी को चमका दिया। वह बंगालिनों की तरह साड़ी पहनना भी सीख गई, और चोटी में रिबन लगाने का अंदाज़ भी उसे चंपा ने बतला दिया। अब वह बुधिया नहीं रही, गाँव की वह गँवार औरत नहीं रही—वह देखते-देखते शहर की नवेली बन गई, जिनके पैर धरती पर और दिमाग़ सातवें आसमान पर रहता है। कुमारी ने धीरे-धीरे शहर के सभ्य-समाज में अपना विशेष स्थान बना लिया—एक साल में ही उसने सौ साल का रास्ता तय कर लिया। ज्यों-ज्यों कुमारी ऊपर उठती गई, उसी अनुपात से चंपा नीचे धँसती चली गई। तराज़ू के दो पलरे होते हैं—एक पलरे पर ज्यों-ज्यों वज़न पड़ता जायगा, दूसरा पलरा ऊपर

उठता जायगा। यह साधारण-सी बात है, किंतु मानव के संबंध में यह सिद्धांत उलट गया है। हलका पड़कर ही व्यक्ति नीचे धँसता है, शायद मानव का आकाश नीचे और धरती ऊपर है, सिर के ऊपर।

चंपा को अपना यह हुक्म नहीं अखरा, क्योंकि वह मन-ही-मन अपने जीवन-क्रम से बेतरह ऊब उठी थी। हाँ, ज्वलनशील स्वभाव की होने के कारण कभी-कभी चंपा का हृदय अपनी भाभी के महत्त्व को देखकर जल उठता था। अब वह गाँव की भाषा न बोलकर शानदार ढंग से राष्ट्रभाषा ही बोलती थी, और बात-बात में कहती थी—"कौन है हमारा मुकाबला करनेवाला, जिसे हम चाहें, जहन्नुम भेजवा सकती हैं। लाख-दो लाख तो हमारे जूतों की ठोकरों से इधर-उधर होते रहते हैं।" कुमारी तित करैली तो जन्म से ही थी, साहब की दया से वह नीम पर भी चढ़ गई। भवानी बाबू अपनी पत्नी के इस अद्भुत विकास की ओर देखते, तो आनंद से उनका हृदय गुलाब की तरह खिल उठता। उन्होंने अपने साथ ले जाकर और उपदेश के द्वारा कुमारी को पक्का बना दिया।

जो कायर होता है, मूर्ख और आलसी होता है, वह अनुकूल अवसर प्राप्त होने की प्रतीक्षा करता और दुःख भोगता है। भवानी बाबू ऐसे गंदे और अपाहिज लोगों में नहीं थे। वह जानते थे, कैसे तिकड़म पसारा जा सकता है, कैसे परिस्थिति पैदा की जा सकती है। गाय दुहनेवाला केवल दूध प्राप्त करता है, किंतु जो सुअवसर का दोहन करता है, वह रत्नों का अंबार लगा देता है। भवानी बाबू सुअवसर का दोहन करना यदि न जानते होते, तो कुमारी को कर्म-क्षेत्र में न उतारते, और न चंपा को अप-टु-डेट बनाकर नारी-समाज में नई क्रांति की जान डालने का शुभ कर्म करते।

भवानी बाबू कहा करते थे—"युग की पुकार सुनो। अब माताओं

का विकास हो नहीं सकता। राष्ट्र-निर्माण में महिलाओं को आगे बढ़कर हिस्सा लेना चाहिए।"

जाहिर है कि चंपा ने अपने भाई के इस उपदेश को हृदयंगम तो किया ही, कुमारी भी राष्ट्र-निर्माण में योग देकर देश की बुराइयों का इस छोर से उस छोर तक सफाया करने में जुट पड़ी।

भवानी बाबू का मन संतुष्ट तब होता, जब वह एक हजार बहनों के भाई और एक लाख पत्नियों के पति होते। ये सभी देवियाँ देश के मान को ऊपर उठाने में उसी तरह लगी होतीं, जिस तरह चंपा लगी थी, और कुमारी लगने ही वाली थी।

अवसर पैदा करना और उससे लाभ उठाना भवानी बाबू के लिये बाएँ हाथ का खेल था—ऐसे अतिमानव युगों क बाद ही किसी देश में पधारते हैं।

अब भवानी बाबू का घर पूरी तरह अप-टु-डेट बन गया। उनके घर से अंतःपुर-नामक स्थान का पूर्णतः जब ह्रास हो गया, तब उन्होंने अघाकर साँस ली। उनका सारा घर बैठकखाना बन गया। किसी के लिये भी कहीं रोक टोक नहीं रही।

यह एक क्रांतिकारी सुधार था, जिसे भवानी बाबू ने कह ही डाला। शहर में दो ही सच्चे क्रांतिकारी रहते थे—जॉर्ज साहब और भवानी बाबू। इन दो युग-पुरुषों ने देश को नए साँचे में ढालने का प्रयास जी भरकर किया।

निशानेबाज

जॉर्ज साहब ने अपनी बिखरी हुई चेतना को पूरा जोर लगाकर
ा। जब वह कुछ स्वस्थ हुए, तो बोले—"लीला, यह तूने क्या किया ?"

लीला ने कोई जवाब नहीं दिया। वह सिर झुकाए खड़ी रही। उधर करोड़पति कमरे का दरवाजा पीट रहा था, जो बाहर से बंद था। किसी में साहस न था कि जाकर दरवाजे की कुंडी खोलता। करोड़पति खूनी था। उसके पास एक भयानक अस्त्र भी है, यह जॉर्ज साहब और लीला को मालूम हो गया था। करोड़पति ने ठीक पागल की तरह शोर मचाना शुरू किया, तो जॉर्ज साहब बहुत व्याकुल ए। उन्होंने अनन्योपाय होकर दरवाजा खोल देना चाहा, तो लीला ने आगे बढ़कर कहा—"मैं खोलती हूँ, तुम मत जाओ पापा !"

कन्या को पिता की रक्षा करने की चिंता थी, और पिता को कन्या की। अंत में यही तय हुआ कि जॉर्ज साहब ही दरवाजा खोलें। यदि करोड़पति हमला करना चाहे, तो जॉर्ज साहब भी भिड़ जायँ, क्योंकि इनके हाथ में भी भरी हुई जर्मन-पिस्तौल थी।

इसी सोच-विचार में कुछ देर लगी। करोड़पति ने अधीर होकर और भी जोर-जोर से चीत्कार करना शुरू किया। रानी भी डरने लगी।

यह एक नई मुसीबत थी। जॉर्ज साहब ने रानी को सँभालने का भार लीला को सौंपा, और खुद दरवाज़ा खोलने गए। हिम्मत नहीं होती थी कि कुंडी खोलें। बार-बार हाथ बढ़ाते और खींच लेते थे—उनके लिए कुंडी ज़हरीला साँप बन गई थी, जिसे स्पर्श करना बड़े साहस का काम था।

करोड़पति का ऊधम बढ़ता ही गया। जॉर्ज साहब ने कहा—"तुम चुप क्यों नहीं रहते। इतना शोर मचाओगे, तो पुलिस आ जायगी।"

करोड़पति बोला—"तुम कौन हो जी ?"

जॉर्ज साहब ने शान से जवाब दिया—"मैं ?, मैं हूँ मिस्टर जे० पी० सिंह।"

करोड़पति ने भीतर ही से कहा—"मेरा दम घुट रहा है। इस कमरे में भूत भी है, छक्कन का भूत। जल्दी दरवाज़ा खोलो।"

जॉर्ज साहब ने धीरे से कहा—"पागलपन मत करो। आराम से छिपे रहो।"

करोड़पति चिल्लाया—"खोलो, खोलो—देखो, वह काला-कलूटा छक्कन। अरे बाप रे, यह कौन आ रहा है।"

इसके बाद कोठरी के अंदर फिर पिस्तौल चली, तो जॉर्ज साहब ने समझ लिया कि करोड़पति ने कहीं आत्मघात तो नहीं कर लिया। उन्होंने दरवाज़ा खोल दिया। दरवाज़ा खुलते ही जैसे जंगली जानवर उछलता हुआ भागता है, उसी तरह करोड़पति बेतहाशा भागा। उसके धक्के को जॉर्ज साहब सँभाल न सके, और धड़ाम् से गिरे, पिस्तौल छिटक कर दूर जा गिरी। करोड़पति उछलकर दूसरे कमरे में आया, और लीला से टकराता हुआ छलाँग मारकर बाहर निकल गया। लीला भी गिरी।

जॉर्ज साहब का सिर फूट गया था—वह बुरी तरह फ़र्श पर लोट रहे थे। लीला ने समझा कि उसके बाबा को करोड़पति छुरा भोंककर

भाग गया। संभव है, उसके पास छुरा भी हो—गुंडे का क्या विश्वास।

लीला ने पिता को सँभालकर उठाया। उनका बिना बालोंवाला सिर फूट गया था—कुर्सी से टकराकर।

जिस कोठरी में करोड़पति बंद था, उसकी दशा भी विचित्र ही थी। सभी कपड़े फटे-चिटे थे, और कीमती शृंगारदान का शीशा चूर-चूर हो गया था। करोड़पति के दिमाग़ का संतुलन नष्ट हो चुका था। उसने जितना भयानक कांड किया था, उसका झटका करोड़पति का दिमाग़ सँभाल नहीं सका, और उसके तार-तार बिखर गए।

करोड़पति भागता हुआ जंगल में घुसा, और वहाँ से किधर ग़ायब हो गया, किसी को भी पता न चला।

जॉर्ज साहब ने संतोष की साँस ली, और कहा—"चलो, संकट दूर हो गया।"

लीला का कलेजा धक्-धक् कर रहा था, किंतु पिता के संतोष ने उसे भी काफ़ी राहत पहुँचाई।

जॉर्ज साहब ने कहा—"विलायत में ऐसा कांड रोज़ होता है। वहाँ इसे कोई महत्त्व नहीं देता, मगर यहाँ की पुलिस दौड़ लगाना शुरू कर देती है। विलायत की पुलिस के सामने बड़े-बड़े मूल्यवान् सवाल रहते हैं, ऐसी छोटी-मोटी बातों पर दिमाग़ लगाने की उसे फ़ुर्सत ही कहाँ रहती ह।" रानी ने समझदार की तरह सिर हिलाकर कहा—"यह तो देश का दुर्भाग्य है, जो यहाँ चाय क प्याल म तूफ़ान उठा करते हैं।"

जॉर्ज साहब ने कपड़े बदलकर अपना पुष्पक-विमान निकाला, और भवानी बाबू के घर की ओर प्रस्थान किया, जहाँ छोटा-मोटा मेला ही लगा हुआ था। उनके दरवाज़े से आरंभ करके ऊपर मंज़िल के कमरे तक भीड़ भरी थी। कंधे छिल रहे थे। भवानी बाबू अपने कमरे में इस शान से बैठे थे, मानो किसी राज्य के कोई मान-

नीय मंत्री बैठे हों। दो-दो स्टेनो नोट-बुक लिए डिक्टेशन ले रहे थे, चार-चार सेक्रेटरी भीड़ को सँभाल रहे थे। फ़ाइलों का अंबार लगा था, पूरा सेक्रेटरियट का नज़ारा था। एक कोने में दो टाइपिस्ट भी मशीन खटखटा रहे थे। भवानी बाबू दो-दो शब्द बोलकर मुलाकातियों को बिदा करते जाते थे—अदब से सलाम करके लोग बिदा होते थे।

कुमारी अपने महाशक्तिमान् पतिदेवता की महिमा देख-देखकर घर में नाचती फिरती थी। उसने नौकरों से कह दिया था—"मालिक को साहब कहा करो।"

ठीक इसी तर्ज़ पर मेम साहब नाम भी नौकरों ने आप-से-आप रख लिया। भवानी बाबू चुप रहकर एक व्यक्ति की बातें सुनते जाते, और अंत में अपने सेक्रेटरी से कहते—"नोट कर लो, इनका काम एक्साइज़-विभाग का है। तारीख दे दो २२ मार्च।"

इसके बाद वह कहते—"२२ मार्च को आइएगा, काम हो जायगा"

दूसरे व्यक्ति का बयान सुनकर कहते—"सेक्रेटरी, नोट करो, इनका काम माइनर-एरिग्रेसन-विभाग से संबंध रखता है। तारीख दो २४ मई। तीसरे व्यक्ति की बारी आई। उसका काम ज़रा टेढ़ा था। फ़ौजदारी के एक गंदे मुकदमे में उसका भाई फँस गया था ? फ़ैसला अभी नहीं हुआ था। भवानी बाबू ने पैरवी का भार स्वीकार कर लिया, और आदेश दिया—"एक नई टैक्सी और दस टिन ५५५ नम्बर सिगरेट की जल्द लाइए। अभी चलकर फ़ैसला रुकवाना होगा। हाकिम बड़ा सख्त है। बिना सज़ा किए नहीं मानेगा। सेक्रेटरी बाबू से बात कीजिए।"

अलग ले जाकर सेक्रेटरी बाबू ने मामला सीधा कर लिया, और अपने मालिक से कहा—"हुजूर, राज़ी हैं।"

भवानी बाबू बोले—"ठीक है। आज रात को पार्टी होगी। खर्च आप जमा करा लीजिए।"

वह आतुर व्यक्ति बोला—"कितना खर्च देना होगा हुजूर ?"

भवानी बाबू ने कहा—"सेक्रेटरी से बात कीजिए ।"

चौथा आदमी आगे बढ़ा, जो ग़रीब था । भवानी बाबू गुर्राकर बोले—"यह भठियारखाना है क्या ? बाहर जाओ ।"

सेक्रेटरी साहब उस ग़रीब के पीछे लगे, और मामला तय हो गया। उसे अपने यहाँ कुआँ बनवाने के लिए सरकार से कर्ज़ लेना था ।

भवानी बाबू ने ऑर्डर दिया—"एकसठ नम्बर की फ़ाइल में इनका मामला दर्ज़ कर लीजिए । तारीख दीजिए ३ मार्च ।"

सेक्रेटरी ने डाइरी के पेज उलटकर कहा—"हुजूर को चार मार्च को स्कूल का उद्घाटन कराने जाना है, साहब के साथ । ५, ६, ७ और ८ मार्च को मदरास के राजनीकि पीड़ितों की सभा का सभापतित्व करना है, १२, १३, १४ मार्च को साहब के दौरे में साथ रहना है । हाँ, २० मार्च के बाद तीन दिन की छुट्टी है ।"

भवानी बाबू सिर पर हाथ रखकर बोले—"तबाह हो गया । जब सरकार का सारा करोबार मुझे ही करना है, तो फिर इतने मंत्री क्यों हैं ।"

जो-जो वहाँ बैठे थे, वे बहुत प्रभावित हुए, और सोचने लगे—यह भी सौभाग्य है, जो ऐसे प्रभावशाली महापुरुष का सहारा मिला ।

भवानी बाबू सुनाकर कहने लगे—"साहब ने तो और भी तबाह कर रक्खा है । फ़ाइलें भेजवा देते हैं, और कह देते हैं कि जिस फ़ाइल पर जैसा उचित समझो, ऑर्डर लिख दो, मैं तो दस्तखत करके ही छुटकारा पाना चाहता हूँ । आप लोग देखिए न, फ़ाइलों से घर भरा हुआ है ।"

एक सज्जन ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—"हुजूर का नाम जहान में रौशन है । कौन नहीं जानता कि आप ही सरकार चला रहे हैं ।"

भवानी बाबू बोले—"बार-बार मुझसे कहा जाता है कि मिनिस्टरी मंजूर करूँ, किंतु आज़ादी मुझे बहुत प्रिय है। मैं बाहर रहकर ही सरकार की सहायता करना उचित समझता हूँ।"

एक दूसरे दरबारी ने निवेदन किया—"ईमानदारी बहुत बड़ी चीज़ होती है। लोग मिनिस्टर बनने के लिए जान देते रहते हैं, और हुज़ूर को वह बोझ मालूम पड़ती है। यही तो ईमानदारी का सुबूत है।"

जॉर्ज साहब ने कमरे म प्रवेश किया। उनकी शकल देखते ही भवानी बाबू ने सोचा—यह कहाँ से साला आ मरा। यह काम का वस्त है; बहुत से आँख के अंधे और गाँठ के पूरे जुटे हुए हैं। जॉर्ज किस मतलब से आया ह।

जॉर्ज साहब कुर्सी पर बैठना ही चाहते थे कि भवानी बाबू ने रूखे स्वर में कहा—"अभी आप जाइए। रात को मुझे फ़ुर्सत रहेगी।"

इतना कहकर उन्होंने एक मोटी-सी फ़ाइल उठाई, और काग़ज़ उलटने लगे।

अपमान और क्रोध से जॉर्ज साहब तिलमिला उठे, और चुपचाप कमरे के बाहर निकल गए। जॉर्ज साहब के जाने के बाद भवानी बाबू ने कहा—"यह भी बड़ा मूर्ख है। पहले सेक्रेटरी से मुलाकात का टाइम ठीक कर लेता, तब आता।

जब भीड़ हट गई, तो भवानी बाबू ने कुमारी से कहा—"आज तीन हज़ार का सौदा हुआ। चंपा से यह बात मत कहना। वह बहुत छत्तीसी है। हाँ, यह बतलाओ कि आज साहब के यहाँ जाना है या नहीं?"

कुमारी बोली—"जाना तो है।"

भवानी बाबू ने कहा—"ठीक है। मैं दो काग़ज़ दूंगा। उन्हें दे देना, और कह देना कि फ़ाइल मँगवाकर इसी तरह का ऑर्डर कर दें। नई दोस्ती है, वह तुम्हारा कहा नहीं टाल सकते।"

कुमारी ने मामला समझ लिया, और कहा—"सेठ मँगनीराम का काम भी हो गया। कितना दिया उसने ?"

भवानी बाबू बोले—"पाँच हज़ार देनेवाला है, अभी तो कुछ दिया नहीं।"

कुमारी बोली—"धोखा तो नहीं देगा ?"

भवानी बाबू अपना पूरा रुपया वसूल कर चुके थे। यह तो चकमा-मात्र था। जिस व्यक्ति की सारी वृत्तियाँ टका बटोरने में लग जाती हैं, उससे शैतान भी हार मान जाता है। न ऐसा व्यक्ति अपने वंश-गौरव की ओर ध्यान देता है, और न मानवता की ओर। चाहे जिस उपाय से हो, पैसा बटोरना ही उसके जीवन का परम पुरुषार्थ बन जाता है—वह व्यक्ति किसी का भी अपना या हितू हो ही नहीं सकता।

भवानी बाबू पैसा बटोरने में मन-प्राण से लगे हुए थे, और इस पुनीत काम को अधिकाधिक सफलता-पूर्वक चलाने के लिए उन्होंने चंपा और अपनी पत्नी का भी उपयोग शुरू कर ही दिया था। वह चाहते थे, यदि दो-चार लड़कियाँ और कहीं से मिल जायँ, तो काम तेज़ी से चले।

ख़ून करवा देना और जहर दिलवा देना तो उनके लिए मामूली-सी बात थी। इतना करके भी भवानी बाबू ने भरपूर सम्मान पाया था, बड़े लोगों के विश्वास-पात्र थे, और एक-दो प्रभावशाली और समर्थ व्यक्तियों को उन्होंने बिलकुल ही मुरीद बना रक्खा था।

संध्या-समय दो सज्जन भवानी बाबू के यहाँ पहुँचे। उनका सत्कार खुद कुमारी ने विचित्र मादक शृंगार करके किया—वे दोनों आँखें फाड़-फाड़ कर कुमारी की ओर देखने लगे। कुमारी के हृदय में उन सजीले जवानों के इस तरह ताकने से लज्जा का नहीं, गुदगुदी का अनभव हुआ। अब घूंघट निकालनेवाली वह कुमारी नहीं थी। बाहर की हवा लग चुकी थी, और वह भी मन लगाकर स्त्री समाज

के भीतर जो पुराने कुसंस्कारों की गंदगी भरी थी, उसे मिटाने में तत्पर हो चुकी थी। उसने अपने कुसंस्कारों को तो मिटाया ही था, मुस्किराना, लचककर चलना आदि सबका अभ्यास कर लिया था। एकांत में दोनो सज्जनों ने भवानी बाबू से परामर्श किया। मामला यह था कि वे दोनो ऐसे गिरोह के संचालक थे, जिसका काम था लड़कियों और बच्चों को भगाना। लड़कियों को वेश्या-वृत्ति की शिक्षा देकर अप-टु-डेट बनाना तो एक उत्तम काम था; हाँ, लड़कों को वे पड़ोसी राज्य में बेच दिया करते थे, या पाकेटमारी की शिक्षा देते थे।

पुलिस की निगाह इस गिरोह पर पड़ी। इसके संचालक उक्त दोनों सज्जन भवानी बाबू की शरण में आए। उन्होंने दृढ़ता-पूर्वक वचन दिया—"डरने की कोई ज़रूरत नहीं। पुलिस अब नहीं बोलेगी"

लेन-देन की बात भी पक्की हो गई। भवानी बाबू ने काम कर डालने का बीड़ा हँसते-हँसते उठा लिया, तो उनमें से एक व्यक्ति ने कहा—"एक वार चलकर आप हमारे विधवाश्रम को भी पवित्र कीजिए।

भवानी बाबू ने कहा—"एक सभा की व्यवस्था कीजिए। वार्षिकोत्सव की तरह वह हो। मैं साहब से उद्घाटन करने के लिए कह दूंगा। सारा मामला सुधर जायगा।"

दोनों प्रसन्न हुए, और नोटों का एक पुलिंदा मेज़ पर रखकर बोले—"हम सदा खिदमत करते रहेंगे।"

भवानी बाबू ने कहा—"चार बोतलें शैंपियन की पहुँचा दीजिए। मैं तो शराब छूता तक नहीं किंतु इसकी ज़रूरत पड़ेगी।"

वे राज़ी हो गए। एक घंटे में शराब की चार नहीं, छः खूबसूरत बोतलें भवानी बाबू की सेवा में पहुँच गई—यह भी सैकड़ों रुपयों का लाभ हुआ।

कुमारी ने पूछा—"कितना मिला ?"

भवानी बाबू बोले—"अभी क्या मिलेगा ? काम बड़ा कठिन है ।"

कुमारी ने मान-भरे स्वर में कहा—"दिन-भर जो कलमुँहे भीड़ लगाये रहते हैं, वे क्या तुम्हारा दर्शन करने आते हैं जी ?"

भवानी बाबू ने कहा—"नहीं, तो और क्या ? तुम नहीं जानती, साहब ने अपना सारा जंजाल मेरे सिर पर ही लाद दिया है । उनके सेक्रेटरी वग़ैरह और क्लर्क भी यहीं आते हैं । सैकड़ों फ़ाइलों का पढ़ना, ऑर्डर डिक्टेट करना फिर मुलाकातियों से इंटरव्यू । मुझे तो साँस लेने की भी फ़ुर्सत नहीं रहती । अब साहब के साथ टूर भी करना पड़ता है । वह अकेले कहीं जाते ही नहीं । मैं कभी-कभी टाल देता हूँ, तो यहाँ पहुँचकर रोने-बिलखने लगते हैं । क्या करूँ, समझ में नहीं आता ।"

कुमारी का दिमाग़ सातवें आसमान पर तो था ही; आठवें और नवें आसमान पर अपने प्रबल पराक्रमी पति की बातें सुनकर चढ़ गया ।

शराब की बोतलें आलमारी में रखते हुए भवानी बाबू ने कहा—"यही लाभ रहा । पंद्रह दिन तो इनकी बदौलत आनंद रहेगा, फिर कोई-न-कोई साला मिल ही जायगा । अपना काम तो इसी तरह चलता है ।"

रात को भवानी बाबू साहब के बँगले पर पहुँचे, और विधवाश्रम-वालों की ऐसी पैरवी की कि उन्हें अभय-दान मिल गया । दो डकैतों की भी रक्षा का वचन मिल गया, एक नोट बनानेवाला भी साफ़ बच गया, और दो ऐसे सेठ भी त्राण पा गए, जिन्होंने सरकार के लाखों रुपए हड़प लिए थे ।

भवानी बाबू ने हिसाब लगाकर देखा, बीस हज़ार के लाभ का यह सौदा हुआ । वह आनंद से नाचते हुए लौटे, और जॉर्ज साहब की कोठी पर पहुँचे ।

जॉर्ज साहब अनमने-से बैठ थे। भवानी बाबू ने कहा—"उस दिन आपको मैंने बैठने ही नहीं दिया। साहब ने अपनी बहुत-सी ाइलें मेरे पास भेज दी थी। आजकल वह काम नहीं करते। सभी फ़ाइलें मेरे ही पास भेज देते हैं।

जॉर्ज साहब बोले—"समझ गया। मैंने ही ग़लती की थी। उस वक्त मुझे जाना ही नहीं चाहिए था।"

भवानी बाबू बोले—"कहिए क्या काम है?"

जॉर्ज साहब ने करोड़पति का सारा किस्सा बयान कर दिया, जिसे भवानी बाबू अत्यंत गंभीर होकर सुनते रहे। जब किस्सा समाप्त हो गया, तब बोले—"आप क्या चाहते है? वह पागल छोकरा बच भी सकता है। आई० जी० अपने ही आदमी हैं। बिना मुझसे पूछे किसी दारोगा की बदली तक नहीं कर सकते। यदि ऐसा करेंगे, तो मैं उनकी नौकरी पर ही हड़ताल लगा दूंगा।

जार्ज साहब बोले मै जानता हूं, आप सब कुछ कर सकते हैं।"

भवानी बाबू ने धीरे से कहा—"वह एक बहुत बड़े सेठ का लड़का है। उसके बाप को बुलाकर बातें कीजिए। काम हो जायगा। यदि उसका बाप सीधी तरह न मानेगा, तो करोड़पति को फांसी पर लटकवा कर ही दम लूगा। आप चिन्ता न कीजिए।

भवानी बाबू तो चले गए, किन्तु जार्ज साहब सोचने लगे कि करोड़पति के बाप को कैसे यह संवाद भेजा जाय।

आधी रात को जब लीला किसी सांस्कृतिक नृत्य से संस्कृति का परिचय देकर लौटी, तो अचानक भूत की तरह करोड़पति आकर उसके सामने खड़ा हो गया। वह चीख उठती, किन्तु डर ने उसका गला दबा दिया। वह खड़ी-की-खड़ी रह गई। बोल तक न सकी। करोड़पति की दशा भी विचित्र थी। आँखें लाल-लाल थी, और चेहरा भयानक हो गया था। वह हाँफ रहा था। लीला ने साहस बटोर कर कहा—"किधर आए?"

करोड़पति बोला—"आ गया। भूखा जो हूं। कहीं टिक नहीं सकता। पास में कुछ हो तो पिला दो। गला सूख रहा है।

इतना वह कह कर खाट के एक कोने पर बैठ गया। लीला ने चुपचाप आलमारी से निकाल कर एक बोतल करोड़पति को देते हुए कहा—"यह लो, और भाग जाओ। पुलिस यहां भी आई थी। तमाम खोज हो रही है।"

बोतल को स्नेह भरी आंखों से देखता हुआ करोड़पति बोला—"लीला अब मुझे भय नहीं है। यह मेरी थाती है, रख लो।"

इतना कह कर उसने अपने ओढ़े हुए चादरे में से निकालकर एक छोटा-सा बंडल लीला को पकड़ा दिया। लीला ना नहीं कह सकी। खाट से उठते-उठते करोड़पति बोला—"छक्कन का भूत पीछा कर रहा है। वह दम नहीं छोड़ता। जाता हूँ। क्षमा कर देना। मैंने कभी तुम्हारा जी दुखाया था। मैं नहीं जानता था कि विपदा कैसी होती है। जब वह मेरे सिर पर पड़ी, तो आंखें खुल गईं। लीला—लीला! वह कौन खड़ा है?"

लीला ने घबराकर बाहर की ओर देखा। कोई भी न था। लीला ने कहा—"कोई नहीं है।"

करोड़पति जेब से पिस्तौल निकाल कर गरज उठा—"है क्यों नहीं, वह छक्कन का भूत है। खड़ा रह साला··········।"

लीला डर कर पीछे हट गई, और करोड़पति उछलकर बाहर निकला। लीला भी बरामदे तक पीछे-पीछे गई। करोड़पति मानो किसी को खदेड़ता हुआ जंगल की ओर भागा, और दृष्टि से ओझल हो गया।

लीला लौट कर अपने कमरे में आई। उसने भीतर से दरवाजा बन्द करके उस बंडल को खोला, जो करोड़पति दे गया था। बंडल खोलते ही लीला की आँखें चमक उठीं। उसमें काफी धन

था — कई हज़ार के नोट । लीला ने बंडल को संभाल कर अपने उस सेफ़ में बन्द कर दिया, जिसमें उसके ज़ेवर रहते थे ।

रात भर लीला को नींद नहीं आई । वह छटपट करती रही ।

एक सप्ताह बीता, फिर एक मास भी समाप्त हो गया । करोड़पति का कहीं पता नहीं चला । पुलिस ने पत्ता-पत्ता छान डाला । लीला भी मन-ही-मन यही मनाती थी कि अब करोड़पति लौट कर उसके यहाँ न आवे ।

एक दिन लीला को एक पत्र मिला, जिस पर हरिद्वार की मुहर लगी हुई थी। पत्र में लिखा था—"हिमालय की ओर जा रहा हूँ । अब लौटना नहीं हो सकता । यह मेरी अन्तिम यात्रा का अन्तिम पत्र है । जब तक यह पत्र तुम्हें मिलेगा, मैं हिमालय की गोद म चलाा जाऊँगा । जो चीज़ थाती कह कर मैंने रखी थी, वह तुम्हारी है । अब मैंने पारस पा लिया । मुझे किसी चीज की जरूरत नहीं है ।"

"लीला बहन क्षमा करना । जब मैं पशु की हालत में था, तुम्हें सताया करता था । आज मेरा सच्चा स्वरूप मेरे सामने स्पष्ट हो गया । बहन, मैं चाहता हूँ, तुम भी अपने को सँभालो । मेरी ही ओर देखो, गलत रास्ते पर जाने का कैसा बुरा परिणाम होता है ।"

"कभी-कभी इस पतित भाई को भी याद कर लिया करना । सदा के लिए विदा ।"

लीला पहली बार फूट-फूटकर रोई । ऐसा लगता था कि उसका हृदय पिघलकर आँखों की राह से बाहर निकल रहा था । वह ज्यों-ज्यों रोती थी, उसे ऐसा लगता था कि उसका मन निर्मल होता जा रहा है । वह बार-बार पत्र को पढ़ती, और मुँह में आँचल ठूँसकर रोती । वह दिन-भर रोती रही, और रात-भर भी रोती ही रही ।

सवेरे उसकी आँखें लग गई तो उसने एक स्वप्न देखा—वह देख रही थी, हिमालय की गोद में करोड़पति चुपचाप बैठा है, और वह धीरे-धीरे बर्फ की तरह गलता जा रहा है। जब सारा शरीर गल गया, तो सिर ऊपर उछलकर लीला के सामने आकर गिरा।

लीला चीखकर खाट के नीचे गिरी, और बेहोश हो गई।

होश में आने पर लीला ने अपने को सँभाला, और कहा "तुम भी सच्चे निशानेबाज़ निकले। जो गोली तुमने चलाई, वह मेरे पत्थर-जैसे दिल को तोड़ती-फोड़ती साफ पार निकल गई। मेरा पुनर्जन्म हुआ—आह।"

विचार और संस्कार

कभी-कभी हम अपने भीतर कशमकश का अनुभव करते हैं। विचार तो एक ओर खींचते है, और संस्कार दूसरी ओर। हम चाहते हैं कहीं जाना, और पहुँच जाते हैं किसी दूसरी ओर।

लीला की यही दशा हुई। उस गुमनाम पत्र ने, जो करोड़पति का भेजा हुआ था, लीला पर जादू-का-सा असर डाला। उसने अपनी नंगी आंखों से देख लिया कि विपथ पर चलने का कैसा नतीजा होता है। करोड़पति सचमुच लखपति का लड़का था। अच्छी शिक्षा भी पाई थी, किन्तु उसने अपने जीवन को ऐसे मार्ग पर चलाया था, जिसका अन्त विनाश में होना निश्चित था। वही हुआ भी। जानते या अनजानते करोड़पति ने खन कर दिया। वह पूरे दो मास तक भूखा, प्यासा, भयभीत, पागल बना मारा-मारा फिरा। कहीं उसे शरण नहीं मिली। पिता ने भी सहारा नहीं दिया। उलटे उसने थाने में जाकर बयान दे दिया। कि दो साल से करोड़पति से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। वह त्यक्त पुत्र है, अवारा है, पतित और खतरनाक व्यक्ति है। जब पुलिस ने

जब्ती की कार्रवाई की, जिसे ८७—८८ की कार्रवाई कहते हैं, तो करोड़पति को यही रास्ता सूझा कि वह भी अपने पिता का सदा के लिए त्याग कर दे। करोड़पति को त्यक्त पुत्र घोषित करके उसके बुद्धिमान बाप ने जब्ती-कुर्की से अपना पिंड छुड़ाया, किन्तु करोड़पति ने सदा के लिए उसका पिंड छोड़ दिया। अपने पिता से कोई भी ऐसी आशा नहीं रख सकता कि ऐसे भयानक अवसर पर वह अपने पुत्र का साथ छोड़ दे। करोड़पति जैसे नींद से जाग उठा। वह एक दिन अपने घर गया और जो कुछ उसके पास था, लेकर चला गया। यह साहस का काम था, किन्तु पिता की बेवफ़ाई ने उसे बल प्रदान किया। वह मौत से खेल जाना चाहता था। परिणाम चाहे जो भी हो।

जब करोड़पति के पिता ने यह सुना कि करोड़पति आया है, तो वह बहुत व्यग्र हुआ, और स्वयं उसके सामने न जाकर अपनी चौथी पत्नी से कहलवा दिया कि वह चला जाय।

करोड़पति बोला—"पिता जी से कह दो मैं सदा के लिए जा रहा हूं, वह चिन्ता न करें।"

इतना कहकर वह चला गया। उसकी दिमाग़ी हालत भी सही नहीं थी। वह कभी तो ठीक रहता था, और कभी पागलों-जैसा व्यवहार कर बैठता था।

रात काफी हो गई थी वह घर से भागा, और लीला के निकट पहुँचा। वहाँ से पैदल ही हरिद्वार की ओर चल पड़ा। वह संन्या-सियों-जैसे कपड़े पहने चलता गया, और गाँव-गाँव रुकता हुआ हरि-द्वार पहुँच गया। गंगा-स्नान करके उसने पिस्तौल और गोलियों को गंगा में डाल दिया। इस पाप से मुक्त होकर हिमालय की ओर चल पड़ा। वह ज्यों-ज्यों उत्तर की ओर जाता था, उसका हृदय विकसित होता जाता था। वह आगे बढ़ा, और बढ़ता ही चला गया—कहाँ उसे जाना है, कहाँ तक पहुँचा, इसका पता करोड़पति को न था।

यह कहानी यहीं खत्म हो जाती है ।

लीला ने एक बार सेफ़ खोलकर फिर से उस बंडल को देखा, जो उस दिन करोड़पति उसे दे गया था । कह रक़म कुछ कम न थी । लीला का पहले तो मन प्रसन्न हुआ, किंतु तुरंत ही उसे ऐसा लगा कि धन देकर उसे तोष दिया गया । करोड़पति ने चलते-चलते यही सोचा कि लीला तो पैसों की भूखी है, उसे और क्या चाहिए ।

लीला का हृदय छटपटा उठा । क्या वह इतनी हुई गिरी है कि उसके जीवन के साथ निष्ठुर खेलवाड़ करके कोई भी पैसे के द्वारा उसके कुचले हुए आत्मसम्मान को राहत पहुँचा सकता है । बहुत नीचे गिरकर भी लीला आखिर औरत ही तो थी । एक नारी में जितना आत्मसम्मान होना चाहिए, उतना न सही, कुछ तो था ही ।

यदि करोड़पति सामन होता, तो वह बंडल वह उसे लौटा देती, और कहती—"तुमने मुझे बहुत ग़लत समझा । पैसों पर बिकनेवाली औरतें दूसरे प्रकार की होती हैं, मैं इतनी पतिता नहीं हूँ ।" किंतु अब उपाय क्या था ? यदि लीला उन नोटों को चूल्हे में भी डाल देती, तो भी कोई फल तो निकलता ही नहीं । करोड़पति ने उसे जो कुछ भी समझा, उसमें संशोधन कराने का अवसर भी तो समाप्त हो गया । लीला ने अपमान से भरे उस दान को ज़हर के घूंट की तरह पी लिया । यह उसकी कोरी भावुकता थी, या हृदय की एक लहर, यह बतलाना कठिन है । कभी-कभी ऐसा भी होता है कि एक ही आघात से जीवन-प्रवाह की दिशा बदल जाती है । निशाने पर लगा हुआ एक ही तीर मैदान का नक्शा बदल देने की ताकत रखता है, यों तो लाखों तीर इधर-उधर जाने के कारण बेकार हो जाते हैं ।

करोड़पति ने जो बाण मारा था, वह काम कर गया, और लीला के मन का धरातल तेजी से बदल गया । उसने मानो नया जन्म ही लाभ किया, जो शानदार कहा जा सकता है ।

लीला ने अपने भावी जीवन की एक तस्वीर खींची, जो भावुकता-पूर्ण थी, उस तस्वीर को मिटाकर वह दूसरी तस्वीर खींचने का प्रयास करने लगी। सबसे पहले उसने एकांत में रहने का प्रयास किया। वह जानती थी, कुछ भी करने की तैयारी में कुछ समय लगना जरूरी है। किसी से मिलना-जुलना उसने बंद कर दिया। राजीव आदि उसके मित्र आए, तो उसने उन्हें यह कहकर विदा कर दिया कि—अब वे आने का कष्ट न उठावें। उसने बनाव-शृंगार की ओर से भी मन फेर लिया। सिगरेट और शराब का भी परित्याग कर दिया—आतुर संन्यास की-सी स्थिति उसके भीतर पैदा हो गई थी। वह करोड़पति को याद करती, और कभी-कभी रोती और ज्यों-ज्यों अपनी भूलों को याद करती, उसका मन घृणा और तिरस्कार से भर जाता।

एक दिन जॉर्ज साहब ने लीला से कहा—"आज क्लब में बड़े-बड़े ऑफ़िसर आनेवाले हैं। सांस्कृतिक नृत्य भी होगा। तुम तैयारी करो। मैं तबला बजाऊंगा।"

लीला कुछ देर तो अपने पिता का मुँह देखती रही, और अंत में कहा—"मैं नहीं जाऊँगी।"

जॉर्ज साहब ऐसे भयानक उत्तर की आशा नहीं रखते थे। उन्होंने अकचकाकर कहा—"नहीं जायगी? सभ्य-सुसाइटी में नहीं जायगी, तो जायगी कहाँ?"

लीला बोली—"पापा, आप भी मत जाइए, यही मेरा आग्रह है।"

जॉर्ज साहब गरजकर बोले—"पागल तो नहीं हो गई लीला?"

लीला ने दृढ़ता-पूर्वक कहा—"पागल तो तब थी, जब आवारों के सामने नाचा करती थी, और अपने अंगों का प्रदर्शन करती थी। पापा, मैं नहीं जाऊँगी, कभी नहीं जाऊँगी।"

जॉर्ज साहब भड़क उठे, और लीला की मा को बुलाकर कहा—

"देखो तो डार्लिंग, इस लड़की का दिमाग़ खराब हो गया ह । सभ्य-समाज को आवारों की जमात कहती है ।"

रानी ने पूछा—"क्या बात है लीला ?"

लीला ने रुक्ष स्वर में जवाब दिया—"बात कुछ नहीं मम्मी, मैं नाचना नहीं चाहती । मैं कोई पेशेवर नर्तकी हूँ क्या, जो साहब बहादुरों के आगे थिरका करूँ ।"

रानी बोलीं—"सभ्य-सुसाइटी में तो बड़े-बड़े ऑफ़िसरों की लड़कियाँ भी नाचा करती हैं । यह तो नई सभ्यता है ।"

लीला कुर्सी से उठती हुई बोली—"यह नई सभ्यता है कि बाप के सामने बेटी अधनंगी होकर दर्शकों को पागल बनावे । पापा, माफ़ कीजिए मैं कहीं नहीं जाऊँगी ।"

रानी ने कहा—"हिंदुस्तानियों की तरह घूंघट निकालकर रहेगी क्या ? वे असभ्य, जंगली, अपढ़ और ग़ुलाम स्वभाव के होते हैं । हज़ारों साल से दूसरों के चरण चूमते-चूमते हिंदुस्तानियों की आत्मा ही मर गई है । तू आज़ाद देश की लड़की ह, न कि गाँवों की गोबर पाथनेवाली गंदी, बेहूदी औरत ।"

लीला ने कोई जवाब नहीं दिया । वह मुस्किराई, और चली गई । लीला के जाने के बाद जॉर्ज साहब ने कहा—"अब बतलाओ, उपाय क्या है ? मेरी तो प्रतिष्ठा ही खतरे में पड़ गई । इसमें हिंदुस्तानी जंगलीपन कैसे पैदा हो गया ? हमें योरपवालों को नीचा दिखलाना है, और यह प्रमाणित करना है कि हिंदुस्तान सभ्यता म योरपवालों के मुकाबले का है ।"

रानी बोलीं—"बिलकुल सही बात है । हमारी बच्चियों को चाहिए कि वे देश का नक्शा ही बदल डालें ।"

जॉर्ज साहब ने हताश होकर कहा—"आज विश्वास हो गया कि देश की यह आज़ादी चंद रोज़ है ।"

रानी ने समर्थन किया, तो जॉर्ज साहब का उत्साह बढ़ा । कहने

लगे—"हम शासन करने वाले हैं। देहाती और पुराने विचारोंवाले गुलाम थे, और आगे भी गुलाम रहेंगे। अँगरेज़ चले गए। हम उनकी जगह पर हैं। इसीलिये बिना अँगरेज़ बने शासन कर ही नहीं सकते—इतना तुम भी समझती हो।"

रानी ने कहा—"इस बात में लीला के नाचने या नहीं नाचने का क्या संबंध है ?"

जॉर्ज साहब बोले—"यह लड़की हिंदुस्तान की पुरानी गंदी तहज़ीब की तरफ़ झुकती जा रही है। ये तो बुरे लक्षण हैं, मैं इसे पसंद नहीं करता।"

रानी क्या जवाब देतीं। वह इतनी गहरी बात समझने में ही असमर्थ थीं। लाचार होकर उन्होंने कहा—"मैंने बार-बार कहा कि मुझे नाचना सिखला दो। यदि मैं नाचना जानती, तो आज तुम्हारी इज्ज़त खटाई में न पड़ती।"

इतना कहकर रानी ज़रा-सा तनकर बैठ गई, यद्यपि तीन-चा दिनों से वह कमर के दर्द से बेज़ार थीं।

जॉर्ज साहब ने रानी का पके हुए बैंगन-जैसा चेहरा एक बार नज़र उठाकर देखा, वह अपनी हँसी नहीं रोक सके। उनका हँसना रानी को बुरा लगा। वह बोलीं—"मैं बूढ़ी हो गई हूँ। तुमसे बीस साल छोटी हूँ।" जॉर्ज साहब ने कहा—"बीस नहीं, तीस साल छोटी हो, किंतु वहाँ तो लड़कियाँ ही नाचती हैं। तुम लड़की कैसे बन सकती हो डार्लिंग।"

"हाँ, यह बात तो है"—इतना कहकर रानी चली गई; और लीला सीधे पद्मा की कोठी में जाकर ही रुकी।

जॉर्ज साहब अकेले ही सीटी पर विलायती गत बजाते और पैरों से बैठे-बैठे ताल देते रहे।

पद्मा उसी समय कहीं से आई थी। ज्ञानदेव भी था। लीला को देखते ही पद्मा ने कहा—"मिस लीला, बहुत दिनों पर ?"

लीला बोली—"दीदीजी, प्यास लगने पर ही कोई पानी की खोज करता है। आज मैं प्यासी हूँ।"

ज्ञानदेव भी क्षण-भर रुका। लीला ने करुण स्वर में फिर कहा—"भाई।"

ज्ञानदेव मुस्किराकर बोला—"हाँ, दीदी, सुन तो रहा हूँ।"

इतना कहकर ज्ञानदेव ऊपर चला गया, और पद्मा ने लीला को पकड़कर पहली बार अपने निकट बैठाया।

लीला बिलकुल ही मामूली साड़ी पहनकर आई थी। उसकी मुखाकृति भी शांत थी। न पुरानी तड़क-भड़क थी, और न चपलता, जिससे पद्मा को घृणा थी। पद्मा ने फिर स्नेह-भरे शब्दों में पूछा—"दीदी, कहो न, मैं आज आपको उदास देख रही हूँ।"

लीला मुस्किराई, और बोली—"कुछ नहीं पद्मा दीदी, तुम्हारे यहाँ मैं आज जीवन प्राप्त करने आई हूँ। मन को शांति की आवश्यकता थी, और यहाँ यह चीज़ मिल नहीं सकती। संसार में सभी चीज़ों का उत्पादन बढ़ गया है और शांति का ही घाटा है।"

पद्मा चौंकी। लीला से वह ऐसी बातें सुनने की आशा नहीं रखती थी। जो आधुनिकता के नाम पर नरक को ही अपने भीतर लिए फिरती थी, वह हठात् शांति के लिए क्यों छटपटाने लगी, जो जीवन-भर नाचघरों और विलास से भरे क्लबों में ही आनंद मानती रही है, वह शुद्ध मानसिक शांति की आवश्यकता का अनुभव क्यों करेगी—यह रहस्य पद्मा के लिए रहस्य ही बना रहा।

पद्मा बोली—"लीला दीदी, यह घर आपका है, हम आपके हैं। इस से अधिक कहने की मैं ज़रूरत नहीं समझती। आप जब चाहिएगा, हमें सेवा के लिए हाथ जोड़े हाज़िर पाइएगा।"

लीला की आँखें सजल हो गईं। उसने हृदय में उमड़नेवाले भावों को चुप रहकर व्यक्त किया। यह तो स्पष्ट है कि वाणी से अधिक मौन बलवान् होता है, और जो बोलकर अपने आपको व्यक्त

करना नहीं चाहते वे उनसे अधिक बलवान् हैं, जो जोश का सहारा लेते हैं। लीला ने कुछ कहा नहीं, और दूसरे शब्दों में बहुत कुछ कह दिया।

लीला के जाने के बाद पद्मा ज्ञानदेव से बोली—"लीला को आज मैंने विचित्र मनःस्थिति में पाया। वह बदल कैसे गई ?"

ज्ञानदेव ने कहा—"कोई आघात लगा होगा, साधारण आघात नहीं, जोर का आघात। होता ऐसा है कि अन्दर का उत्तम संस्कार ऊपर के कुसंस्कारों से दबा होता है। यह तो ईश्वर की महिमा है कि कभी-कभी आघात पड़ता है कि ऊपरवाला आवरण चूर-चूर हो जाता है, और भीतर का छिपा हुआ प्रकाश बाहर फूट पड़ता है। जो सावधान व्यक्ति होता है, वह फिर आवरण पैदा होने नहीं देता, और जो असावधान होता है, वह धीरे-धीरे फिर तमःपूर्ण स्थिति में पहुँच जाता है। प्रतीक्षा करो और देखो कि लीला सदा के लिए जाग गई, या फिर मोह-निद्रा के वश में होकर हाय-हाय करती फिरेगी

पद्मा सोच-विचार में पड़ गई।

संध्या बीतते-न-बीतते लीला के पिता ने फिर लीला से कहा—"तुम अपना हठ छोड़ो। आज तो क्लब में जाना ही होगा। अमेरिका के श्रेष्ठ व्यक्तियों का वहाँ स्वागत होगा। भारतीय संस्कृति का भी उन्हें परिचय दिया जायगा। तुम 'सपेरा-डांस' और 'राधा-मान-डांस' की तैयारी करो। क्लब के मैनेजर ने बहुत आग्रह किया है।"

लीला बोली—"पापा, भारतीय संस्कृति का परिचय तो हम अपने शील-व्यवहार, आचार-विचार, ज्ञान और विज्ञान द्वारा ही दे सकते हैं। बुद्धदेव ने जो संसार में भारतीय संस्कृति फैलाई थी, वह 'सपेरा-डांस' और 'राधा-मान-डांस' के रूप में ? आप भ्रम में हैं। क्या नाच-गान और नाटक-रूपक के अतिरिक्त हमारे पास कुछ भी नहीं है—छिः।"

जॉर्ज साहब चश्मा उतारकर लीला की ओर देखने लगे। वह जैसे आकाश से गिर गए हों। कुछ देर तक हक्के-बक्के से ताकते रहने के बाद वह बोले—"तेरा दिमाग़ तो नहीं खराब हो गया है.?"

लीला ने कहा—"हो सकता है पापा। यदि सही बात सोचने का अर्थ ही दिमाग़ खराब हो जाना है, तो मुझे प्रसन्नता ही होगी। पापा, आप विदेशियों के सामने उन्हीं की थूकी हुई जूठन लाकर रख देते हैं, और बड़े गर्व से कहते हैं कि यह भारतीय संस्कृति है। वे क्या कहते होंगे? भारतीय संस्कृति संयमशीलता में है, अधनंगी होकर स्टेज पर नाचने में नहीं। आप भी ज़रा सोचिए।"

इतना कहकर लीला न कठोर मौन धारण कर लिया। जॉर्ज साहब सिर झुकाकर चिंता म डूबने-उतारने लगे।

क्लब का मनेजर था मि० खोसला, जो पंजाबी था। पहले वह क्लब शुद्ध अँगरेज़ ऑफ़िसरों का था, जिसमें देशी आदमी और कुत्ता नहीं जा सकता था। केवल अँगरेज़ ही वहाँ आनंद मनाते थे। आज़ादी के बाद उस स्वर्ग का द्वार खुला भी, तो उन्हीं लोगों के लिए जो अँगरेज़ों क त्यक्त पुत्र थे, जिन्हें वे अपने ।ीछे नामलेवा—पानी देवा के रूप में छोड़ गए थे। जॉर्ज साहब भी उन्हीं लोगों में से एक थे।

जॉर्ज साहब कहा करते थे, आज़ादी के बाद तुरंत ही देश में एक ऐसा वर्ग पैदा हो गया है, जो शासक-वर्ग है। यही वर्ग अँगरेज़ों की छोड़ी हुई संस्कृति का रक्षक और उन्नायक है। ये वे ही लोग थे, जिनके समर्थन और सहारे के बल पर अँगरेज़ यहाँ राज्य करते थे। एक छोटी-सी गाड़ी पोर्टिको में आकर खड़ी हुई, और उस पर से खोसला उतरे—टाई, कोट, पैंट आदि नई सभ्यता के कपड़े पहने। एक प्रज्वलित सिगरेट भी हाथ में थी। खोसला कम-से-कम ४ मन तो ज़रूर ही भारी रहे होंगे। १० नंबर के फ़ुटबॉल-जैसा गोल-मटोल चेहरा। जितने लंबे, उतने ही चौड़े—बिलकुल स्क्वायर।

सिर पर के फ़ेल्ट हैट को ज़रा-सा खिसकाकर उन्होंने जॉर्ज साहब का अभिनंदन किया। कुर्सी पर बैठते ही नई सभ्यता के अनुसार अपनी कार्य-व्यस्तता दिखलाने के लिए उन्होंने कलाई पर की घड़ी पर निगाह डाली और कहा—"सर, मिस लीला तो आएँगी ही।"

लीला, जो वहीं बैठी थी, बोली—"मैं नहीं जाती।"

मि० खोसला घबराकर बोले—"प्रोग्राम में नाम जो दे दिया गया है। अमेरिका की कांग्रेस के कई सदस्यों का आज क्लब में स्वागत होगा।"

लीला बोली—"क्या उन्हें अपनी लड़कियों का नाच दिखाना आपके लिए ज़रूरी है?"

मि० खोसला के ललाट पर पसीना आ गया। वह बोले—"जी, आप क्या कह रही हैं?"

लीला ने कहा—"ठीक ही तो कह रही हूँ। मैं नहीं जाती, कह तो दिया।" जॉर्ज साहब की व्यग्रता सीमा पार कर गई। वह इतना विकल हो गए कि अँगरेज़ी बोलना भूल गए, और जंगलियों की भाषा में ही बोल उठे—"लीला न जाने क्यों नाराज़ है। मैं कोशिश करूँगा कि यह क्लब के कार्य-क्रम को पूर्ण करे।"

लीला ने तड़ से जवाब दिया—"पापा, उन्हें धोखे में रखना ठीक न होगा। मैं नहीं जाऊँगी। मि० खोसला कोई दूसरी नर्तकी का प्रबंध करें।"

नर्तकी शब्द पर ज़रूरत से ज्यादा ज़ोर देकर लीला ने उस शब्द की नग्नता को स्पष्ट कर दिया, और खुद उठकर चली गई।

मि० खोसला रूमाल निकालकर ललाट का पसीना पोंछने लगे, और व्यग्र होकर इधर-उधर देखने लगे। वह शायद देख रहे हों कि किसी तरफ़ कोई बात गिरी हुई मिले, तो वह उसे ग्रहण करें, और काम में लावें।

जॉर्ज साहब, जो अब तक अपनी दुहिता की इस असभ्यता पर जल-भुन रहे थे, बोले—"मि० खोसला, बीमार रहने के कारण लीला का मन कुछ ऐसा हो गया है कि बात-बात में झुँझला जाती है। आप इस पर ध्यान मत दीजिए।"

मि० खोसला का हाल और भी विचित्र था। उन्होंने अनन्योपाय होकर कहा—"खैर, जाने दीजिए। मौका अच्छा था। अमेरिका के ऊँचे-ऊँचे अधिकारी आवेंगे, उनका मनोरंजन तो होना ही चाहिए। कुछ दूसरा इंतजाम करना पड़ेगा।"

मि० खोसला झूमते हुए चले गए, और जॉर्ज साहब क्रोध की ज्वाला मिटाने के लिए तीन गिलास पानी पीकर सिगरेट-पर-सिगरेट फूंकने लगे। लीला अपने कमरे में जाकर लेट गई, और एक पुस्तक पढ़ने लगी। यह पुस्तक पांडुचेरी के महर्षि अरविन्द के आश्रम के संबंध में थी।

पद्मा ने लीला को यह पुस्तक इस आग्रह के साथ दी थी कि वह ज़रूर पढ़े।

पिता-पुत्री में वार्तालाप बंद हो गया। लीला अपने कमरे से बाहर नहीं निकलती, और चुप रहकर समय काटती। उसका मन भीतर-ही-भीतर किसी ऐसी वस्तु के लिए अधीर रहता था जिसकी कोई रूप-रेखा उसके सामने न थी। वह कुछ चाहती थी; क्या चाहती थी, यह वह नहीं जानती थी। यह तो स्पष्ट ही है कि वह अपनी वर्तमान स्थिति से उबरना और उभरना चाहती थी। जीवन में जड़-मूल से परिवर्तन लाने के लिए यह ज़रूरी है कि हम जिस स्थान पर हों, वहाँ से दूर हटने के लिए, उससे श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करने के लिए हमारे भीतर घोर व्यग्रता प्रकट हो जाय। मानव है तो सचल प्राणी, किंतु वह वृक्षों से भी अधिक स्थावर है। वह जिस स्थिति में रहता है, उससे ऐसा लिपट जाता है कि छोड़ने का नाम नहीं लेता। बहुत आनंद है, प्रसन्न हूँ, किसी तरह समय कट ही

जाता है—आदि प्राण-हीन बातें बोलता हुआ सचल मानव अचल बनकर जीवन के मूल्यवान् दिनों को बेरहमी के साथ बर्बाद कर देने मे ही दार्शनिक संतोष मान लेता है।

लीला के भीतर एकाएक जो भूचाल आ गया, उसका कारण चाहे जितना भी तुच्छ और हल्का हो, किंतु वह उपेक्षणीय नहीं कहा जा सकता। लीला ने अपने आपको विचारों के नए प्रकाश में देखा, तो वह मन-ही-मन चीख उठी—हाय, वह अब तक नाबदान की गंदी कीड़ी ही बनी रही! जिसे वह आनंद और सुख-भोग मानती थी, उससे उसका मन उसी दिन घिना उठा था, जिस दिन लेडी डॉक्टर के यहाँ उसे जाना पड़ा। विचारों से उसका संस्कार प्रबल था। संस्कार ने विचारों को दबा दिया। करोड़पति का खून में फँस जाना दूसरा प्रहार था, तीसरा प्रहार पड़ा करोड़पति-जैसे घोर पतित और नीच स्वभाव के व्यक्ति का, चाहे पुलिस के भय से ही सही, आत्म-विसर्जन करना। तीन-तीन जोरदार प्रहारों ने लीला के मानसिक धरातल को बदल दिया। उसके संस्कार हार गए, और विचारों की जीत हुई—संस्कारों का नाश तो होना ही है।

अब लीला के लिए सबसे अधिक आकर्षण का केंद्र था पद्मा का घर। वह वहाँ जाती, पद्मा के साथ ही उसके गृह-कार्य में भी हाथ बटाती, हँसती, बातें करती, और "कल फिर आऊँगी दीदी।" कहकर बिदा होती। लीला का यह सरल अपनापन पद्मा के प्यार का कारण बन गया। जब लीला न आती, तो पद्मा चिंतित हो जाती। यदा-कदा ज्ञानदेव भी लीला से दो बातें कर लेता। लीला अपने घर में भी अतिथि की तरह ही रहने लगी। उसने न तो अपने पिता से संबंध रक्खा, और न मा से लगाव।

साधन और साध्य

विचारवान् व्यक्ति यह प्रायः कहते हैं कि उत्तम साधनों को अपनाना चाहिए, तथा अपना लक्ष्य भी उत्तम ही रखना चाहिए। जो नई सभ्यता आज संसार के ऊपर तूफ़ान की तरह हाहाकार करती हुई धूल उड़ा रही है, वह इस तर्क को नहीं मानती। वह कहती है, अपना काम तो निकालना ही चाहिए, वह चाहे किसी उपाय से भी हो—झूठ, धोखा, खून, छल या विश्वासघात की भी परवा मत करो। सदा अपने लक्ष्य को निगाह के सामने रक्खो। नई सभ्यता की माँग है कि तुम मुझे अपना धर्म, ईमान, मानवता दे दो, और बदले में हम तुम्हें सब कुछ देंगे, जैसे पद, यश, शक्ति, धन, मोटर, महल, शराब, सांस्कृतिक भोग।

चंपा ने अपने भाई को इसी नीति का पालन करते देखा था। वह यह सोच भी नहीं सकती थी कि शराफ़त कैसी होती है, और उसका जीवन में क्या उपयोग हो सकता है, वह जानती ही नहीं कि धर्म और ईमान किसे कहते हैं, वह जानती ही नहीं थी कि दया, ममता, स्नेह और अपनापन किसे कहते हैं। वह नवीन युग की बेटी थी, पुराने युग की नानी नहीं।

चंपा नए-से-नए भोग-विलास और आनंद-मौज की खोज म रहती थी, और उसके भैया नित्य नए उल्लू को ढूंढ़ते फिरते थे। दोनो भाई-बहन राष्ट्र-निर्माण के पुनीत कार्य में, पुरानेपन को लात मारकर, प्राण-पण से जुटे हुए थे।

जब से कुमारी भी राष्ट्र-निर्माण के कार्य में मन लगाने लगी, चंपा को ऐसा लगा कि वह अपनी महिमा की उच्च चूड़ा पर से खिसकती जा रही है। कुमारी भी चाहती थी कि चंपा यदि पद-च्युत हो जाय, तो सारा मैदान उसी का हो जाय। दोनो के लिए विघ्न बनकर भवानी बाबू की योजना पूरी करने में लगी हुई थी—पाप बटोरने की होड़ सी हो गई थी। भवानी बाबू का काम भी तेज़ी से चल निकला था—बाजार में जब कंपिटीशन हो जाता है, तब व्यापार चमकता है। घर में ही होड़ कराकर भवानी बाबू बढ़-बढ़कर हाथ मार रहे थे।

चंपा का ध्यान पद्मा की ओर था। वह रात-दिन इसी चिंता में घुली जाती थी कि किसी भी उपाय से हो, पद्मा को ज्ञानदेव और उसके बीच से यदि हटाया न गया, तो काम बन नहीं सकता। ऐसा विचार तो बहुत बार उसके मन में आया था, किंतु वह लहरों के रूप में ही आता और चला जाता था। प्रत्येक बार वह विचार अपना कुछ असर भी छोड़ देता था। वह असर जमा होते-होते वज़नी हो गया, और चंपा का ध्यान बार-बार उसकी ओर जाने लगा। कहने का मतलब यह कि अब चंपा निरंतर पद्मा और ज्ञानदेव के संबंध में सोचा करती थी, पहले कभी-कभी ही सोचती थी। उठते-बैठते, सोते-जागते चंपा की आँखों के आगे ज्ञानदेव अपनी विपुल संपत्ति के साथ झलकता रहता था।

यह सोचना ग़लत होगा कि चंपा ज्ञानदेव के रूप-यौवन या सु-शीलता पर मुग्ध थी, यह बात भी सही नहीं है कि चंपा थककर कहीं-न-कहीं विश्राम करना और अपने वर्तमान जीवन को कहीं टिका

देना चाहती थी। ऐसी बातों पर विचार करने की आदत चंपा को न थी। वह धरती पर भूखी-प्यासी और अतृप्त आत्मा लेकर ही आई थी। उसकी अतृप्ति ऐसी थी कि उसे मिटाने की शक्ति किसी में भी न थी। भूखे का पेट तो कोई भी अन्न देकर भर सकता है, किंतु दरिद्र का पेट ? उसमें सारा संसार भी यदि डाल दिया जाय, तो भर नहीं सकता।

चंपा मानसिक दरिद्रता से ग्रस्त थी। उसके लिए खाद्य-अखाद्य, ग्राह्य-अग्राह्य का सवाल ही कभी पैदा नहीं हुआ—वह चुनाव करना नहीं जानती थी, जो कुछ मिल जाय, पूरी रुचि के साथ ले लेना-भर जानती थी। जब चंपा की ऐसी मासिक दशा थी, तो उसके सामने ज्ञानदेव के गणों का या खदेरन चेर के अवगुणों का कोई महत्त्व ही नहीं था।

चंपा का ध्यान सोलह आने तो धन की ओर था, और बहुत थोड़ा-सा ध्यान ज्ञानदेव की ओर भी था। ज्ञानदेव को बाद दे देने से उसकी संपत्ति को प्राप्त करना असंभव ही था, इसीलिए चंपा ज्ञानदेव की उपासना भी करना चाहती थी। वह पद्मा से इसलिए नहीं जलती थी कि उसे बहुत ही सुंदर शीलवान और विद्वान् पति मिला था, बल्कि इसलिए कि उसका पति धनी भी था।

यदि चंपा को धन मिलने की पूरी संभावना होती, तो वह बूढ़े, कोढ़ी, अपाहिज, अंधे, कुबड़े, पागल तक को पति-रूप में स्वीकार खुशी-खुशी कर लेती। वह कहा करती थी—"पुरुष की क्या कमी है, यदि कमी है, तो धन की।"

चंपा एक दिन पद्मा के यहाँ पहुँची। पता चला कि पद्मा अपनी बहन के साथ बनारस चली गई। चंपा लौटने ही वाली थी कि ज्ञानदेव बाहर से आया। चंपा को देखकर वह विचित्र स्थिति में फँस गया। वह न तो चंपा की उपेक्षा करके टल जाना चाहता था, और न चंपा के निकट क्षण-भर के लिए भी ठहरना चाहता

था, और खासकर इस हालत में जब कि पद्मा बनारस चली गई थी ।

कर्तव्याकर्तव्य का मोह बहुत ही उलझाऊ होता है । ज्ञानदेव तत्काल कुछ भी फ़ैसला न कर सका । चंपा ने नमस्कार करके टोक दिया—"बहन जी नहीं हैं क्या ?"

ज्ञानदेव कुर्सी पर बैठ गया, उसे बैठ जाना ही पड़ा । वह बोला—"जी, आज ही चली गईं । उनकी बहन बनारस जा रही थी, साथ लेकर चली गईं ।"

चंपा ने विष-भरी मुस्कान के साथ कहा—"तभी तो आप उदास नज़र आते हैं ; साथी से बिछुड़ना किसी को रुचिकर नहीं लगता ।"

ज्ञानदेव भी मुस्कुराकर चुप हो गया । एक ही ओर से बात-चीत तो हो नहीं सकती, दोनों को ही बोलना चाहिए । चंपा इस फ़न में माहिर थी । वह बोली—"आप चुप क्यों हो गए, अनुचित कहा हो तो माफ़ कीजिएगा ।"

ज्ञानदेव ने कहा—"आपने ग़लत समझा । बात यह हुई कि पद्मा का नाम आपने जैसे लिया, मुझे याद आ गया कि वह अपना सूटकेस तो ले गई, किंतु चाभी छोड़ गई । हवाई जहाज़ का समय हो गया था । अब चाभी कैसे भेजी जाय ?"

चंपा ने पूछा—"कब गई," तो ज्ञानदेव ने कहा—"अभी, इसी समय ।"

चंपा फिर मुस्कुराकर बोली—"यदि आप मुझे आदेश दीजिये तो मैं एक ऐसा उपाय बताऊँ कि बहन जी को तुरंत चाभी मिल जाय ।"

ज्ञानदेव बोला—"मैं आदेश दूँगा, और आपको ? कहिए, तो प्रार्थना करूँ । पद्मा का सारा सामान उसी सूटकेस में है, बहुत कष्ट होगा उनको ।" चंपा मन-ही-मन कुढ़ गई । पद्मा के लिये ज्ञानदेव के मन में इतनी चिंता क्यों है ।

चंपा बोली—"आज मंगलवार है । मेरे भैया का एक मित्र है, जो पाइलट है । आज ही संध्या-समय वह जहाज़ लेकर दिल्ली जायगा अगर एयरोड्राम हम चलें, तो चाभी भेजवाने की व्यवस्था हो जायगी ।"

ज्ञानदेव तैयार हो गया। दोनो एयरोड्राम चले। वे छोटी गाड़ी पर जा रहे थे, अतः एक दूसरे से सटकर बैठे थे। चंपा के शरीर में बार-बार रोमांच हो जाता था, किंतु न-जाने क्यों ज्ञानदेव की शिराएँ बार-बार संकुचित होती जाती थीं। मन-ही-मन ज्ञानदेव को ऐसा लगता था कि वह ग़लत काम कर रहा है, किंतु पद्मा को चाभी के कारण कष्ट न हो, यही वह सोच रहा था। चंपा कुछ इतना फैलकर बैठ गई थी कि ज्ञानदेव को उससे सटकर ही बैठना पड़ा था—कोई दूसरा उपाय भी तो न था।

चंपा बोली—"आप चिंता न कीजिए। छोटी-सी बात को लेकर आप इतने व्यस्त क्यों हैं?"

ज्ञानदेव ने कहा—"नहीं तो, व्यस्त होने की कोई बात नहीं है।"

प्रत्येक बार ज्ञानदेव ऐसी ही बात बोलता था कि उसकी बोली हुई बात के आधार पर बात को आगे बढ़ाना चंपा के लिए कठिन हो जाता था। चंपा सोचने लगी—ऐसे ठोस आदमी के साथ पद्मा का कैसे समय कटता होगा। यह शख्स तो ऐसा है कि प्रत्येक बात को इस ढंग से बोलता है कि वह वहीं समाप्त हो जाती है।

चंपा बोली—"आपकी चुप्पी ने मुझे तो थका दिया ज्ञान बाबू, मैं सच कहती हूँ—क्षमा कीजिएगा।"

ज्ञानदेव चौंका। उसे विश्वास न था कि चंपा की बुद्धि इतनी तेज़ है। उसने भाँप लिया कि ज्ञानदेव उससे बात करने में कतराता है। हारकर ज्ञानदेव बात-चीत के लिए तैयार हो गया। दूसरा उपाय भी तो नहीं था। वह बोला—"आप जानती हैं, एक साल हुआ, मैं कभी अकेला नहीं रहा। एक महीने से बाबा भी काशी-वास कर रहे हैं। अइया भी साथ ही गई हैं। यहाँ रत्ना दीदी थीं। वह भी आज चली गईं, और बाबा से मुलाकात करने पद्मा भी गई। भूत की तरह अकेला मैं इतनी बड़ी कोठी में रहूँगा, क्या यह मानसिक दंड नहीं है?"

"है तो ज़रूर।"—मन-ही-मन प्रसन्न होकर चंपा बोली। वह कहने लगी—"ज़रा मेरी तकदीर तो देखिए। पिता-माता कोई नहीं। भाई की शरण में हूँ, और किसी तरह दिन काटे नहीं कटता! क्या करूँ। यह मानसिक दंड है या नहीं?"

ज्ञानदेव का मन उदास हो गया। उसका हृदय करुणा से भर गया। वह बोला—"मैं तो ऐसा नहीं जानता था। क्या आप क्वाँ·········।"

चंपा ने अदा से सिर झुका कर धीरे से कहा—"जी, हाँ।"

ज्ञानदेव भी मन-ही-मन लज्जित हो गया। उसे ऐसा सवाल नहीं पूछना चाहिए था।

चंपा ने कहा—"मन बहुत ही रहस्य-पूर्ण होता है। एक गुण उसमें यही है कि वह समझाने से कभी-कभी मान जाता है। मैं जिस स्थिति में रह रही हूँ, वह असुंदर है, किंतु मैंने अपने मन को समझा लिया है। क्या करूँ ज्ञान बाबू, दूसरा उपाय भी तो नहीं है। चंपा ने बहुत ही करुणा-भरे स्वर में यह आत्मनिवेदन किया। ज्ञान का मन भी भारी हो गया। उसने चंपा को दया की अधिकारिणी मान लिया, उपेक्षा की पात्री नहीं।

यह चंपा की बहुत बड़ी जीत थी। गाड़ी एयरोड्रोम पर पहुँची। चंपा ने वायरलेस से उड़ते हुए हवाई जहाज़ पर ही पद्मा को कहलवा दिया कि दूसरे जहाज़ से चाभी जाती है। इसके दो घंटा बाद जानेवाले परिचित पाइलट से चाभी भेजवाने का भी प्रबंध अनायास ही करा दिया। चंपा एयर-क्लब की सदस्या थी। यह काम उसने अनायास ही संपन्न कर दिया। अब बनारस पहुँचने के दो घंटे बाद ही चाभी मिल जायगी, यह जानकर ज्ञानदेव का मन भार-मुक्त हो गया।

कोठी पर लौट आने के बाद चंपा ने ज्ञानदेव से कहा—"कब तक पद्मा दीदी के लौटने की आशा है?"

ज्ञानदेव ने कहा—"एक सप्ताह। मन नहीं लगता। अब एकांत काटे खाता है।"

चंपा सोफ़े पर पद्मा की तरह ज्ञानदेव के निकट ही बैठी, जो उसके लिए साहस का काम था। ज्ञानदेव झिझका, मगर चुप रहा। चाय-नाश्ते के बाद ही संध्या हो गई। ज्ञानदेव चाहता था कि अब चंपा से उसे छुटकारा मिले, किंतु चंपा निश्चिंत होकर बैठ गई थी। वह ज्ञानदेव को अधिक-से-अधिक निकटता प्राप्त करने की लालसा का त्याग कैसे करती, जबकि ईर्सा ताक में उसने एक साल नष्ट किया था।

इधर-उधर की बातों के जंजाल में फँसाकर चंपा ने दो घंटे तक वहाँ आसन जमाया। जब वह चली, तो ज्ञानदेव के मुँह से यह कहलवा दिया कि "कल फिर आइएगा।"

अपनी गाड़ी पर ज्ञानदेव ने चंपा को कल फिर बुलवाना चाहा, किंतु उसके मन ने मंजूरी नहीं दी। इतनी दूर तक जाना ज्ञानदेव को स्वीकार न था। ठीक समय पर चंपा स्वयं आ गई। वह घंटों बैठी और अपनापन का परिचय देती रही। बातों-ही-बातों में चंपा ने यह ज़ाहिर कर दिया कि वह ज्ञानदेव की एकांत पुजारिन है। ज्ञानदेव के लिए वह जीवन का भी त्याग किसी-न-किसी दिन अवश्य कर देगी।

चंपा ने कहा—"ज्ञान बाबू, शुद्ध हृदय से ही मैं अपने आराध्य की पूजा करती हूँ, और करती रहूँगी। वही दान श्रेष्ठ है, जो बिना किसी प्रतिदान की आशा से दिया जाता है—कुछ देकर कुछ लेना तो व्यापार है। इस विनिमय-पद्धति से जीवन चलानेवाले जघन्य हैं, पतित और कृपण हैं।"

ज्ञानदेव सरल स्वभाव का नवयुवक था। उसने चंपा के इस कथन को सत्य ही माना। नारी-चरित्र की गहनता का ज्ञान ज्ञानदेव को न था। उसने सदा महिलाओं से अपने आपको दूर ही रक्खा — व्यवहार से ही नहीं, मन से भी पद्मा को उसने पहली बार देखा। वह मानो उसकी जन्म-जन्मांतर की सहचरी थी। देखते ही दोनो ने दोनोंको

पहचाना और साथ हो गया । दोनों का साथ बिना किसी आडंबर या रोमांस के ही हो गया । न प्रेम-प्रदर्शन के चोंचले और न विरह-वेदना, न आशा-निराशा की हिलोरें और न व्यग्रता-विकलता । मानो ज्ञानदेव ने पद्मा को देखते ही चौंककर पूछा—"अरे, तुम ! कहाँ थीं अब तक ?"

पद्मा ने ज्ञानदेव को देखते ही कहा—"मेरे जन्म-जन्मांतर के साथी, मुझे छोड़कर अब तक कहाँ थे देवता ?"

ज्ञानदेव या पद्मा में से किसी ने भी अपने को अपरिचित नहीं माना, न यही ख्याल किया कि दुनिया क्या कहेगी ।

ज्ञानदेव ने पद्मा के चरणों पर अपने आपको न्योछावर कर दिया, पद्मा ने उसे उठाया, अपना सुहाग-सिंदूर बनाकर माँग पर स्थान दे दिया । यह काम अनायास ही हो गया ।

शरीर में लंबी-लंबी हड्डियाँ होती हैं, कोई डेढ़ फ़ुट की, तो कोई एक फ़ुट की । ये सारी हड्डियाँ भीतर छुपी होती हैं । इन हड्डियों का न तो भार ही हमें सताता है, न इनके कारण कष्ट ही होता है । ठीक इसके विपरीत यदि सुई-जैसा भी एक तिनका शरीर में घुस जाता है, तो वहाँ उसके लिए स्थान नहीं है—हम उसे बाहर निकालकर ही दम लेते हैं, जब तक वह अनाहूत अतिथि शरीर से बाहर नहीं निकलता, मन-प्राण व्यग्र ही रहते हैं ।

इसी तरह चंपा ने ज्ञानदेव के भीतर प्रवेश किया । वह हाय-हाय करने लगा । वह सुई-जैसी थी, किंतु ज्ञानदेव के सारे शरीर को व्यग्र कर रही थी । वह उसे ज्यों-ज्यों बाहर निकालना चाहता था, भीतर घुसती जाती थी । ज्ञान ने अपने चारों ओर जो परकोट बनाया था, उसमें उस दिन दरार पड़ गई थी, जिस दिन पद्मा के चाभी भेजवाने की समस्या उठ खड़ी हुई थी ।

चंपा ने सावधानी से भीतर प्रवेश किया, वहाँ स्थिर हो गई । थोड़ी-सी असावधानी भी जीवन की दिशा को बदल देने की

ताकत रखती है। चंपा आई और दूसरे तथा तीसरे दिन भी आई। ज्ञानदेव उस समय की प्रतीक्षा करने लगा, जिस समय चंपा आने का वादा करके जाती। चंपा ने भाँप लिया कि अब वह ज्ञानदेव के अंतर में प्रवेश कर चुकी है। इतना तो हुआ, किंतु इस बात की चिंता उसे हर घड़ी बेचैन करती रहती थी कि वह जहाँ तक पहुँच चुकी है. वहाँ टिक सकेगी या नहीं। ज्ञानदेव की रुचि के अनुकूल बनना आसान न था। चंपा की आदतें दूसरे प्रकार की थीं। वह नई सभ्यता की रंगीनियों में सराबोर थी। ज्ञानदेव बहुत ही कठोर और संयमित जीवन व्यतीत करने का अभ्यासी था। वह ज़रा-सा भी हल्कापन या छिछोरापन बर्दाश्त नहीं करता था। वह ऊँचे विचारों का पोषक था। चंपा थी तो औरत ही। वह पुरुषों को सही-सही समझने की विचित्र क्षमता रखती थी। तरह-तरह की रुचि-प्रकृति के साहब बहादुरों से मेल-मुलाकात बढ़ाकर अपना उल्लू सीधा करना ही चंपा का पेशा था। वह धोखा देना जानती थी, धोखा खाना नहीं। वह जानती थी कि गिरगिट की तरह कैसे तुरंत रंग बदला जा सकता है। वह यह भी जानती थी किस घोड़े की कैसी आदत होती है, सवार यदि इतना भी न जाने, तो बलवान् घोड़ा उसे उठाकर पटके बिना नहीं रहेगा।

चंपा फूंक-फूंककर एक-एक कदम बढ़ाती थी—सरपट दौड़ने का उसे अभ्यास भी न था। चौथी या पाँचवीं बार की मुलाकात ने चंपा को और भी साहस दिया जिस तरह कमल की एक-एक पंखुरी सूर्य की किरणों के स्पर्श से खुलती जाती है, उसी तरह चंपा के मन की एक-एक पंखुरी खुलती गई, और अंत में प्रत्येक पंखुरी सुनहली किरणों में मुस्कुराने लगी

जब ज्ञानदेव के हाथ में चाय की प्याली देते समय चंपा ने कुछ लजाकर और कुछ मुस्कुराकर उसकी ओर अपनी सुंदर कजरारी आँखों से देखा, तो वह काँप उठा। जिस तरह एक्स-रे की अदृश्य

किरणें लोहा, काठ, चमड़ा, मांस सबको पार करती हुई उस पार निकल जाती हैं, उसी तरह चंपा की अर्द्धनिमीलित आँखों से जो पागल बना देने-वाली किरणें निकलीं, वे ज़ोरदार तो थीं ही, साथ ही एक्स-रे की किरणों की तरह अदृश्य भी थीं। ज्ञानदेव कुछ देख न सका। उसने अनुभव किया कि उसका सिर घूम रहा है। इसके बाद उसने अनु-भव किया कि पलकें भारी हो गई हैं और ललाट तवे की तरह तप्त हो गया है।

क्षण-भर में ही ज्ञानदेव की आँखें झपक-सी गईं। उसने अनुभव किया कि दो कोमल बाँहें उसकी गर्दन में लिपटी हुई हैं, उसके होंठों पर कोई ऐसी चीज़ रखी हुई है, जो गरम है, कोमल है, और काँप रही है। एक क्षण में ही यह सब कुछ हो गया, ऐसी बात न थी। धीरे-धीरे ही यह परिस्थिति अस्तित्व में आई, किंतु ज्ञानदेव की अवस्था ऐसी हो गई थी कि वह अपने को झटका देकर पीछे की ओर ढकेल नहीं सकता था। उसके सारे शरीर की शक्ति हठात् गायब हो चुकी थी, वह एक जीवित, किंतु चेतना-चेष्टा-हीन पुतला-मात्र रह गया था।

चेतना का एक ज़ोरदार झटका लगा, और ज्ञान की स्मृति लौट आई। उसने देखा कि चंपा सोफ़े पर बैठी है, और ज़ोर-ज़ोर से साँस ले रही है। ज्ञान का भी यही हाल था। एक मिनट में ही ज्ञान ने अपने को इतना श्रांत पाया कि वह यदि चाहता भी तो एकाएक सोफ़े से उठकर खड़ा नहीं हो सकता था उसकी दोनो टाँगें पीपल के पत्ते की तरह काँप रही थीं, ललाट पसीने से तर था, और सिर के भीतर खून उबाल खा रहा था। चंपा स्वस्थ थी। अभ्यासी होने के कारण उस पर इस तरह की घटना का कोई असर न था, फिर भी उसने नई नवेली की तरह छिपी नज़रों से ज्ञान की ओर दखा, और मुस्कुराई। उसकी मुस्कान उसके होठों के इस छोर से उस छोर तक एक हल्की लहर पैदा करके विलीन हो गई। ज्ञानदेव भी मुस्कुराया।

ज्ञानदेव का मुस्कुराना ज़हर था, उसे तो रोना चाहिए था, किंतु होनहार प्रबल होता है । चंपा डर रही थी जो साहस उसने किया था, वह उसके लिए घोर घातक भी हो सकता था, किंतु ज्ञानदेव की मुस्कुराहट ने उस मेमने को शेरनी बना दिया । उसका मन आनंद से भर गया ।

चंपा चली गई । जाते समय ज्ञानदेव ने आग्रह किया कि वह कल फिर आवे, किंतु चंपा ने सिर झुकाकर कहा—"दो-चार दिनों के लिए घर जाना चाहती हूँ ।"

ज्ञानदेव मन-ही-मन छटपटा उठा, किंतु बोला—"मैं कैसे आपको जाने से रोक सकता हूँ । लाचारी है, तो जाइए, किंतु ...... ।"

चंपा ने ज्ञानदेव का हाथ पकड़कर कहा—"ज्ञान, मैं तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगी । तुम उदास क्यों होते हो ?"

चंपा की एक-एक बात ज्ञानदेव के लिए एक-एक बोतल शराब का काम करती । वह प्रसन्न हुआ । चालाक चंपा "दो-चार दिन नहीं आऊँगी ।" कहकर यह देखना चाहती थी कि ज्ञानदेव पर इसकी कैसी प्रतिक्रिया होती है । उसने आने का स्नेह-भरा वादा करके फिर से देख लिया कि ज्ञानदेव पर इसकी कैसी प्रतिक्रिया है । धूर्त्त औरत नर-भक्षी शेर से भी अधिक भयानक होती है, इसका ज्ञान भोले-भाले ज्ञानदेव को न था । वह विद्वान् था, चरित्रवान् था, दृढ़-निश्चयी था, किंतु मनुष्य भी था । मानवीय दुर्बलताएँ भी उसके भीतर थीं, जिनका परिचय उसे पहले नहीं मिला था । मानव के जो सहजात गुण होते हैं, वे मिटाए नहीं जा सकते उन्हें उभरने न देना ही बहुत बड़े बहादुर का काम है । गुण शब्द यहाँ अपने व्यापक अर्थ में है । मा की गोद से उतरकर ज्ञान पिता की गोद में सुरक्षित रहा, और जब पिता की गोद से वंचित हुआ, तो पद्मा ने उसे अपने संरक्षण में ले लिया । उसकी दुनिया बहुत ही सीमित थी, यद्यपि ज्ञान विशाल था ।

चंपा के जाने के बाद ज्ञानदेव जब रात को सोने गया, तब उसने कमरे में देखा, पद्मा की चोटी का एक रिबन तकिए के नीचे से झाँक रहा है। उसका कलेजा धड़क उठा। तकिए में पद्मा के बालों की सुपरिचित महक आ रही थी। उस महक ने ज्ञानदेव को अर्ध-विक्षिप्त-सा बना दिया। सामने दीवार पर पद्मा की एक बहुत बड़ी-सी तस्वीर मुस्कुरा रही थी—वह दुल्हन के वेश में थी। उस तस्वीर के नीचे ही हुक में पद्मा की एक नीमास्तीन लटक रही थी। वह सारा घर पद्मामय था। जगह-जगह से पद्मा की स्मृति पवित्र किरणों की तरह फूटी पड़ती थी। ज्ञानदेव खाट से नीचे उतरा, और घूम-घूमकर पद्मा की प्रत्येक चीज को छूने और चूमने लगा। उसे ऐसा लगा कि उसका मानसिक सन्तुलन खराब होता जा रहा है। पद्मा—उसकी पद्मा यहाँ नहीं है, और वह एक दूसरी स्त्री से हौले-हौले निकटता स्थापित करता जा रहा है, जैसे अजगर की आँखों के आकर्षण से अपने आप खिचा हुआ शिकार उसकी पकड़ के भीतर चला जाता है। शिकार जानता है कि वह मौत के मुह में जा रहा है, किंतु अपने को रोक नहीं सकता—यही हाल ज्ञान का भी था। वह खाट पर बैठ गया, और हाथ मल-मल कर पछताने लगा—वह अपनी उच्चता को गँवाता जा रहा है। यह ज्ञान के लिए मौत थी, बुरी मौत। अपने आपको गँवाकर जीवित रहनेवाला मानव मुर्दा ही तो है।

भयानक और प्यारा सत्य

सत्य और न्याय को कोई भी सुन्दर नहीं मानता—दोनों का का रूप बहुत ही भयंकर होता है।

ज्ञानदेव के सामने सत्य ने जब अपना रूप-विस्तार किया, तो वह चीख उठा। उसने सत्य के प्रिय रूप का ही अब तक साक्षातकार किया था। जैसे ही उसने सत्य के भयानक रूप को देखा, उसके होश हिरण हो गए। उसने एक ही सप्ताह में जान लिया कि चंपा उसके लिए मौत की दूती बनकर आई है। वह अपने ऊपर झुँझलाया कि वह इतना कमजोर है कि जो रंगीन डोरे उसके मन-प्राणों को बाँधते जा रहे थे, उन्हें वह एक ही झटके में तोड़ने में आलस्य क्यों करता रहा। यह तो उसका ही अपराध था। वह जरूर ही उन गन्दे बन्धनों को मन-ही-मन पसन्द करता होगा। यदि वे बंधन अप्रिय होते, तो ज्ञान उन्हें अपनाता ही क्यों?

ज्ञान ने सोचा, जरूर मेरे भीतर हीनता छिपकर बैठी है, यदि यह दोष न होता तो, तो वह चंपा की ओर दूसरी बार लौटकर देखने का प्रयास ही क्यों करता। अत्यन्त गहराई में छिपी हुई हीनता मानव को अनजाने ही हीन स्थिति में पहुँचा देती है।

अज्ञानी तो डूब जाता है, किन्तु जिसकी आत्मा सजग होती है, वह चौंककर सोचने लगता है कि मैं यहां कैसे पहुँच गया ।

ज्ञानदेव ने अपने आप से पूछा—"तुम यहां कैसे पहुँच गए ? तुमने तो सदा से इस मार्ग के प्रति घृणा के ही भाव सजोए थे, न केवल वचन से ही, बल्कि स्वभाव से भी अपनी मानसिक स्थिति को बलंदी पर रखा, इस बार क्या हुआ जो नीचे खिसकने जा रहे हो।"

एक बात और है। ज्ञान ने पद्मा को एक पुरुष की तरह प्यार नहीं किया था । वह जानता ही नहीं कि प्यार कैसे किया जाता है, या मुग्ध होने के तौर-तरीके क्या हैं। पद्मा एकाएक उसके तन-प्राणों पर छा गई, और ज्ञान ने यह अनुभव किया कि बिना पद्मा के वह एक क्षण भी अपने को कायम नहीं रख सकता। ज्ञान ने अपने भीतर जिस अभाव का अनुभव किया, उसकी पूरक पद्मा थी । पद्मा को पाकर ही उसने अपने को पूर्ण माना था । इसमें प्यार-दुलार की बात कहाँ आती है ?

एक वर्ष तक पद्मा के साथ रहने पर ज्ञान ने यह जाना कि औरत प्यार भी करती है, और उसे भी प्यार किया जा सकता है। पद्मा ने नाना उपायों से ज्ञान को इतना ज्ञान दिया, तो ज्ञान उसे प्यार भी करने लगा ।

ऐसे पद्मा के दिए हुए ज्ञान ने ज्ञानदेव को चंपा की ओर ज़रा-सा झुका दिया—औरत प्यार करता है, और उसे भी प्यार किया जा सकता है ।

ज्ञानदेव ने सिर झुकाकर सोचा—उसे कोई अधिकार नहीं कि वह किसी दूसरी औरत को प्यार करने दे, या खुद भी उसे प्यार करे। यह तो घोर अनैतिक कर्म है । वह सिहर उठा, और पद्मा की तस्वीर की ओर देखने का भी उसे साहस नहीं हुआ ।

ज्ञानदेव सारी रात सो नहीं सका । जब-जब वह सोता,

उसे ऐसा लगता कि पद्मा उसके सामने खड़ी है, और कह रही है —"तुम देवमन्दिर में कसाईखाना खोलना चाहते हो ? सावधान !"

ज्ञानदेव ने ऐसे भयानक हृदय-मन्थन का सामना कभी नहीं किया था। वह अपनी शांति को बार-बार पुकारता था, जो अब कुछ दूर भाग गई थी। न तो वह स्वाध्याय में ही तन्मय हो सकता था, और न शुद्ध आनन्द का ही अनुभव कर सकता था। यह उसके लिए एक मृत्युयंत्रणा थी। वह अपनी पहले-जैसी स्वस्थ मानसिक अवस्था की ओर लौट आना चाहता तो था, किन्तु जोर लगाने पर भी सफल नहीं होता था।

ज्ञानदेव ने अन्त में घबरा कर काशी जाने का निश्चय किया। वह सवेरे की गाड़ी से काशीपुरी की ओर चल पड़ा।

जब वह काशी पहुँचा, तो उसके पास एक छदाम भी न था। दरवाजे पर ही उसका अर्दली मिला, जो पद्मा के साथ गया था। वह अचानक मालिक को देखकर घबराया और मुस्कुराया भी।

घर के अन्दर घुसते ही रत्ना नजर आई। वह हँसकर बोली—"ज्ञान भैया, पैदल ही आ रहे हो क्या ?"

ज्ञानदेव ने कहा—"पहले टैक्सी का भाड़ा तो दिलवा दो, तब शब्दों से मुझे पीटना।"

पद्मा ने जब ज्ञानदेव के आने का संवाद सुना, तो बहुत नाराज़ हुई।

वह बोली—"यह भी कोई तमाशा है दीदी, अभी एक सप्ताह भी मुझे आए नहीं हुआ, दौड़े आ गए।"

दीदी ने कहा—"एक सप्ताह की तो बात ही दूर रही पद्मा, पूछो तो तुम्हारे भक्त ने भोजन भी किया है, या अनशन ही करते रहे ? देखती नहीं, कई दिनों से हजामत भी नहीं बनवाई है। कपड़े भी गन्दे हैं और हजरत की गाँठ में एक छदाम भी नहीं है।"

पद्मा ने नाक पर उँगली रखकर कहा—"हैं, इतनी दूर आए क्या ? उफ़, न घर पर चैन लेने देते हैं, और न बाहर !"

रत्ना बोली—"भेज देती हूँ, खुद ही पूछ लो। तुम्हारे मन की बात दूसरा कौन जान सकता है।"

ज्ञानदेव पद्मा के निकट आया, तो पद्मा ने बिगड़ कर पूछा—"क्यों आए ?"

ज्ञानदेव ने कहा—"मन नहीं लगा, तो क्या करूँ पद्मा।"

पद्मा ने फिर सवाल किया—"क्या हालत बना रखी है तुमने ? क्या हजामत बनाने की भी फुरसत नहीं थी ?"

ज्ञानदेव ने जवाब दिया—"कौन मुझे याद कराता कि हजामत भी बनानी चाहिए। जैसे था, वैसे ही चला आया।"

पद्मा ने वकील की तरह फिर पूछा—"सुना है, तुम्हारे पास एक भी पैसा नहीं है। मैं जो बहुत से रुपए रख आई थी, सो ?"

ज्ञानदेव ने कहा—"मैं क्या जानूँ। तुम्हारे तकिए के नीचे कुछ रुपए थे, जिनकी बदौलत यहाँ तक पहुँच गया।"

पद्मा बोली "तुम थर्ड में आए क्या ?"

ज्ञानदेव ने कहा—"यहाँ आना था, आ गया; थर्ड और रिजर्व सेलून की बात मैं नहीं जानता, पद्मा !"

पद्मा ने सिर पीट लिया और कान उमेठकर कहा—"मुझसे गलती हो गई। अब तुम्हें अकेला छोड़ना भी पाप है। मैं अगर ऐसा जानती, तो साथ ही लिए आती।"

शास्त्रीजी जब विश्वनाथ बाबा के दर्शन करके लौटे, तो अइया ने कहा—"तुम्हारा बेटा आया है।"

शास्त्रीजी बोले—"मैंने कहा था कि पद्मा को लौटा दो। दोनों को अलग रखना क्या है, दोनों की जान लेना है। ज्ञान अभी बिलकुल ही नादान है।"

अइया सब जानती थीं, उनसे कुछ अगोचर न था। वह बोलीं—"यह बात सही है। ज्ञान एक ही सप्ताह में ऐसा लगता है कि

एक महीने का रोगी हो। कपड़े भी गन्दे हैं और हजामत भी उसने नहीं बनवाई। सिर के बाल रूखे और उलझे हुए हैं। यह ठीक नहीं है। शुरू से ही वह पद्मा का आज्ञाकारी सेवक बना हुआ है।"

शास्त्रीजी ने कहा—"वह इतना सरल है कि मैं तो कभी-कभी घबरा जाता हूँ। पद्मा को आज ही भेजो। पता नहीं, वह अपनी कोठी पर रक्षा का प्रबन्ध भी करके आया है, या यों ही भागता चला आया।"

अइया ने कोई जवाब नहीं दिया। जब ज्ञान अइया को प्रणाम करने गया, तो उसकी शकल देखकर उन्हें बड़ा क्लेश हुआ। पद्मा को बुलाकर अइया ने डाँटते हुए कहा—"क्यों री, तुझसे किसने यहाँ आने को कहा था? आना ही था, तो ज्ञान के आराम की व्यवस्था करके आती। देखती नहीं, उसका क्या हाल हुआ है।"

पद्मा ने सिर झुकाकर कहा—"वह संसार की बात सोचते हैं, किन्तु अपनी बात सोचने की फुर्सत नहीं है। वह बच्चे तो नहीं हैं।"

अइया का क्रोध भड़का। उन्होंने चिल्लाकर कहा—"बात करती है मुझसे। लड़के की जान लेना चाहती है क्या? अभागी, तू अभी जाने का इन्तजाम कर। ज्ञान की दशा देखी नहीं जाती–हे राम, हे राम!" आवेश में अइया रोने लगी, और अपराधिनी की तरह पद्मा खड़ी रही। जब मन स्थिर हुआ, तब अइया ने फिर कहा—"संसार में ज्ञान के अतिरिक्त और तेरा कौन है पद्मा? मा-बाप, बहन सबको भूलकर उसके चरणों की सेवा कर। यदि चूक गई तो नरक में भी तुझे ठौर नहीं मिलेगा, यह मेरा शाप है।"

पद्मा सिर से पैर तक बेंत की तरह काँप उठी—यह मेरा शाप है, मा का, स्नेहमयी जननी का शाप, हे भगवान्, इससे कौन रक्षा करेगा?"

पद्मा ने धीरे-से कहा—"अइया क्षमा कर दो, अब भूल नहीं होगी ।"

अइया ने पद्मा का ललाट चूमकर कहा—"बेटी, आर्य देवियों का आदर्श ग्रहण करो । हम भारतीय हैं, और हमें अन्त तक भारतीय ही रहना है ।"

छोटे-से अपराध के लिए पद्मा को भयानक दंड भोगना पड़ा । उसने ज्ञानदेव से पूछा—"कोठी पर किसे रक्खा है ?"

ज्ञानदेव ने कहा—"किसी को भी नहीं ।"

"कमरों में ताले लगाए गए या नहीं ?" पद्मा ने फिर गृहस्वामिनी के पद से पूछा ।

ज्ञानदेव ने छोटा-सा जवाब दिया—"महाराजिन से ताला लगाने को कह दिया है ।"

पद्मा ने सिर पर हाथ रख कर कहा—"सब लुटवा दिया तुमने । चलो, आज ही जाना होगा । कुछ बचा या सभी समाप्त हो गया ?"

जब ज्ञानदेव अचानक काशी चला गया, तब चंपा आई । उसे पता चला कि ज्ञान हठात् चला गया । वह झुँझलाई, और मन-ही-मन बोली—काशी जाओ या जहन्नुम । अब तुम भाग नहीं सकते ज्ञान । एक पद्मा भारी विघ्न है, सो उसकी व्यवस्था भी करती हूँ, फिर तुम्हें बन्दर की तरह न नचाऊँ तो मेरा नाम चंपा नहीं ।

ज्ञानदेव पद्मा के साथ लौट आया । कुशल ही कहना चाहिए कि एक भी चीज चोरी नहीं गई, नहीं तो पद्मा की झिड़कियाँ उस सरल-हृदय नवयुवक को बेजार कर देतीं ।

जब पद्मा लौट आयी, तब ज्ञान ने अनुभव किया कि उसके सिर से सनीचर उतर गया ।

पद्मा ने कहा—"तुमने मुझे कैद कर लिया । मा इतना नाराज़ हुई कि क्या कहूँ । बाबा क्रोध से तिलमिला रहे थे । तुम्हें दस दिन के लिए छोड़ कर क्या गई, भारी अपराध कर दिया ।"

ज्ञानदेव ने कहा—"मुझे भी साथ क्यों नहीं ले लिया था ?"

पद्मा बिगड़ उठी और बोली—क्या तमाशा है। मैं जहाँ-जहाँ जाऊँ, तुम्हें ढोए फिरूँ—ऐसा भी कहीं होता है ?"

ज्ञानदेव ने कहा—"होता तो नहीं है, किन्तु तुम एक नई परंपरा की नीव दो।"

पद्मा खिलखिला कर हँस पड़ी और बोली—"भगवान् से मनाती हूँ कि अगले जन्म में तुम मेरी पत्नी बनो और मैं तुम्हारा पति।"

ज्ञानदेव बोला—"मैं तो इसी जन्म से यह मानने लगा हूँ कि मैं तुम्हारी पत्नी हूँ और पूर्ण आज्ञाकारिणी पतिव्रता पत्नी।"

पद्मा हँसती-हँसती लोट-पोट हो गई। जब हँसी का वेग कुछ कम हुआ, तो बोली—क्या पूर्व जन्म तक प्रतीक्षा करना भारी लगा ?"

ज्ञानदेव ने कहा—"बहुत भारी। अब मैं क्या करूँ ? आज्ञा दीजिए।"

पद्मा फिर हँसी और बोली—"किसी दूसरी स्त्री के सामने न जाना, अकेले घूमने मत जाना, बिना मेरा रुख देखे किसी से बात मत करना, मुझे छोड़कर बहन के साथ माता-पिता के यहाँ मत जाना—याद कर लो।"

ज्ञान का हृदय हठात् धक्धक् करने लगा। चंपा और उसकी करनी एकाएक उसे याद आ गई। जब पद्मा नहीं थी, तब उसने चंपा से निकटता पैदा तो नहीं की थी, किन्तु निकटता को आगे बढ़ने से रोका नहीं था—अपने को पीछे नहीं हटाया था। ज्ञानदेव सोचने लगा, यह अक्षम्य अपराध हुआ—उसका मन रह-रह कर कराह उठता था।

पद्मा हँसती हुई फिर बोली—"चुप क्यों हो गए ? पत्नी बनना क्या कठपुतली का नाच है ? अभी बहुत से नियम हैं, जिनका पालन तुम्हें करना होगा।"

ज्ञानदेव बोला—"पद्मा, तुम मुझे एक क्षण के लिए भी अकेला मत छोड़ो। यदि फिर तुमने ऐसा किया, तो मैं पागल हो जाऊँगा। मुझे भय लगता है, तुम पर निर्भर रहने के कारण आत्मनिर्भरता बिल्कुल ही नहीं रही, और अब उसकी जरूरत भी मैं नहीं समझता पद्मा !"

पद्मा स्नेह-भरे स्वर में बोली—"मैं स्वयं इन चरणों से विलग नहीं हूँगी, मां ने जो शाप दिया है, वह मेरे मन प्राणों को त्रस्त कर रहा है।"

ज्ञानदेव पूर्ण संतोष से बोला—"जरा मैं संभल लूं, तो फिर जाना। अभी मेरे मन का फिर से गठन हो रहा है। आरम्भिक अवस्था है। इसीलिए तुम्हें विशेष सतर्क रहना पड़ेगा।"

पद्मा इस रहस्यवाद को नहीं समझ सकी, और उसने पूछा भी नहीं कि इसका अर्थ क्या है। ज्ञानदेव चम्पा की सारी कहानी कह देना चाहता था, किन्तु जिस कमजोरी ने उसे चंपा के अत्याचार को सहने के लिए तैयार किया था, उसी ने चंपा की बात को छिपाने का पाप भी ज्ञानदेव से करा दिया।

बार-बार मुंह तक बात आकर रुक जाती थी—ज्ञान ने अपना साहस और सत्य गँवा दिया था। वही व्यक्ति सत्य के निकट है, जिसके मन में किसी तरह की भी कुंठा न हो, उसका व्यवहार इतना सरल हो कि किसी से डरने या छिपाने की जरूरत न हो,। ज्ञानदेव ने चम्पा की बात को छिपाकर अपने शुद्ध व्यवहार को किसी अंश तक कलंकित ही किया। पद्मा के प्रति उसके हृदय में जो पावन अनुराग था, वह आकाश-गंगा की तरह निर्मल था। आकाश में कीचड़ की संभावना तो है ही नहीं। चम्पा की बातों को छिपा कर उसने उस आकाश-गंगा को धरती पर की गंगा बना दिया, जिसमें कीचड़ भी रहता है, मछली, कीट आदि भी रहते हैं, बाढ़ के कारण दूसरे प्रकार की विकृतियाँ भी पैदा हो जाती हैं। ज्ञान का

स्नेह अब तक गंगा की ही तरह पावन था, किन्तु यही थोड़ा-सा अन्तर पैदा हो गया था, जिसका अनुभव ज्ञान करता था, और भीतर-ही-भीतर कटा जाता था ।

पद्मा तो कुछ जानती भी नहीं थी कि बात क्या है । वह ज्ञान को पहले जैसा ही समझती थी, किन्तु ज्ञान स्वयं अपने को कुछ मलीन पाता था । उसकी आत्मशुद्धि हो जाती, यदि वह निर्विकार चित्त से चंपा की कहानी पहली मुलाकात में ही पद्मा को सुना देता । ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, ज्ञान चंपा की कहानी सुनाने के अधिकार को गँवाता गया ।

लीला आई । वह बिना किनारी की धुली हुई साड़ी पहने और बाल खोले विधवा या सन्यासिनी की तरह लगती थी । उसके अंतर की शांति चेहरे पर झलकने लग गई थी । मन की कुरूपता मिटते-मिटते भी समय लगता है, और लीला रात-दिन प्रयास करके उसे मिटा रही थी । अब लीला बाहर के शृंगार का त्याग करके भीतर के सौंदर्य को बढ़ाने में लगी थी—यह उसका बहुत ही सार्थक प्रयोग था, जिसमें वह सफल होती जा रही थी ।

पद्मा ने बहुत ही स्नेह से लीला को अंक में भर कर कहा—"बहन, मेरा मन काशी में भी तुम्हें ही खोजता था ।"

लीला के चेहरे पर मधुर मुस्कान दौड़ आई । वह बोली—"सभी मुझे भूल जाने में ही सुख मानते हैं, किन्तु तुम याद करके प्रसन्न होती हो ?"

पद्मा बोली—"मैं भी तुम्हें भूल जाना ही चाहती थी लीला, किन्तु अब तो तुम मेरे प्राणों की सखी बनती जा रही हो ।"

लीला मुस्कुराई । उसने जवाब नहीं दिया । खाली घेड़े से आवाज निकली है, जब घड़ा भर जाता है, तो वह छलकता नहीं । अपने आनन्द को अपने ही भीतर समेटकर आनन्द का शाश्वत रस लेना साधारण व्यक्तियों के किए असाधारण बात है ।

लीला का मन आनंद से तो जरूर भर गया, किन्तु अब वह आनन्द और दुःख को पचाने का अभ्यास करने लग गई थी। किसी गुण की साधना कोई जान कर करता है, और कोई अनजाने ही करने लग जाता है, और वह जानता भी नहीं कि अनजान रह कर भी उसने कितना बड़ा काम किया है।

लीला अपने को पथराने की चेष्टा जरूर कर रही थी, जिससे आघातों को वह आसानी से सह सके। अपने को अच्छी तरह अपने भीतर समेट लेने का फल यह हुआ कि वह भीतर से कुछ स्थिर हो गई।

ज्ञानदेव अब लीला से कुछ-कुछ निडर हो गया था। वह बोलता भी था, और ध्यान से सुनता भी था लीला की बातों को। वह भी निकट ही बैठा था, और बोला—"तुम इतना उदास क्यों हो लीला ?"

लीला ने मुस्कुरा कर कहा—"पद्मा बहन, सुन रही हो, ज्ञान भइया क्या पूछ रहे हैं ? किसी को जब विशेष घेर लेता है, तो वह महीनों से बीमार रहने पर भी इतना उछलता-कूदता है कि दो-चार स्वस्थ व्यक्ति भी उसे संभाल नहीं पाते। इसके बाद जब बीमारी से उसे त्राण मिल जाता है, तो वह इतना कमजोर हो जाता है, कि चारपाई पर करवट भी बदल नहीं सकता। यही दशा मेरी भी है। अब मैं चारपाई पर पड़ी हुई हूँ, हिल भी नहीं सकती। रोग जो भाग गया।"

पद्मा ने लीला की बातों को समझ लिया, किन्तु ज्ञानदेव कुछ भी समझ नहीं सका। अत्यंत विद्वता भी किसी हद तक मूर्खता का ही रूप दे देती है—ज्ञानदेव का यही हाल था। वह नजदीक की बातों को समझ ही नहीं सकता था—बराबर दूर-दूर की चौकड़ियाँ भरा करता था।

पद्मा बोली—"लीला दीदी, अच्छाई से ही अच्छाई नहीं निकलती। बुराई से भी अच्छाई प्रगट हो जाती है। धन्य हो तुम, मैं तुम्हारे सामने नत-मस्तक हूँ बहन।"

लीला कुछ बोलने की स्थिति में नहीं थी। वह सोच रही थी, काजल बनकर ही किसी के आँखों में स्थान पाया जा सकता है, कंकड़ बनकर नहीं। किन्तु काजल बनना क्या आसान है भगवान।

विलायती सेंट से लिपटी हुई हवा का एक अनंत उन्मादक झोंका आया, और पर्दा उठाकर मुस्कुराती हुई चंपा रंग-मंच पर शान से पधारी। उसने बहुत ही सादा किन्तु घातक शृंगार किया था—सादगी में भी इतना बाँकपन हो सकता है, इसका ज्ञान न तो ज्ञानदेव को था, और न पद्मा या लीला को। उसके अंग-अंग से उस दिन विलास की लुनाई फूटी पड़ती थी।

स्वागत-संभाषण के बाद चंपा बोली—"पद्मा देवी के जाने के बाद आज ही मुझे भी इधर आने का मौका मिला है। आप लोग स्वस्थ तो रहे ?"

ज्ञानदेव काँप उठा। चम्पा भी छिपाना चाहती है कि वह पद्मा की गैरहाजिरी में यहाँ नहीं आई। यह छिपावट बतलाती है कि चम्पा के मन में भी चोर छिपकर बैठा हुआ है। ज्ञान ने सोचा कि अच्छा ही हुआ जो उसने चंपा का कोई जिक्र पद्मा से नहीं किया। यदि कह देता तो क्या होता—बात में फर्क पड़ जाता और यहीं से गलतफहमी का दुर्भाग्यपूर्ण अविर्भाव होता, ऐसी गलत-फहमी ,जो जीवन को रौंद डालने की, स्वर्ग को नरक बनाने की बहुत बड़ी ताकत रखती है। चंपा ने ज्ञान को भी अपने साथ समीटा, और कहा—"क्यों ज्ञान बाबू, आप चुप क्यों हैं ? पद्मा बहन के जाने और लौट आने की सूचना तक आपने मेरे पास नहीं भेजवाई।"

ज्ञानदेव ने झूठ बोलने का प्रयास किया, किन्तु अभ्यास न रहने के कारण वह बोल न सका। उसने मध्यमार्ग अपनाया—मौन।

पद्मा बोली—"इन्हें आप क्यों दोष देते हैं, यह काम तो मेरा था। मैं सोच ही रही थी कि आप को खबर भेजबा दूँ कि देखती

क्या हूँ कि बहनजी गुस्से में भरी खड़ी पधार रही हैं । आपने मौका ही कहाँ दिया ।"

हँसी की एक लहर पैदा हुई, और कमरे के इस छोर से उस छोर तक फैल गई ।

इस हँसी के तूफ़ान में यह किसी ने अनुभव नहीं किया कि ज्ञान-देव का मन कितना भारी हो गया है । वह सोच रहा था, चंपा तो पद्मा को धोखा दे रही है, वह भी इस जघन्य व्यापार में चंपा का साथ दे रहा है । उसने यह साफ़-साफ़ अनुभव किया कि उसका यह नैतिक पतन ही हुआ है, जो वह अपनी साध्वी जीवन-सहचरी को धोखा देने के कार्य में योग दे रहा है ।

चंपा कभी-कभी छिपी नजरों से ज्ञानदेव को देख लेती थी, तो ज्ञानदेव डर जाता था—उसे इस बात का डर होता था कि कहीं चंपा का इस तरह देखना पद्मा न देख ले, और उसके मन में संदेह पैदा हो जाय ।

यह एक छोटी-सी बात थी, जिसे पद्मा देखकर भी नहीं देखती, किंतु ज्ञान के लिये छोटी बात न थी ।

जब लीला चली गई, और पद्मा भी कपड़े बदलने ऊपर चली गई, तो चंपा ने धीरे से ज्ञानदेव से कहा—"कल रात को ठीक सात बजे मैं मार्डन स्टोर में रहूँगी । आ जाना । जरूरी काम है । धोखा मत देना ।"

ज्ञान के शरीर में फिर सनसनी पैदा हो गई । वह इनकार नहीं कर सका, तब चंपा ने कहा—"अपनी रानी जी के साथ मत आना—याद कर लो ।"

ज्ञानदेव ने सिर हिलाकर मंजूरी दे दी ।

पद्मा जब लोटकर आई, तो वहाँ का वातावरण बिलकुल ही मौन था, शांत था । इतनी बड़ी बात हो गई, किंतु उसका कोई चिन्ह भी कहीं न था । ज्ञान भी पूर्ण गंभीर बना बैठा रहा, और चंपा भी एक तस्वीरोंवाली किताब के पेज एकाग्रता-पूर्वक उलट रही थी ।

ज्ञानदेव भीतर-ही-भीतर फिर कराह उठा। वह अपने ऊपर झुंझलाया, किंतु झुंझलाने से क्या होता है। चंपा के प्रत्येक प्रहार से उसके भीतर की छिपी हुई वह दुर्बलता उभरती थी, जिसका पता उसे न था, वह नहीं जानता कि उसके अंदर शैतान भी छिपकर बैठा है, जो उसके गुणों से बलवान् ही नहीं, क्रियाशील भी है।

ज्ञान पूर्ण रूप से पद्मा का था। उसके अनजानते उसके मन-प्राण का कुछ अंश उससे अलग हो गया, और वह अपना सीमा-विस्तार भी करता जाता था।

मन का खेल

कोई भी अच्छी या बुरी चीज़ जब तक निर्माणावस्था में रहती है, उस पर उसके निर्माता का ज़ोर चलता है। जब वह चीज़ अपनी पूर्णता पा लेती है, तब वह अपने निर्माता से बलवान् हो जाती है, उसके अधिकार की सीमा को लाँघ जाती है। उसके लिये एक स्थान बन जाता है, और उसमें स्थिति भी पैदा हो जाती है।

आप एक पूजा-स्थान को लीजिए। जब तक वह बन रहा हो, बनानेवाला उसे तोड़ भी डाले, तो कोई हर्ज नहीं है, या उसका रूप ही बदल दे, तो भी कोई टोकने नहीं आवेगा। जैसे ही वह पूजा-स्थान अपनी पूर्णता प्राप्त कर लेगा, अपने निर्माता से बलवान् हो जायगा, फिर उस पर हाथ लगाने का साहस उसमें भी नहीं होगा, जिसने उसे खड़ा किया है। यही बात बुराई के संबंध में भी है।

हम अपने मन का दरवाज़ा बंद किए रहते हैं। अपने पसंद के व्यक्तियों को ही भीतर आने देते हैं। भीतर आने के बाद भी कुछ तो स्वयं निकल जाते हैं, और कुछ को हम टिकने नहीं देते। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि सौभाग्य या दुर्भाग्य से कोई इतना बलवान् व्यक्ति हमारे मन के दरवाजे को ढकेलकर भीतर घुस जाता है कि हम मुंह ताकते रह जाते हैं, और वह आसन जमा लेता है। ज्यों-ज्यों

वह अपनी स्थिति को हमारे भीतर मजबूत करता जाता है, हम लाचार होते जाते हैं, फिर उसे निकाल नहीं सकते। वह हमारे जीवन को ही क्यों न रौंदकर बर्बाद कर डाले, उससे त्राण पाना असंभव हो जाता है, क्योंकि हमारे भीतर उसकी स्थिति पूर्णता प्राप्त कर चुकी है।

चंपा और ज्ञानदेव के संबंध में भी कुछ इसी तरह की दुर्घटना हुई। चंपा धक्का मारकर ज्ञानदेव के भीतर घुस गई, और वहाँ जमकर बैठ भी गई। ज्ञानदेव छटपटाता रह गया, उसे निकाल न सका। वह ज्यों-ज्यों उसे खदेड़ना चाहता, वह ज़ोर लगाकर उतनी ही दृढ़ता से अपनी स्थिति को मजबूत बनाती जाती।

दिन बीतने लगा, और संध्या आने लगी। ज्ञानदेव का मन तीव्र और ज्वालामय आनंद का अनुभव करने लगा। वह बार-बार घड़ी की ओर देखता। ठीक सात बजे उसने अपनी छोटी गाड़ी मँगवाकर मार्डन स्टोर की ओर यात्रा की। ड्राइवर को साथ नहीं लिया, और पद्मा से कह दिया कि जरूरी काम है, तुरंत लौटता हूँ। बहाना करने का यह पहला ही अवसर था, और वह भी पद्मा से। भाग्य की विडंबना इसी को कहते हैं।

ज्ञानदेव ने रास्ते में सोचा कि उसने बुरा किया, किंतु अब लौटने का भी कोई उपाय न था।

स्टोर में चंपा बनी-ठनी प्रतीक्षा कर रही थी। रात हो गई थी। वह ज्ञान के बगल में बैठ गई, और बोली—"आ गए। चलो, शहर के बाहर।"

ज्ञान ने गाड़ी का रूख मोड़ा, और देखते-देखते वह शहर के बाहर, पहाड़ियों के बीच से होकर जाने लगा। वसंत की रात थी। हवा में मस्ती थी। फूलों की महक फैल रही थी। चंपा ने सोचकर ही शहर के बाहर जाने की योजना बनाई थी।

चंपा के इशारे पर गाड़ी एक निर्जन पहाड़ी की गोद में रोक दी गई। अपने मित्रों के साथ चंपा बहुत बार इस ओर आई थी। वह

इस स्थान को जानती ही नहीं थी, वहाँ की बहुत-सी सुखद और पीड़ाजनक स्मृतियाँ भी उसने सँजो रक्खी थीं।

चंपा गाड़ी से उतरी, और ज्ञानदेव को भी उतारा। दोनों एक चट्टान पर बैठ गए, जो एक झाड़ी के पीछे थी। बैठते ही चंपा ने ज्ञानदेव के गले में बाँहें डालकर कहा—"तुम बहुत भागते थे। क्या प्रेम विफल होता है? मैंने तुम्हारी पूजा मन-ही-मन की थी। तुमने पद्मा को अपने को सौंपा। मैं बुरा नहीं मानती, किंतु मेरा क्या होगा, यही पूछने के लिये यहाँ लाई हूँ।"

ज्ञानदेव घबरा उठा। वह क्या जवाब देता। चंपा कुछ देर तो चुप रही, किंतु उससे चुप रहा नहीं गया। वह बोली—"बोलते क्यों नहीं। नाराज़ हो क्या? यदि मेरा व्यवहार अरुचिकर हो तो चलो, लौट चलें।"

इतना कहकर चंपा पीछे खिसक कर बैठ गई।

ज्ञानदेव को ऐसा लगा कि जो घोर ऊमस पैदा हो गई थी, वह कुछ कम हो गई—वह साँस ले सकता है। वह यहाँ तक आने के लिये पछताया, किंतु आ चुका था, तो उपाय ही क्या था।

ज्ञानदेव बोला—"यह स्थान कितना निर्जन है चंपा। मैं इधर कभी नहीं आया था।"

चंपा सहज ही छोड़नेवाली औरत नहीं थी। वह बोली—"अब रोज़ आना। मैं इस स्थान को बहुत पसंद करती हूँ। हाँ, यह बतलाओ कि मेरे प्यार का भविष्य क्या होगा? ज्ञान, मैंने सोच लिया है कि या तो तुम्हें अपना बनाऊँगी या पोटासियम्-सायनाइड...।"

ज्ञान व्यग्र होकर बोला—"अरे, ऐसा न करना। यह बुरा काम है—छिः।"

चंपा मन-ही-मन मुस्किराई। वह बोली—"यदि तुम चाहो, तो मेरी जान बचा सकते हो।"

ज्ञानदेव ने सरल स्वभाव से पूछा—"कैसे, बतलाओ?"

चंपा ने कहा—"मुझे अपना लो, यही अंतिम उपाय है।"

इतना कहकर उसने ज्ञानदेव को फिर अपने राक्षसी बंधन में बाँध लिया। ज्ञानदेव से न तो विरोध करते बना, और न उसने अपनी ओर से किसी तरह का समर्थन ही होने दिया। वह निर्जीव मूर्ति की तरह बैठा रहा। उसने अनुभव किया कि वह बेहोश होता जा रहा है। उसके दिमाग़ पर इतना ज़ोरदार दबाव पड़ रहा था कि वह विकल हो गया, उस दबाव से किसी तरह छुटकारा पाने के लिये।

ज्ञानदेव ने धीरे से चंपा को अलग किया, और कहा—"कैसे अपना सकता हूँ चंपा, पद्मा जो है। मैं उसे धोखा दूं, यह जीते-जी नहीं हो सकता।"

चंपा ने कहा—"ज्ञान. पुरुष की तरह सोचो। पद्मा अपनी जगह पर है, और मैं अपनी जगह पर। न तो वह मेरी जगह पर आ सकती है, और न मैं पद्मा ही बन सकती हूँ। यह मान लो वह मदरास की है, और उसके आचार-विचारों का मेल मुझसे नहीं बैठता। उसकी भाषा भी कठिनाई से समझ पाती हूँ।"

ज्ञान सोच-विचार में पड़ गया। उसने कल्पना की आँखों से देखा कि उसकी पद्मा अपने कमरे में बैठी पढ़ रही होगी। वह कल्पना भी नहीं करती होगी कि उसका जीवन-सहचर शहर से सात मील दूर एक निर्जन पहाड़ी के नीचे ऐसी औरत के साथ बैठा है, जो मानव-रूप में मौत है, छुरी है।

ज्ञानदेव विकल हो उठा, किंतु बैठा रहा। चंपा ने ज्ञानदेव के गाल पर एक हल्की चपत मारकर कहा—"कितना सोचा करते हो जी, मैंने प्यार दिया है, मुझे प्यार का ही प्रतिदान चाहिए, मौन का नहीं।"

ज्ञानदेव ने कहा—"मैं क्या जवाब दूं चंपा। मेरा जीवन मेरा नहीं रहा। एक से छीनकर दूसरे को इसे कैसे सौंप दूं, यही सोच रहा हूँ।"

चंपा ने उन्मादित होकर कहा—"मान लिया कि तुम असमंजस में फँस चुके हो, और चाहकर भी कुछ फ़ैसला कर डालने का बल तुममें नहीं है। मैं कहती हूँ, मुझे ही उपाय निकालने का अधिकार दो। बोलो, इतना अधिकार दे सकोगे ज्ञान?"

ज्ञान भारी हृदय-मंथन में फँसा। वह बोला—"ठीक है। तुम्हीं सोचो। किंतु जो कुछ सोचना, शुद्ध हृदय से।"

चंपा ज्ञानदेव के कंधे पर सिर रखकर बोली—"ज्ञान, विश्वास करो। मैं अपना जीवन देकर भी तुम पर किसी तरह की आँच आने नहीं दे सकती। मैं अपने मन के देवता की आराधना एकांत मन से ही करूँगी। किसी की छाया भी उस पर पड़ने नहीं दे सकती। ज्ञान, मैं शुद्ध हृदय से ही सोचूँगी—सभी पहलुओं को सामने रखकर।"

ज्ञानदेव बोला—"तो सोचो, मैं विश्वास करता हूँ।"

पगली की तरह चंपा ने फिर ज्ञानदेव को अपने गंदे आलिंगन में बाँध लिया, और आनंद से आँखें बंद करके धीरे से कहा—"भागना चाहते हो, तो भाग जाओ। प्रेम की बाँहें बड़ी लंबी होती हैं।"

ज्ञान ने इस बार छूटने का प्रयत्न नहीं किया। आग की ज्वाला सी उसके रोम-रोम में फैल गई। कुछ देर तक इसी तरह रहकर चंपा अलग हो गई, और बोली—"ज्ञान, यह बतला दो कि कभी तुम मेरा त्याग भी कर दोगे या नहीं?"

ज्ञानदेव ने दीर्घ श्वास लेकर कहा—"अब इतना साहस ही कहाँ रहा चंपा, तूने तो मुझे कहीं का भी नहीं रहने दिया। जब आती हो, तो तुमसे दूर हटना चाहता हूँ, और जब नहीं आती, तो तुम्हारे लिये मन उदास रहता है। अजीब स्थिति है। क्या करूँ—आह!"

दुर्भाग्य ज्ञानदेव के कंठ पर बैठकर जो कुछ बोल गया, वह कितना भयंकर था, इसका पता ज्ञान को न था। उसने एक साँस में ही सब कुछ कह दिया।

चंपा पगली-सी होकर बोली—"मेरे प्राण, अब इस जीवन में तुमसे कभी बिलग नहीं हो सकती, परिणाम चाहे जो भी हो। जब मेरे लिये तुम्हारे हृदय में स्थान है, तो मैं भी तुम्हारी होकर रहूँगी। चिंता न करो, और सदा मुझे अपने निकट ही समझो।"

दोनों उठे, और चलने लगे। मोटर के पास पहुँचकर चंपा ने ज्ञान से कहा—"अब कल फिर, यहीं पर।"

ज्ञान ने कहा—"अच्छा।"

चंपा ने ज्ञान को फिर अपने आलिंगन में बाँधा, और कहा—"कल तक के लिये यह स्मृति बनी रहे।" इस बार ज्ञान ने भी हल्के हाथों से चंपा को अपने आलिंगन में ले लिया।

जब चंपा घर आई, तो उसके भाई छटपटा रहे थे। चंपा को देखते ही वह बोले—"अरी, कहाँ चली गई थी? सेठ सुखारीलाल का काम कब होगा? चंपा, जुमराती साहब के यहाँ आज जाना ही होगा। न जाने से काम नष्ट हो जायगा। वह बूढ़ा बहुत ही ज़िद्दी है। कल ही वह कुछ-न-कुछ ऑर्डर कर देगा, तो सेठ मारा जायगा।"

चंपा ने कहा—"भैया, मि० जुमराती से तुम क्यों नहीं मिलते। वह बूढ़ा शैतान है।"

"मैं तो गया था।"—भवानी बाबू ने कहा—वह बोला कि चंपा बेटी से मुलाकात हुए बहुत दिन हो गए। वह कैसी है। मैंने समझ लिया कि वह बूढ़ा बैल चंपा के बिना नहीं मानेगा। जाओ, आठ हज़ार का फ़ायदा है।"

चंपा को राज़ी होने में कितनी देर लगती है। वह तैयार हो गई। मि० जुमराती के यहाँ जाते समय वह भूल गई थी कि दो घंटा पहले ज्ञान से उसकी क्या बातें हुई थीं। वह ज्ञान को बच्चों की तरह लुकाचोरी खेला रही थी। चंपा इतनी तेज़ औरत थी कि ज्ञान उसकी तुलना में एक अनुभव-हीन बालक ही था।

ज्ञान अपनी कोठी पर लौटा । उसका बुरा हाल था—सिर में दर्द और चक्कर । पद्मा ने उसे बहुत ही व्यग्र देखा, तो वह बोली—"इतने घबराए क्यों हो ?" ज्ञानदेव के कपड़ों से विलायती सेंट की भीनी-भीनी महक भी आ रही थी, जो चंपा के कपड़ों से लग गई थी । पद्मा ने चौंककर पूछा—"तुमने आज सेंट लगाया है क्या ?"

ज्ञान काँप उठा । वह झूठ बोलने की कला से अनभिज्ञ था, फिर भी जिस परिस्थिति में वह पहुँच चुका था, उसी ने उसे झूठ बोलने की बुद्धि भी दे दी थी । ज्ञान बोला—"मत पूछो । शैतान के चक्कर में फँस गया था । जहाँ मैं गया था, वह मेरा विलायत का साथी है । उसी ने सेंट लगा दिया । नाच-गाने की धुन भी थी । मैं तो भाग आया । कौन ऐसे आवारे के साथ समय नष्ट करे ।"

पद्मा को संतोष तो था ही, अब हँसी आई । वह बोली—"मैं बार-बार मना करती हूँ कि अकेले न जाया करो । दुनिया बहुत ही उलझाऊ है ।"

ज्ञान ने भी मन-ही-मन दुहराया—दुनिया बहुत उलझाऊ है ! उसने अपने कपड़े उतार डाले, और पद्मा से कहा—"अब कभी नहीं जाऊँगा । जितना मुझे भुगतना था, भुगत चुका—बाज़ आया ऐसी दोस्ती से ।"

पद्मा बोली—"बात क्या है, जो इतने खिन्न हो ?"

ज्ञानदेव बोला—"वह विलायती साहब है । फ्रांस की दुलहिन साथ ले आया है । यहाँ किसी विलायती फ़र्म में नौकरी भी मिल गई ।"

पद्मा बोली—"ठीक ही तो हुआ । जब तुम्हें ऐसे लोगों का साथ कष्ट ही पहुँचाता है, तो जान-बूझकर सिर-दर्द मोल लेने से लाभ ?"

सवेरे मारी-पिटी चंपा घर लौटी । भवानी बाबू उसकी राह देख रहे थे । वह बोले—"इतना विलंब लगाया ।"

चंपा ने फ़र्श पर ही थूककर कहा—"भैया, तुम अपने ही हाथों से गला घोटकर मार डालो, किंतु मुझे ग़लीज़ चाटने के लिए बाध्य मत करो। मैं ज़हर खा लूंगी—यह कह दिया।"

भवानी बाबू ने कहा—"समझ लिया, समझ लिया। हाँ, काम की बात बोलो।" चंपा रुआसी-सी होकर बोली—"हाय, तुम्हें काम की ही चिंता लगी है, अपनी बहन की नहीं। जाओ, आनंद मनाओ—काम हो जायगा, हो जायगा, हो जायगा।"

चंपा पैर पटकती हुई कमरे से निकली, और अंदर चली गई। कुमारी को उसने कराहते पाया। वह कभी चित और कभी औंधे मुंह लेटकर होंठ को दाँतों से दबाए आह-आह कर रही थी।

चंपा ने उड़ती नज़रों से कुमारी की ओर देखा, और धीरे से कहा—"कलमुंही, भोग कर्म का फल। चली थी मेम साहब बनने, बन अच्छी तरह मेम साहब, कर्मानी औरत।"

अपने कमरे में बैठे भवानी बाबू ने दरबारियों को लक्ष्य करके कहा—"कौन यहाँ ऐसा ऑफ़िसर है, जो मेरा कहा न माने। जिसके सिर पर मौत नाच रही होगी, वही ऐसी बदतमीज़ी करेगा। सरकार में तो इतनी हिम्मत ही नहीं है कि मेरी बात टाले—इन छोटभइयों की क्या हस्ती है।"

दरबारियों ने समर्थन किया। भवानी बाबू उठे, और किसी ऐंटी-करप्सन-कमेटी में भाग लेने चले गए। एक व्यक्ति ने नई टैक्सी मँगवाकर अपनी श्रद्धा का परिचय दिया था।

चंपा अपनी कोठरी में घुसकर खूब रोई, और जितना मुंह में आया, अपने यशस्वी भाई साहब को आशीर्वाद दिया। जब जी हल्का हुआ, तो शीशे के सामने खड़ी हो गई। उसने अपनी भीतर धँसी हुई, नींद से भरी आँखों को देखा, आँखों के नीचे की गहरी काली लकीरों को निहारा, और कहा—"इसी शकल को लेकर ज्ञान

को रिझाने जाऊँगी, वह वही नर है, जो पद्म-जैसी अनिंद्य सुंदरी के पवित्र सौंदर्य को जीत लेने की हिमाकत करता है. मैं ही वह चंगा हूँ, जिसके चरित्र को यदि जान जाय, तो वह दरबार से कान पकड़कर निकलवा दे. कोई भी शरीफ़ आदमी, अगर वह मेरे कमीने भाई-जैसा शरीफ़ नहीं है तो, मेरा कच्चा चिट्ठा जान लेने के बाद मेरे चेहरे पर सात बार थूके बिना न रहेगा। छिः ! मैंने क्या अपने को बना लिया।" वह सिर पकड़कर बैठ गई, और चुपचाप आँसू गिराती रही।

कुछ देर बाद वह उठी, और स्नान-घर में चली गई। इधर कुमारी बिलख रही थी। वह सरदार शमशेरसिंह के साथ शिकार पर गई थी। वहीं से बीमार लौटी। रात-दिन शराब और शिकार— केवल शेर का शिकार ही नहीं, दीन-ईमान, देवता-धर्म, बाप-दादे की लाज का शिकार। उफ् !

भवानी बाबू का बैंक-बैलेंस दिन-दिन बढ़ता जा रहा था। अपने साहब के खजांची भी भवानी बाबू ही थे। दोनों एकाउंट मिलकर लाख तक पहुँच गया था। शराब, पार्टियों और टूर में भवानी बाबू का अपरिमित खर्च था। वह किस दिन दो-चार सौ का सफ़ाया नहीं कर डालते थे ? भाग्य जब ज़ोर से चमका, तो वह भूल गए कि उनके बाप किसी धनी के यहाँ घोड़ा मला करते थे, वह यह भी भूल गए कि कभी कोट और चादर गिरवीं रखकर होटल का बिल चुकाते थे, और चोरों से साझेदारी करके गाँव में ताले तोड़वाया करते थे।

दिन जब बदलता है, तब पुरानी बातों का कोई मोल नहीं रह जाता। अब तो भवानी बाबू अपने राज्य के सिर पर सवार थे, चारों ओर उन्हीं की खोज थी—सरकारी अधिकारी और शासक, दोनों भवानी बाबू के आगे-पीछे अर्दली देते थे। उनमें कौन-सा गुण था, यह तो भगवान् ही जाने, किंतु इतना तो सभी जान चुके थे कि

वह मानव के शरीर में नरभक्षी बाघ थे। शहर के आवारे छोकरे उन्हें हर घड़ी घेरे रहते थे। चोर-उचक्के सभी उनका मुंह जोहा करते थे। वह जब घर से निकलते थे, तो उनके साथ एक जुलूस चला करता था। वह प्रायः यह कहा करते थे—"साले मेरे धन-वैभव को देखकर जला करते हैं। मौके की ताक में हूँ—एक-एक को जहन्नुम की हवा खिलाकर ही दम लूंगा।"

रुपया, रुपया, रुपया—हाय रुपया, यही हाहाकार भवानी बाबू के भीतर भरा था।

वह धन को छोड़कर और किसी को नहीं पहचानते थे, और, इस नए युग में मनुष्यता या शराफ़त के नाम पर शहीद होने का फ़ैशन भी नहीं है। यह तो पुराने और गंदे युग की मूर्खता थी, जब लोग मान-प्रतिष्ठा, वंश-गौरव, ईमानदारी और धर्म के लिये जान दिया करते थे। आज का युग विकास का है—हृदय के विकास का नहीं, मानवता के विकास का नहीं, दीन-ईमान के विकास का नहीं, दिमाग के विकास का। भवानी बाबू अपनी पत्नी और भगिनी-सहित इसी युग के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रहे थे, और राष्ट्र-निर्माण के पुनीत कार्य का नेतृत्व कर रहे थे।

ऐसे कूड़ा-दिमाग़ और गंदे लोगों का नवोदित राष्ट्र में कोई स्थान नहीं रह जाता, जो कर्तव्याकर्तव्य के चक्कर में फँसे रहते हैं। जोश के साथ जो जी में आया, कर बैठे, और जिधर मौज में आया, चल पड़े। ऐसे साहसी और बीरों की ही आवश्यकता नवोदित राष्ट्र को रहती है—उदाहरण में हम भवानी बाबू का नाम ले सकते हैं।

हाकिम-हुक्काम, दरिद्रता-ग्रस्त, अध-भूखे विद्वान्, अधिकारियों की कोठियों की प्रदक्षिणा करनेवाले सेठ-साहूकार और सड़कों पर पैदल चलनेवालों को मोटरों से अनायास ही कुचलकर जीवन की पेचीदगियों से मुक्ति दिलानेवाले धन-मदोन्मत्त, सभी भवानी बाबू-जैसे लोगों को ही बिचवान बनाकर इस नए युग में अपनी रोटी जुटा सकते हैं, ठेका

ले सकते हैं, लड़के को कॉलेज में भर्ती करा सकते हैं, अस्पताल में खाट का जुगाड़ कर सकते हैं, न्याय प्राप्त कर सकते हैं, पुलिस के कोप से बच सकते हैं, सरकारी माल हड़प सकते हैं, मरने पर कफ़न प्राप्त कर सकते हैं। जन-सेवा का जो रूप संघर्ष के समय में रहता है, शांति-काल में नहीं रह जाता। भवानी बाबू जिस तर्ज़ से जन-सेवा किया करते थे, वही जन-सेवा इस नवोदित युग की जन-सेवा है।

चंपा अपने को जी-भर धिक्कारती जब कमरे में आकर बैठी, तब उसके हृदय के साथी खाँ साहब पधारे।

खाँ साहब अपने को तेहरान या मिस्र का बतलाते थे। कॉलेज में पढ़ते थे, और नबीअनदार आदमी थे। आपके वालिद तीन-चार कसाईखानों का संचालन करते थे। भवानी बाबू के प्रयास से वर्जित पशुओं की हत्या करने का भी उन्हें अधिकार मिल गया था। रोज़गार धड़ल्ले से चलता था। खाँ साहब देखने में बिलकुल ही अँगरेज़-जैसे थे—पोशाक की दृष्टि से। वह चंपा से विवाह करने की लालसा रखते थे। भवानी बाबू इस शर्त पर राज़ी थे कि उन्हें नकद दस हज़ार यदि एक मुश्त दे दिया जाय। राष्ट्र के नाम पर और पुरानी रूढ़ियों को चूर-चूर करने के लिये ही भवानी बाबू ने यह प्रगतिशील कदम उठाया था। खाँ साहब के साथ चंपा बंबई की हवा भी खा चुकी थी, और दोनो का मन भी मिल गया था, जो वाजिब भी था। उस दिन खाँ साहब चंपा को दिल्ली चलने का न्योता देने आए थे, और यह भी कहने आए थे कि वहीं विवाह का नाटक भी खेल लिया जाय।

भवानी बाबू राज़ी थे, क्योंकि दस हज़ार की बात पक्की हो गई थी, और रुपया एक सेठ के यहाँ जमा कर देने को खाँ साहब के बाप तैयार थे। चंपा ने कहा—"अभी नहीं। अगले महीने में दिल्ली जाने की बात सोचना।"

खाँ साहब चले गए तो भवानी बाबू आए और बोले—"खाँ साहब को तुमने क्या जवाब दिया?"

चंपा बोली—"मैं शादी नहीं करूँगी ।"

भवानी बाबू ललाट पर आँखें चढ़ाकर बोले—"क्यों, तुम तो राज़ी थीं ?"

चंपा ने तड़ से जवाब दिया—"यह तुमसे किसने कहा भैया ? मैं खाँ साहब से विवाह करूँगी ? फिर घर का मुंह कैसे देखूंगी' यह तो आत्महत्या करना हुआ । मैं शरीर बदलना पसंद करूँगी, मगर समाज नहीं बदलूंगी ।"

भवानी बाबू ने कहा—"तू भी गंदे दिमाग़ से सोचती है । अरे' यह युग ही दूसरा है । अब ऐसी बातों पर विचार करनेवाला पिछड़ा हुआ आदमी माना जाता है । जात-पाँत के दिन लद गए ।"

चंपा बोली—"शर्म नहीं आती तुम्हें ऐसी बातें बोलते । तुम इतना कैसे गिर गए भैया ! जीवन-भर पैसे को ही पहचाना, आदमी को भी तो पहचानो ।"

चंपा ने इतना भयानक रूख पकड़ा कि भवानी बाबू के होश हिरन हो गए । वह गरज उठी—"तुमने मेरा सत्यानास करा दिया । संसार में ऐसा एक भी पाप नहीं है, जो तुम्हारे लिये हँसते-हँसते मैंने नहीं कमाया । अब खाँ साहब की बेगम बनने की बारी है ।"

भवानी बाबू चुप होकर चंपा के भीतर के उफान को निकलने का अवसर देना चाहते थे, किंतु वह उफान सोडावाटर का न था । जीवन के गंदे औद तीखे अनुभवों का था । चंपा कुछ देर तो चुप रही, किंतु उससे चुप रहा न गया । वह फिर बोलने लगी—"तुम्हें ईश्वर की सौगंध है भैया, मुझे मरने की इजाज़त दो । बहुत हो चुका । अब मन घिना उठा । तुम तो संसार में मूछें उमेठकर अपनी शान और ताकत का नक्कारा पीटते चलते हो, किंतु मैं तो किसी शरीफ़ आदमी को मुंह दिखलाने के लायक भी नहीं रही । लोग क्या कहते होंगे।"

भवानी बाबूने कहा–"तू पगली हो गयी है । हटाओ इन गंदी बातों को ।"

नई दुनिया की देन

पुराना युग लद गया। नया आकाश पैदा हुआ, नई धरती उभरी, नया सूरज और नया चाँद गढ़ा गया—यह नारा तो हम रोज़ सुनते हैं, किंतु नया मानव भी धरती पर आया, यह तो इन आँखों से ही देख रहे हैं। नई तहज़ीब और नए विचार भी हमारे सामने हैं। जो कुछ पुराना है, वह गंदा है, पीछे घसीटनेवाला है, उन्नति का बाधक है, पाश्चात्य जगत् के साथ मिलकर चलने में विघ्न पैदा करनेवाला है, दिमाग़ को कूड़ा बनानेवाला है। हम इस तर्क को सिर झुकाकर मानते हैं, और भवानी बाबू की नीति का दिल से समर्थन भी करते हैं।

जब चंपा ने उन्हें दिल खोलकर सुनाया, तो वह न तो लज्जित हुए, और न उनके दिल में मलाल ही पैदा हुआ। भवानी बाबू को अपने साहब के साथ टूर पर जाना था। चले गए। उन्होंने अपने भाषण में सब जगह यही कहा कि "पुरानेपन का त्याग करो। आज हमारे सामने नए-नए सवाल हैं, जिन पर खुले दिल से विचार करना है। हम जब तक पुरानी परंपराओं का सफ़ाया नहीं कर डालते, जब तक पुरानी सभ्यता और पुराने तरीकों का अंत नहीं कर डालते, योरप के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल नहीं सकते। अपने देश

को नए साँचे में ढालना है, और वह साँचा तो पाश्चात्त्य जगत् से ही हमें प्राप्त होगा। आचार-विचार सबमें नयापन लाना होगा। हम सिर से पैर तक युरोपियन बनकर ही जी सकते हैं। स्त्रियों को मैदान में लाना होगा। उन्हें पैंट-कोट पहनकर हमारे साथ काम करना चाहिए। नाते-रिश्ते और शादी-ब्याह के बंधनों ने हमें आगे बढ़ने से रोका। मुक्त और स्वच्छंद आहार, विहार और व्यवहार को हम अपनावें, और धर्म-धर्म चिल्लानेवालों का मुंह काला करने में आलस्य न करें। आप अपने लक्ष्य पर ही ध्यान रखिए—साधनों के लिये सिर खपाना गिरे हुए लोगों का काम है।"

भवानी बाबू के इस ज़ोरदार भाषण का समर्थन विद्यालय के उन छात्रों ने ज़ोरों से किया, जो आनेवाले इंडिया के रक्षक, शासक और निर्माता थे। भवानी बाबू ने प्रेस के रिपोर्टरों को समझा दिया कि उनका भाषण उनकी तस्वीर के साथ छपना चाहिए। ऐसा न करने पर उनका पत्र सरकार की स्वीकृत सूची से हटा दिया जायगा।

यही हुआ भी। भवानी बाबू बीच-बीच में अपने यहाँ बुलाकर पत्रकारों को कवाब और मुर्ग़मुसल्लम का भोज दिया करते थे। वे पहले ही उनके कृतज्ञ थे।

भवानी बाबू नए युग की क्रांति का शंख फूंककर जब लौटे, तो उन्होंने कुमारी को बीमार ही पाया। उन्हें इतनी फ़ुर्सत कहाँ थी कि डॉक्टर या दवा की ओर ध्यान भी देते—राष्ट्र-निर्माण का कार्य जो उनके सिर पर था। इसके बाद लोकोपकार के लिये बहुत-से कार्यार्थियों के मामले भी निबटाने थे। सरकार चलाने का भी भार था—एक जान और हज़ारों आफ़तें। बेचारे करें, तो क्या और न करें, तो क्या।

हम एक ही भवानी बाबू की चर्चा कर रहे हैं, आज हमारे यहाँ लाखों की संख्या में ऐसे भवानी बाबू हैं—यह देश अब ग़ुलाम नहीं है। सबको आत्मविकास करने का अधिकार है। आज़ाद देश में ही

तो कर्मवीरों का जन्म होता है, जिसका एक सुनहला नमूना हमारे भवानी बाबू थे।

घर आते ही वह कर्म में प्रवृत्त हो गए। किसी को अपने दुश्मन से बदला लेना था। उस व्यक्ति ने कभी उनका सफल विरोध किसी सार्वजनिक काम में किया था। यही वैर था।

भवानी बाबू ने कहा—"सुनो जी, दुश्मन से समझौता कैसा। मैं यह नहीं मानता कि जो आज वैरी है, वह कल मित्र बन जायगा। पुराने विचार के लोग, जिनके दिमाग़ में गोबर भरा होता था, मित्रता, शांति आदि की बात रटा करते थे। मैं तो साफ़ रास्ता चाहता हूँ।"

वह व्यक्ति बहुत प्रभावित हुआ। होना भी चाहिए; क्योंकि भवानी बाबू बिलकुल ही नए युग का तर्क दे रहे थे।

मामला तय हो गया, और भवानी बाबू ने भरोसा दिया कि एक मास के भीतर ही तुम्हारे वैरी का सर्वंश नाश करवा दिया जायगा— प्रत्येक खून की कीमत होगी दो हज़ार। चार आदमियों का वध किया जायगा, अतः आठ हज़ार नकद चाहिए।

लेन-देन की विधि पूरी हो गई, और भवानी बाबू फिर देश के कल्याण के लिये टूर पर निकले।

उनका यह टूर उसी उद्देश्य से था, जिसके लिये उनका मित्र आया था। कुछ गुंडों को इस राष्ट्रोद्धार के काम में लगाया गया और थाने का भी भवानी बाबू ने शानदार संगठन कर दिया। दारोग़ा से जब उसके एक सहकर्मी ने पूछा कि "तुम इतने बड़े कुकर्म के सहायक क्यों बन रहे हो?"

दारोग़ा ने सिर पीट लिया, और कहा—"ईश्वर जानते हैं, मेरे मन में क्या है। यह साला भवानी इतना भयानक आदमी है कि इसकी बात यदि न मानूं, तो नौकरी दो दिन भी नहीं ठहर सकती। तुमने देखा नहीं, मि० शर्मा डी० एस्० पी० से फिर सब-इंस्पैक्टर

बना दिया गया, मेरा मित्र चौधरी, जो इंस्पैक्टर था, आज अपने खेत में हल जोत रहा है, करीमहुसैन, जो एस्० पी० होने वाला था, रिश्वत के चक्कर में फँसा दिया गया। मैं गंगा-जल लेकर कसम खा सकता हूँ कि करीम-जैसा सच्चा और ईमानदार व्यक्ति खोजे नहीं मिलेगा। वह ग़रीब अपने हाथों से ही कमरे में झाड़ू लगाता और जूते साफ़ करता था। वह संत स्वभाव का और कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति था। भवानी की बात न मानने का फल यह हुआ कि बेचारा जेल जानेवाला है।"

वह व्यक्ति बोला—"आखिर भवानी में ऐसी कौन-सी खूबी है, जो वह आसमान पर चढ़ा जा रहा है?"

दारोग़ा ने इधर-उधर देखकर कहा—"वह प्रभावशाली व्यक्तियों का दलाल है। वह तो खुलकर कहता है कि मैं अपने लिये दलाली नहीं करता। वह एक ऐसे व्यक्ति का नाम बतलाता है कि दिल काँप जाता है।'

इतना कहकर दारोग़ा ने अपने मित्र के कान में कुछ कहा। वह व्यक्ति काँप उठा, और चिल्लाया—"झूठा है साला, ऐसा हो नहीं सकता। जिस व्यक्ति का वह नाम लेता है, वह अग्नि की तरह पवित्र है। यह कमीना उस श्रेष्ठ आदमी को बदनाम करता फिरता है। ऐसे को तो गोली मार देने में भी पुण्य ही है।"

एक सिपाही ने खबर दी—"भवानी बाबू आए हैं।"

दारोग़ा काँप उठा, और बोला—"भगवान्, रक्षा करो इस संकट से।"

भवानी बाबू झूमते हुए थाने पर पधारे थे। रात थी, और १२ बजने ही वाला था। सन्नाटा था। दूर-दूर से कुत्तों के भूंकने की ही आवाज़ आती थी। एक मील पर जो गाँव था, वह घोर निद्रा में निमग्न था।

भवानी बाबू ने कहा—"दरवाज़े बंद करा दीजिए, तो बातें हों।" यही हुआ।

निश्चिन्त होकर भवानी बाबू ने कहा—"सुनो रामेश्वर, यह काम सफ़ाई से होना चाहिए। मैंने यह व्यवस्था कर ली है कि तुम इसी साल ज़रूर इंस्पैक्टर बना दिए जाओगे। मैं झूठ तो कभी बोलता ही नहीं। तुम जानते ही हो कि रामाधीन को मैंने डी० एस्० पी० बनवा दिया। उसने मेरे कहने पर जित्तू वग़ैरह डकैतों को न पकड़कर मेरे विरोधियों को ही जेल में ठूस दिया था। भले काम का पुरस्कार तो मिल ही जाता है।"

दारोग़ा ने विनय-पूर्वक कहा—"हुज़ूर की जैसी मेहरबानी हो। मैं तो आपका एक छोटा-सा गुलाम ठहरा। काम हो जायगा। न्याय तो आप करेंगे ही।"

"यह लो।"—कहकर भवानी बाबू ने दारोग़ा के हाथ में एक हज़ार पकड़ा दिया, किंतु दारोग़ा में इतनी हिम्मत नहीं थी कि वह भवानी बाबू से पैसे लेता। वह गिड़गिड़ाने लगा तो दया करके भवानी बाबू ने रकम लौटाकर कहा—"अच्छा, जब तुम पैसा नहीं लेते, तो तुमको इससे भी ऊँचे दर्जे का पुरस्कार मैं दूंगा।"

भवानी बाबू चले गए। दारोग़ा ने मन-ही-मन अपने देवता को प्रणाम करके कहा—"जान बची, लाखों पाए—बाप रे बाप, यह कैसा आदमी है। यह जो न कर डाले, वही थोड़ा।"

पंद्रह दिन के अंदर ही एक पूरे परिवार को काट डाला गया—दो पुरुष, तीन स्त्रियाँ, दो दुध-मुंहे बच्चे और एक प्रसूता अपने नवजात शिशु के साथ।

संसार नाशवान् है। कौन किसको मारता है, और कौन मारा जाता है। सभी अपने कर्म-फल भोगते हैं, निमित्त कोई भी बने। जो जीवित है, उसे भी तो मरना ही होगा—दो दिन पहले या दो दिन बाद। देश की आबादी भी भयानक रूप से बढ़ रही है—दो-चार आदमियों के मारे जाने से कौन-सा कोना सूना हो गया?

नई दुनिया बतलाती है कि दया, ममता, धर्म-भावना, ईमानदारी आदि जो गंदी कमज़ोरियाँ हैं, इनसे ऊपर उठकर ही हम उन्नति के चाँद को छू सकते हैं। जीवन को संकुचित दायरे से बाहर निकाले बिना यह संभव नहीं कि हम संसार के लायक अपने को बना सकें। दया-ममता आदि हमें संकुचित दायरे में बंद करके आधुनिकता से दूर रक्खें, यह आज का उन्नतिशील मानव स्वीकार नहीं कर सकता। वह किसी का भी ग़ुलाम नहीं है। न वह ईश्वर का ग़ुलाम है, और न मानवता का। वह स्वतंत्र है—सभी तरह के बंधनों से स्वतंत्र।

भवानी बाबू को जब सफलता का संवाद मिला, तो वह प्रसन्न होकर बोले "चलो, गहरी रकम हाथ लगी। मूर्ख दारोग़ा ने भी कुछ नहीं लिया। उन्होंने चौथाई रकम उस दल के सरदार को दे देने की उदारता की, जिस दल के आदमियों ने एक अँधेरी रात को सोते में ही एक पूरे-के-पूरे परिवार का अंत कर दिया था।

यह समाचार भवानी बाबू ने साहब को सुनाया, तो वह बोले—"ठीक ही हुआ। तुम्हारी बात तो मैं कभी टालता नहीं भवानी! यदि रौरव नरक के नाबदान में भी मुझे तुम्हारे साथ रहना पड़े, तो आनंद ही है।"

भवानी बाबू प्रसन्न हुए, और चलते बने।

इधर भवानी बाबू अपने पवित्र पेशे में लगे थे, और उधर चंपा ज्ञानदेव का सत्यानाश करने में संलग्न थी।

वह बार-बार ज्ञानदेव को घसीटकर कभी इस पहाड़ी के नीचे ले जाती, तो कभी उस पहाड़ी के नीचे। ज्ञानदेव काठ के पुतले की तरह बिना कुछ कहे, चंपा का जिधर इशारा होता, चल पड़ता। पद्मा को इसका पता न था। वह बेचारी पूर्ण निष्ठा और स्नेह के साथ ज्ञानदेव की उपासना में आत्म-विस्मृत रहती।

एक दिन चंपा ने ज्ञानदेव से कहा—"ज्ञान, तुम मुझे सदा के लिये अपना लो। अब मुझसे अकेले रहा नहीं जाता।"

ज्ञानदेव बोला—"चंपा, मैं जो लुक-छिपकर तुम्हारे साथ आता हूँ, यही मेरे लिये मौत है। किसी दिन मुझे इस पाप का प्रायश्चित्त अपने खून से करना होगा। पद्मा को जिस दिन धोखा दिया, उसी दिन मैं अपने को गोली मार दूंगा। अब मुझे जलती आग में मत झोंको, बहुत हो चुका।"

चंपा बोली—"तो तुम मुझे प्यार नहीं करते?"

इतना कहकर उसने ज्ञानदेव को आलिंगन में बाँध लिया।

ज्ञानदेव ने कहा—"मैं क्या कहूँ चंपा! यदि तुम मुझे लीला की तरह अपना भाई मानकर व्यवहार करो, तो मैं तुम्हारी बहुत सेवा कर सकता हूँ।"

चंपा खिलखिलाकर हँस पड़ी, और बोली—"यह नया युग है प्यारे, इस युग में न कोई भाई है, और न कोई बहन। सबको सबसे प्रेम करने का अधिकार है। तुम अप्रगतिशीलता का त्याग करो।"

ज्ञानदेव ने जवाब दिया—"चंपा, एक बार फिर से सोचो। तुम भावना के प्रवाह में अपने को खोती जा रही हो।"

चंपा ने झट से ज्ञानदेव का मुंह चूम लिया, और कहा—"मैं इस सुख का त्याग नहीं कर सकती, चाहे संसार मेरा विरोध करे।"

इतना कहकर वह खड़ी हो गई, और बोली—"ज्ञान, मेरा तिरस्कार करके एक दिन तुम्हें रोना पड़ेगा। वह मदरासिन ऐसा धोखा देगी कि संसार में मुंह दिखलाना भी कठिन हो जायगा। मैं स्त्री हूँ, और पद्मा को खूब पहचानती हूँ। मेरे प्राण! सावधान हो जाओ!"

ज्ञानदेव पद्मा के प्रति इतने भयानक लांछन को सहन न करता, किंतु यह बात सही है कि वह अपनी उच्चता से नीचे खिसक चुका था। पतित को साहस नहीं होता कि वह किसी की मिथ्या बात का पूरा ज़ोर लगाकर प्रतिवाद करे। इस सूत्र के अनुसार ज्ञान पतित-कोटि में आ गया था।

चंपा जब अपने घर लौटी, तो उसका हृदय प्रतिहिंसा की आग से जल रहा था। पद्मा के चलते ही ज्ञानदेव उसे अपना नहीं रहा है। पद्मा, ज्ञान और चंपा के बीच की एक भयानक दीवार है। ऐसी दीवार को तो बारूद से उड़ा देना ही उचित होगा। चंपा रात-भर छटपट करती रही। वह सो नहीं सकती। उसे भ्रम था कि ज्ञानदेव को उसने बहुत दूर तक पहुँचा दिया, किंतु अब उसे विश्वास हो गया कि वह केवल उस पहाड़ को हिला-भर सकी है, उखाड़कर फेंक देना उसके बूते के बाहर की बात है। ज्ञानदेव का चरित्र इतना सुगठित था कि उस पर वज्र से प्रहार करके भी चंपा सफलता नहीं पा सकती थी। जितनी दूर अपनी सीमा से बाहर ज्ञान आ गया था, उतने ही से चंपा को संतोष कैसे होता ?

वह चाहती थी कि ज्ञानदेव को अपने पैरों से रौंदकर सदा के लिये समाप्त कर दे, किंतु उसकी यह राक्षसी कल्पना मुर्झाती नज़र आई, जिसे वह पल्लवित-पुष्पित देखना चाहती थी।

यदि पतितों को कहीं विफल होना न पड़ता, तो यह संसार आज से लाखों साल पहले ही रसातल चला गया होता। यह दुनिया अब तक कायम है, यह तो इसी बात का सुबूत है कि सद्‌गुणों और सज्जनों का भी यहाँ स्थान है।

चंपा ज्ञानदेव के लिये लालायित थी, यह बात भी सत्य है, किंतु यह बात भी सत्य है कि वह उसकी दौलत पर ही जी-जान से फ़िदा थी। अपने भाई के उपदेश सुनते-सुनते चंपा का मन बिलकुल ही पथरा गया था। स्नेह-जैसी कोई वस्तु उसके भीतर कभी पैदा ही नहीं होती थी। वह केवल शरीर-सुख को ही सब कुछ मानती थी। इस भौंरे से उस भौंरे का स्वाद लेना ही चंपा के जीवन का लक्ष्य था। वह तब घबराती थी, जब उसे अपनी इच्छा या पसंद के प्रतिकूल किसी ऐसे व्यक्ति को प्रसन्न करना पड़ता था, जिसे वह घृणा की दृष्टि से देखती थी। सेठ रूपचंद कोढ़ी था, और बूढ़ा भी। मगर,

अपने भैया के लिये सेठजी को उसे प्रसन्न करना पड़ा। नियामतअली एक उच्चपदस्थ व्यक्ति था, किंतु वह राक्षस-जैसा था—सात फुट लंबा, चार मन वज़नी और साठ साल का रसिया। शिकार पर कई बार चंपा को उसके साथ जाना पड़ा।

आज की तहज़ीब को निगाह में रखने से चंपा जो कुछ करती थी, वह कोई गर्हित कर्म नहीं कहा जा सकता। बहुत दिनों तक स्त्रियों को गंदी गुलामी के दिन बिताने पड़े। परिणाम यह हुआ कि देश भी नीचे गिरता चला गया। स्त्रियों के प्रति अविश्वास करने-वाले अब मर गए। गंदे स्वभाव वाले पुराण-पंथियों से देश का पिंड छूटा। देश को ऊपर उठाकर योरप की समकक्षता तक पहुँ[illegible] चंपा-जैसी देवियों ने कितना त्याग और बलिदान किया था, यह इ[illegible]हास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में चमकेगा, बशर्ते पुराने विचार के मूर्ख इति-हासकार भी जल्दी-जल्दी मर जायँ।

नई दुनिया की इस देन का मूल्यांकन १०० साल बाद ही सकेगा, अभी नहीं। किसी युग की विभूतियाँ प्रायः अपने युग में नहीं चमकतीं, उन्हें प्रतीक्षा करनी पड़ती है, इतिहास के अमर पृष्ठों पर आने के लिये। भवानी बाबू, चंपा, जॉर्ज साहब या लीला-समय के पहले ही इन विभूतियों का शुभागमन हुआ था। हम इतने ही युग-पुरुषों की चर्चा कर रहे हैं—नई हवा और नई रोशनी ने हजारों भवानी बाबुओं, चंपाओं, जॉर्जों, लीलाओं को जन्म दिया। इसका लेखा-जोखा बतलाना असंभव है। उस नई विचार-धारा के प्रतीक कुछ ही प्रातः-स्मरणीय महामानव आपके सामने हैं।

चंपा दबे हुए रोष से सारी रात उबलती रही। बार-बार पद्मा की तस्वीर उसकी आँखों के सामने नाच उठती थी। उसके प्रयत्न को यदि विफल करनेवाली कोई ताकत थी, तो वह पद्मा थी। यदि पद्मा न होती, तो उसने ज्ञानदेव को तो रेत ही डाला था। शिकारी जैसे शिकार को मार गिराने के लिये बंदूक सीधी करे, उसी समय यदि

कोई ताली बजाकर उस शिकार को भगा दे, तो उस विफल शिकारी का भयानक क्रोध उस व्यक्ति पर उतर जायगा। शिकारी उस आदमी को ही शिकार बनाने को तैयार हो जायगा, जिसने उसके शिकार को भगाया हो।

चंपा का सारा शरीर जल रहा था। प्रतिहिंसा की आग बुरी होती है। इस आग को बुझानेवाले संत और महापुरुष गिने जाते हैं। और, यह तो तय है कि चंपा की कोटि के जीव इस युग के प्रभाव से बड़े-से बड़ा पद पा सकते हैं, सर्व-शक्ति-संपन्न शासक बन सकते हैं, करोड़पति बन सकते हैं और किसी राज्य के संचालक भी बन सकते हैं, किंतु संत नहीं बन सकते। रात बीती, और दिन का प्रकाश फैला। चंपा का मन फिर भी स्थिर नहीं हुआ—उसने अपने को स्थिर करने का नहीं, उभारने का ही बराबर यत्न किया। वह अपने तर्ज़ से सोचती और मानसिक ज्वालाओं से झुलसती रही। पद्मा को उसने अपना घोर बैरी मान लिया, जो चंपा के लिये उचित भी कहा जा सकता है।

वह चुपचाप उठी, और अपनी लेडी डॉक्टर के यहाँ पहुँची। उस चुड़ैल-जैसी डरावनी बुढ़िया ने अपने सड़े हुए गंदे दाँत निपोरकर पूछा—"कहो मिस, किधर आई। किसी तरह की मुसीबत तो नहीं पैदा हुई? आजकल की नासमझ छोकरियाँ मेरे पास तब आती हैं, जब उनका गला फँस जाता है। मैं तो कहती हूँ कि ऑपरेशन करा लो और ज़िंदगी-भर के लिये चैन की बंशी बजाओ।"

चंपा बोली—"आप भूल गईं क्या? आपके ही परामर्श से तो मैं गत वर्ष निश्चिंत हो गई थी। एक दूसरा काम है—एकांत में चलिए।"

दोनो बंद कमरे में बातें करती रहीं। आध घंटे के बाद चंपा कमरे से निकली, तो उसके चेहरे पर पैशाचिक आनंद झलक रहा था। वह फुदकती हुई चली गई।

चंपा कई दिनों तक घर से बाहर नहीं निकली। वह देखना चाहती थी कि ज्ञान पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है। जो हो. ज्ञानदेव ने दूसरे ही दिन चंपा की राह देखी। वह दो बार उस स्टोर के सामने गाड़ी पर गया, किंतु मैनेजर से पूछने का साहस नहीं हुआ। ज्ञानदेव अपनी इस दयनीय दुर्बलता को समझता था, किंतु न जाने ऐसी कौन-सी अदृश्य शक्ति थी, जो उसे घसीटती फिरती थी। यह तो कहना ही पड़ेगा कि चंपा के साथ एकांत में घड़ी-दो घड़ी रहना ज्ञानदेव को अच्छा लगने लगा था। यह उसके भीतर का छिपा हुआ वह संस्कार था, जिसका उसे पता न था। दूसरे और तीसरे दिन भी ज्ञान चक्कर काटने से बाज़ न आया। वह अत्यंत उल्लास-भरे चित्त से जाता और कुढ़ता हुआ लौटता। उसकी मानसिक शांति, जो उसके भीतर शुद्ध आनंद का प्रकाश फैलाए रहती थी, क्षीण होती जा रही थी। वह कभी-कभी पद्मा पर भी झुँझला उठता, किंतु ज़ोर लगाकर अपने मनोभावों को दबा रखता। उसके स्वभाव में एक विचित्र परिवर्तन का विस्तार होता जा रहा था। वह प्रायः चंपा का चिंतन करता रहता और उद्विग्न-सा हो जाता था। एक बार तो ज्ञानदेव ने यह भी सोचा कि पद्मा को काशी से वह न लाता, तो अच्छा था।

शेर एक भयानक प्राणी होता है, किंतु उसके स्वभाव में चंचलता नहीं होती। जो उसके स्वभाव को पहचान लेता है, निश्चित मन से उसके साथ खेलता है, जैसे सरकसवाले। साँप भी मूज़ी कीड़ा होता है, किंतु उसके स्वभाव की परख करनेवाले मदारी उसे नचाया करते हैं। शेर और साँप तक के स्वभाव में स्थिरता है, जिस पर विश्वास किया जाता है, किंतु मानव का स्वभाव इतना उलझा होता है कि उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। सभी प्राणियों में श्रेष्ठ मानव है, किंतु यह विश्वास के लायक नहीं है। कब मानव करवट बदल देगा, इसका पता आज तक किसी को भी नहीं चला। संसार

में जितने तरह के पशु, पंछी, जलचर आदि हो चुके हैं, या हैं, उन सबके गुण और स्वभाव का सम्मिश्रण मानव में पाया जाता है—हाय रे मानव !

जब ज्ञानदेव काफ़ी छटपटा चुका, तब एक दिन मोटर लिए भवानी बाबू के यहाँ पहुँचा। भवानी बाबू देशोपकार के कार्य से दूर करने गए थे। चंपा थी। दरवाज़े पर रुकते ही उसने मोटर को पहचाना। आनंद से उसका मन भर गया। वह दौड़ती हुई नीचे आई। चंपा को भ्रम था कि ज्ञान पद्मा के साथ आया है। जब उसने ज्ञान को ही अकेला देखा, तो पगली-सी हो गई।

उसने मोटर के भीतर सिर डालकर कहा—"पागल की तरह दौड़े क्यों आए, बुलवा लेते। मैंने कह दिया है कि मन-प्राण से तुम्हारी ही हूँ।"

ज्ञान बोला—"मन नहीं लगा, तो क्या करूँ।"

चंपा बोली—"चलो. चिल्ड्रेन पार्क के पास आती हूँ।"

ज्ञान चला गया। आध मील की दूरी पर ही बच्चों का पार्क था। रात हो गई थी। सूरज डूबे अर्सा हो गया था। ज्ञान मोटर में बैठा प्रतीक्षा करने लगा। प्रत्येक आनेवाले रिक्शा पर वह चंपा को ही देखता। इस तरह बार-बार उसका हृदय उमड़ता और पछाड़ खाकर गिरता। अब चंपा आई। ज्ञान ने भीतर ही से दरवाज़ा खोल दिया—यह मौन निमंत्रण था। चंपा साड़ी समेटकर, मोटर में घुसकर, चुपचाप बैठ गई। संध्या के बाद से वह स्थान निर्जन हो जाता था। चंपा ने बैठते ही कहा—"मैं भी तुम्हारे लिये अधीर थी ज्ञान, किंतु भाभी सख़्त बीमार हो गई थीं।"

ज्ञानदेव ने कहा—"चंपा, किधर चलूं ?"

चंपा ने कहा—"ऐसी जगह चलो, जहाँ ऊपर शून्य आकाश हो, और नीचे मूक धरती। केवल दो ही हृदय वहाँ एक दूसरे के निकट धड़क रहे हों—बस।"

इतना कहकर चंपा ने ज्ञान की जाँघ पर चिकोटी काट ली।

रंगीन सपने

यदि विचार-पूर्वक देखा जाय, तो हमारा जीवन ठोस धरती पर कम और हवा पर तैरनेवाले सपनों पर अधिक निर्भर है। हम बिना यह विचार किए कि हमारे भीतर कितनी क्षमता है, सुंदर-से-सुंदर योजनाएँ बनाते हैं और यह मान लेते हैं कि योजनाएं बनते ही या बनने के पूर्व ही सफल हो गई। यह आत्मवंचना हमें इतनी प्यारी लगती है कि इसका त्याग करना क्या है, अपने जीवित शरीर की खाल उतारना है।

भवानी बाबू योजनाओं के भंडार थे, और वह सबसे अधिक धनी, सबसे अधिक प्रभावशाली, सबसे अधिक प्रसिद्ध, सबसे अधिक सम्मानीय, सबसे अधिक शानदार और सर्वप्रिय बनने के लिये सबसे अधिक प्रयत्न-शील रहे।

उन्हें धन तो मिलता ही गया, किंतु एक भयानक डाकू, गंदे चोर, पतित, बेईमान और कमीने झूठे के स्तर से ऊपर नहीं उठ सके। हाँ, यह बात जरूर थी कि उनके साहब अत्यंत बलवान् व्यक्ति थे, जिनकी बदौलत भवानी बाबू बिना प्रयास के पाप का घड़ा भरते जा रहे थे। यह उन्होंने कभी नहीं सोचा कि उनके प्रियतम साहब की

मैं यही करता हूँ। जिसे रसातल भेजना होता है, उससे खूब दिल खोलकर मिलता हूँ, और अपना कुछ गँवा कर भी उसका हित करता हूँ। जब वह व्यक्ति पूर्ण विश्वास करने लगता है, तब पीठ में पूरा ज़ोर लगाकर छुरा मार देता हूँ। यह युग राजनीति का है। राजनीति यही सिखलाती है कि जिसका गला काटना चाहो, पहले उसके जूते को टोपी से पोंछा करो, और जूठन उठाया करो। मौका मिलते ही अपना काम बनाओ और चलते बनो"।

चम्पा ने उत्साहित होकर कहा—"भैया, आप मुझ पर विश्वास रखिए। यदि मैं सफल हो गई, तो दो महीने में तुम्हारा कर्ज़ तो अदा हो ही जायगा, घर में भी रुपयों का अंबार लगा दूंगी।"

भवानी बाबू ने कहा—"सुनो चम्पा, पद्मा के हटाने के बाद ज्ञानदेव को भी हटाना होगा। मुझे भय है कहीं तू इश्क-मुहब्बत ......।"

चम्पा बोली—"छि: मैं मुहब्बत में फँसूँगी। ज्ञानदेव देखने में बैल जैसा लगता है—मुझे तो अपने काम से काम है।"

भवानी बाबू ने कहा—"तुम जानती हो शिवराम को। उसने अपनी लड़की का विवाह एक मातृपितृहीन नौजवान से कर दिया। उसके पास विशाल सम्पत्ति थी। साल-भर में ही वह नौजवान चल बसा। शिवराम की लड़की ने अपने पिता के कहने पर चुटकी-भर संखिया की सहायता से सारा तूफान ही ठंढा कर दिया। अब शिवराम मोटर उड़ाये चलता है, और उसकी लड़की भी सोने से लदी हुई परी की तरह दिखलाई पड़ती है। पति-भक्ति और पाप-पुण्य पुराने युग का कुसंस्कार ही तो हैं। नया युग ऐसी भद्दी बातों को तरजीह देना नहीं चाहता।"

चम्पा ने कहा—"ठीक है भैया, हम आज़ाद रह कर आनन्द लेने संसार में आए हैं, न कि किसी का चूल्हा-चौका करने। मैंने

को भी जहन्नुम का रास्ता दिखला दूँ। किन्तु भैया पद्मा के बाद मुझे विवाह तो करना ही होगा, तब ज्ञान की सम्पत्ति प्राप्त हो सकेगी।"

भवानी बाबू ने कहा—"पगली, आज के युग में शादी करना क्या है, नए जूते खरीदना है।

अपना काम निकालने के लिए कुछ भी कर डालना गुनाह नहीं है। मैं तो अपने लक्ष्य को ही प्रधानता देता हूँ। पास में धन रहेगा, तो कोई हमारे दोष देखने नहीं आवेगा। शिवराम को मैंने ही सलाह दी थी कि वह दामाद को जहन्नुम भेजे, वर्ना जीवन भर भीख माँगना होगा। लड़की भी समझदार थी। वह कालेज की रंगीनियों में खेलकर पली थी। उसमें पुरानी गंदी बातें नहीं थीं। नए युग की ताजी हवा में उसे सांस लेने की आदत हो गई थी। वह कब चाहेगी कि अपने पति-परमेश्वर के चरणों की दासी बनकर तीन दर्जन बच्चों की मा बन जाय। जीवन बच्चे पालने के लिए नहीं, आनंदोपभोग के लिए है। आज वह आनंद में सराबोर रहती है। उसका बाप भी बड़े-बड़े ऑफिसरों से हाथ मिलाता है।"

चम्पा ने अपने भाई की इस सुंदर सीख को माथे चढ़ाया, और अवसर की ताक में रहने लगी।

योजना यह थी कि पहले पद्मा को संसार से बिदा किया जाय, फिर ज्ञानदेव से विवाह किया जाय, और एकाध साल या छ महीने तक जीवन के आनंद का उपभोग करके ज्ञानदेव को भी अनंत की ओर ढकेल दिया जाय।

भवानी बाबू ने कहा—"मैं ऐसी व्यवस्था कर दूँगा कि कुछ लोग रात को जायेंगे, और ज्ञानदेव का चुपचाप खून कर देंगे। मेरे ऐसे बहुत से सेवक हैं, जो हँसी-हँसी में क्या नहीं कर सकते। तुम तैयार रहो।"

चंपा संध्या-समय मुस्किराती हुई ज्ञानदेव के यहाँ पहुँची, और

बहुत ही अपनापन के साथ दो घंटे रही। फिर दो दिन बाद गई, और इस तरह उसने आना-जाना बढ़ा दिया। जब न जाती, तो पद्मा अपनी गाड़ी भेज देती। आत्मीयता काफ़ी बढ़ गई। ज्ञानदेव को छेड़ना उसने बंद-सा कर दिया। कभी-कभी उसे पहाड़ी की ओर ले जाती, और घड़ी-भर मन बहला लेती। ज्ञानदेव भी ऊबता नहीं, और निर्भय होकर चंपा के साथ चला जाता। चंपा ने ज्ञानदेव के स्वभाव का अंदाज़ सही-सही लगा लिया था। वह समझ गई कि यदि उसे अधिक खदेड़ा गया, तो सदा के लिये भाग जायगा।

चंपा की निकटता से पद्मा का एकाकीपन मिटता था। वह अकेली ही रहती थी। चंपा बहुत ही दिलचस्प औरत थी। पद्मा का मन खूब बहलता था।

लीला ने अपने को अपने ही भीतर समेटना शुरू किया। वह धीरे-धीरे इस स्थिति में पहुँच गई कि उसकी मा और पिता भी उसे प्रायः भूल ही जाते। कभी-कभी जॉर्ज साहब रानी से पूछ बैठते—"लीला को नहीं देखा", तो रानी जवाब देतीं—"मैंने भी सुबह से नहीं देखा। अपने कमरे से वह बाहर ही नहीं निकली।"

आनेवाले नए युग के अग्रदूतों ने भी आना बंद कर दिया। जो आते भी, तो लीला उनसे मुलाकात करने से इनकार कर देती। एक दिन भवानी बाबू पधारे, तो कोठी में हलचल मच गई।

स्वागत-सत्कार के बाद भवानी बाबू ने पूछा—"लीला नज़र नहीं आ रही है?" जॉर्ज साहब ने रानी की ओर देखा। वह लीला को बुलाने गई। लीला ने कहा—"भवानी बाबू मुझसे ब्याह करेंगे क्या मा, जो देखना चाहते हैं?" यह उत्तर इतना कटु था कि रानी झल्ला उठी, और बोलीं—"कुलच्छनी तू इतना अकृतज्ञ बन जायगी, इसका मुझे विश्वास न था।"

लीला कुर्सी से उठ खड़ी हुई और बोली—"क्या तुमने मुझे बलिदान का बकरा समझकर पाला-पोसा था ?"

रानी बोलीं—"तू बे-लगाम हो गई है ।"

लीला ने हँसकर कहा—"इतना जानकर भी मेरा पिंड तुम लोग क्यों नहीं छोड़ देते, अचरज की बात है ।"

गुस्से से उबलती हुई रानी चली गई । उन्होंने अपने पति से कहा—"लीला का सिर दर्द कर रहा है । वह सो गई ।"

भवानी बाबू को चकमा नहीं दिया जा सकता था । वह बोले—"तो मैं ही चलकर बिटिया रानी को क्यों न देख लूँ ।"

रानी घबराई, और बोलीं—"इसमें हर्ज ही क्या है, किन्तु उसकी दो-चार सखियाँ भी हैं, जिनमें दो तो पुराने रिवाज के अनुसार पर्दा करती हैं ।"

स्त्री-बुद्धि ने भवानी बाबू को दे मारा । बेचारे चुप हो गए । दूसरे दिन जॉर्ज साहब ने लीला को बुलवाया । वह आई, और चुपचाप बैठ गई । बोलने का सूत्र खोजते-खोजते जॉर्ज साहब जब थक गए, तो लीला ने पूछा—"क्या काम है पापा ?"

जार्ज साहब बोले—"काम तो कुछ नही है । यों ही पूछ रहा था क तुमने अपने आपको कैद क्यों कर रक्खा है ?"

लीला ने जवाब दिया—"कैद तो मैंने नहीं किया । हाँ, बाहर नहीं जाती । कहाँ जाऊँ पापा ?" लीला बहुत ही उदास स्वर में बोली, तो जार्ज साहब का मन भी भारी हो गया—पिता का ममतापूर्ण हृदय कभी-न-कभी तो सजीव हो ही उठता है ।

जॉर्ज साहब बोले—"लीला, तुमने क्लब का भी परित्याग कर दिया, जो तुमसे मिलने दो-चार भद्र व्यक्ति आते थे, वे भी अब नहीं आते । आखिर बात क्या है ?"

जॉर्ज साहब भद्र उसी को कहते थे, जो अँगरेजी पोशाक पहने,

और भारत को गालियाँ दे, इस देश के निवासियों को जंगली, मूर्ख, गुलाम, असभ्य, बदतमीज़ आदि कहा करे, और साथ ही विलायत का गुणगान करे ।

लीला बोली—"पापा, आप भी कमीनों को ही भद्र कहा करते हैं । वे, जो मेरे यहाँ आते रहते थे, पक्के लफंगे थे । ऐसे पतितों का नाम लेना भी गुनाह है । क्लब भी ऐसे ही लोगों का अखाड़ा है ।"

जॉर्ज साहब ताव में आ गए, और गुर्राकर बोले—"सो कैसे ?"

लीला ने कहा—"जो व्यक्ति सभ्यता के नाम पर शराब पिए, नशे में नंगा होकर नाचे, और अपनी बहन और बेटियों को भी साथ ही नचावे, उसे मैं किस मुँह से शरीफ़ कहूँ । यदि ये भद्र हैं, तो मुझे बतलाइए, कमीने कैसे होते हैं, पतित कैसे होते हैं ? जुआ, शराब, अनाचार में लगा रहनेवाला चाहे कितने भी ऊँचे पद पर हो, वह नीच है, शैतान है ।"

जॉर्ज साहब क्रोध से बेज़ार हो गए, और उठकर टहलने लगे। उन्हें विश्वास नहीं था कि उनकी लड़की उन्हीं के मुँह पर ऐसी बात बोलेगी।

जॉर्ज साहब ने तेज़ आवाज़ में कहा—"तो विलायतवाले नीच हैं, पतित हैं ?"

लीला बोली—"पापा, वे अपनी तहज़ीब की रक्षा करते हैं । उनकी बातें उन्हीं को शोभती हैं, किंतु हमारे लिये वह पाप का कुंड है । हम विलायती नहीं बन सकते । हम अपने शरीर को जितना भी मोड़ें, बायाँ अंग न तो दाहिना बन सकता है, और न दाहिना बायाँ। यह प्रयास ही मूर्खता-पूर्ण है । बनने के चक्कर में हम कहीं पूरी तरह बिगड़ ही न जायँ ।"

पूरा ज़ोर लगाकर हुँकार करते हुए जॉर्ज साहब अपने कमरे में घुस गए । लीला अपने कमरे में आई और हँसने लगी । उसकी

हँसी ऐसी थी कि यदि कोई हृदयवान् व्यक्ति उसे देख लेता, तो रो देता। कुछ लोगों के आँसुओं में मुस्किराहट छिपी होती है, और कुछ लोग ऐसे भी हैं, जिनकी मुस्किराहट में वेदना का असीम सागर लहराता होता है।

लीला कुर्सी पर बैठी, और सिर झुकाकर विचारों में लीन हो गई। वह अपने अतीत को ज्यों-ज्यों बिसारना चाहती थी, भूल जाना चाहती थी, उसका बीता हुआ उत्तेजना-पूर्ण जीवन त्यों-त्यों उसके सामने स्पष्ट होता जाता था। लीला की आँखें झुलसने लगती थीं उसकी ओर देखने में। सच्ची बात तो यह है कि मानव बहुत साहसी होता है। वह न तो काल से डरता है, और न ईश्वर का लोहा मानता है। यदि वह डरता है, तो अपने आपसे—अपने अतीत से। वह भयानक-से-भयानक दृश्य देख सकता है, किंतु अपने बीते हुए दिनों की ओर लौटकर देखते ही चीख उठता है। मानव के लिये सबसे भयानक भय-स्थान उसका अपना अतीत है—और कहीं नहीं।

लीला के सामने ज्यों-ज्यों उसका बीता हुआ जीवन स्पष्ट होता. वह अधीर होती जाती। चित्रों के झरने की तरह उसकी मानसिक आँखों के सामने बहुत-सी घटनाएँ तेजी से भागने लगीं, वह छटपट करती रही, पर उस ज़ोरदार प्रवाह को रोकने की ताकत उसमें नहीं थी।

एक दिन जो उसके रंगीन सपने थे, अब लज्जाजनक और दम घोटनेवाले बन चुके थे। जिन उद्वेग पैदा करनेवाली घटनाओं को याद करके लीला अपने भीतर उन्मत्तता और सुरूर का अनुभव करती थी, उन्हीं घटनाओं की याद अब उसे परिताप और लज्जा की आग में झुलसा डालती थी। सचमुच मानव का मन इतना विचित्र है कि वह नरक को स्वर्ग और स्वर्ग को नरक बना डालने की ताकत रखता है। मन बदला नहीं कि दृष्टिकोण बदल गया, और दृष्टिकोण बदला नहीं कि दुनिया बदल गई।

लीला की दुनिया ही बदल गई थी। जॉर्ज साहब की दुनिया अपनी जगह पर कायम थी। ऐसे लोग रोग उसकी तरह असाध्य होते हैं, जो अपनी दुनिया को किसी भी मूल्य पर बदलने नहीं देते। वे अनुभवशीलता के गुण से वंचित हैं, और भीतर से पथरा चुके हैं। जॉर्ज साहब लीला को जंगली स्थिति से बाहर निकालना चाहते थे, किंतु वह एक नहीं सुनती थी। एक संघर्ष-सा छिड़ गया। लीला का जो अभाव उन विलास-पूर्ण क्लबों में हो गया था. जिनमे शहर के नए अँगरेज़ बहादुर जाया करते थे, रानी मिटाना चाहती थीं। वह प्रयत्न करती थीं कि नाच-गा-कर और अधनंगी पोशाक पहनकर क्लब के महानुभावों को इस तरह अपनी ओर आकर्षित कर लें कि वहाँ जितने रसिया जमा होते हैं, वे लीला को बिलकुल ही भूल जायँ, और रानी के लिये लालायित रहने लगें, किंतु यह बात असंभव ही थी। किसी भी उपाय से रानी को यह विश्वास कराया ही नहीं जा सकता था कि वह पचास-पचपन साल की बुढ़िया है, यौवन उसके चहरे पर थूककर चला गया, जो अब किसी भी तरह लौटने को नहीं।

रानी ने अपने पति से कहा—"क्यों जी, लीला के लिये लोग क्यों इतना परेशान रहते हैं?"

जॉर्ज साहब ने कहा—"विलायत में मैंने देखा है कि सुंदरी छोकरियों की क़द्र बकिंघम-पैलेस में भी होती है। बादशाह भी उनसे घिरा रहना पसंद करते हैं, और उनके साथ शराब पीकर नाचते हैं। यह तो ऊँचे दर्जे की सभ्यता है, डार्लिंग।"

रानी ने ज़रा-सा- लचककर पूछा—"मैं क्या जवान नहीं हूँ?"

जॉर्ज साहब बोले—"इसमें शक ही क्या है, मगर लीला की बात दूसरी जो ठहरी।"

रानी को संतोष नहीं हुआ। उन्होंने शीशे के सामने खड़े होकर अपने आपसे पूछा—"मैं जवान नहीं हूँ क्या?"

इसके बाद स्वयं ही अपने सवाल का जवाब दिया—"अभी छोक-रियाँ क्या खाकर मेरे रूप-यौवन का मुकाबला कर सकती हैं ।"

संध्या-समय जब जॉर्ज साहब क्लब जाने लगे, तो रानी ने इतना ज़ोरदार शृंगार किया कि जॉर्ज साहब भी हँस पड़े । क्लब में जो-जो आए थे, वे एकटक रानी की ओर देखते रह गए । किसी-किसी ने तो अपने मित्र के कान में यह भी कहा कि "यह बुढ़िया ज़रूर सनक गई है ।"

लीला ने भी अपनी मा को क्लब जाते देखा । वह कराहकर रह गई, और बोली—"हाय रे मानव, तेरा ऐसा घृणित पतन ! यह अभागी बुढ़िया क्लब में रसिकों को लुभाने जा रही है—छिः । छिः ।"

लीला कुछ भी सोचे, दुनिया कुछ भी कहे, समाज की कुछ भी राय हो, किंतु जो नई हवा यहाँ बहुत यत्न करके लाई गई है, वह तो बहेगी ही, जरूर बहेगी, और तब तक बहती रहेगी, जब तक शैतान खुद ऊबकर अपना प्रभाव समेट न लेगा ।

लीला के एक आदरणीय मित्र थे प्रोफ़ेसर शर्मा । यह प्रौढ़ और विचारवान् व्यक्ति थे । रविवार को लीला से मुलाकात करने कुछ दिनों से आने लगे थे, किंतु जान-पहचान तो पुरानी ही थी । लीला के लिये शर्मा के हृदय में बड़ा दर्द था । वह चाहते थे, लीला अपना रास्ता बदले किंतु बेचारे अनन्योपाय थे । जॉर्ज साहब इस देश से जितना घिनाते थे, और विलायत की प्रशंसा करते थे, वह शर्मा के लिये असह्य था ।

संध्या होते ही शर्मा आए । लीला बरामदे में ही चुप बैठी थी । शर्मा भी बैठ गए । जॉर्ज साहब भी किसी ओर से टाई-कालर सुधारते हुए आए, और शर्मा को देखते ही कुर्सी पर बैठ गए ।

बैठते ही जॉर्ज साहब ने पूछा—"क्यों मि० शर्मा, आप क्या समझते हैं, यह मुल्क बिना अपने पुरानेपन को छोड़े तरक्की कर सकता है ? हमें अभी योरप से बहुत कुछ सीखना है ।"

शर्मा ने कहा—"ज्ञान-विज्ञान की वहाँ उन्नति जरूर हुई है, मगर संस्कृति तो हम अपनी ही रखना चाहते हैं।"

जॉर्ज साहब बोले—"हिंदुस्तान की अपनी संस्कृति कुछ है ही नहीं। यह देश हज़ारों साल तक ग़ुलाम रहा। जो विजेता आए, उन्होंने अपनी-अपनी संस्कृति का दान देकर इसे संस्कृतिमान् बनाया। इस जंगली मुल्क के पास था ही क्या जनाब?"

शर्मा ने कहा—"हिंदुस्तान की अपनी संस्कृति कुछ भी नहीं है, यह आप किस आधार पर कहते हैं?"

जॉर्ज साहब बोले—"ईसा के सात सौ साल बाद वेद बने, जो गड़ेरियों के गीत हैं, रामायण और महाभारत लिखनेवाला कौन था, आप जानते हैं?" शर्मा ने विनय-पूर्वक अपना अज्ञान प्रकट किया, तो जॉर्ज साहब बोले—"ग्रीक और ईरान के पंडितों ने इन किताबों को लिखा। पांडव मंगोलियन थे—यह तो आप भी जानते हैं।"

शर्मा ने कहा—"यह तो मैं नहीं जानता। आप बड़ी अच्छी बात कह रहे हैं।"

जॉर्ज साहब ने कहा—"आज़ाद हिंदुस्तान को योरप का मुकाबला करने के लिये अपनी जंगली तहज़ीब को छोड़ना होगा। अगर इसने पुराने भद्देपन का त्याग न किया, तो फिर ग़ुलाम हो जायगा।"

शर्माजी बोले—"आप बहुत मार्के की बात कह रहे हैं।"

जॉर्ज साहब ने कहा—"लड़कों और लडकियों की आज़ादी, क्लब, सिनेमा, नाच-घर का विकास, शादी-विवाह के बंधनों का अंत, कहाँ तक कहूँ, नाते-रिश्तों का खात्मा, धर्म-अधर्म का प्रपंच जड़ से साफ़—मैं कहता हूँ, जब तक हिंदुस्तान इन सारे दुर्गुणों पर विजय प्राप्त नहीं करना, तब तक इसका उत्थान हो नहीं सकता।"

शर्माजी नमस्कार करके दो ही मिनट में उठ खड़े हुए, और लोला से बोले—"बहन, फिर कभी आऊँगा। आज क्षमा कर दो।"

अभी जॉर्ज साहब के बोलने के जोश में कमज़ोरी नहीं आई थी।

जब शर्मा चले गए, तो उन्होंने लीला का गला घोटना शुरू किया। कहने लगे—"अँगरेज़ों के गुणों का प्रचार होना ही चाहिए। मैं जब विलायत में था, तो जान-बूझकर गोमांस खाता था।"

लीला हाथ जोड़कर उठ खड़ी हुई, और बोली—"पापा, दया करके यह बात जहाँ-तहाँ मत बोलना।"

इतना कहकर लीला भी जब चली गई, तो चश्मा उतारकर जॉर्ज साहब क्रोध से तिलमिलाते हुए उस कुर्सी को ही ताकते रहे, जिस पर लीला बैठी थी।

संध्या समाप्त हो गई। रात आई।

चंपा धीरे-धीरे मोटर की ओर चली। वही पूर्व-परिचित पहाड़ी स्थान था। उसने ज्ञानदेव से कहा, जो पीछे-पीछे आ रहा था—"ज्ञान, औरत एक ही बार प्यार करती है। दूसरी बार जब वह प्यार करती है, तो उसका नाम विकार हो जाता है, और तीसरी बार अनाचार तथा चौथी बार अत्याचार। ज्ञान, मैंने जीवन में पहली बार तुम्हें प्यार किया, यह न भूलना।"

ज्ञानदेव बोला—"चंपा यह अविश्वास क्यों?"

चंपा ने ज्ञान को बाहु-पाश में बाँधकर कहा—"संसार की निधि आज पा गई।"

लक्ष्य की ओर

भवानी बाबू ने चंपा से एक दिन पूछा—"क्या किया ? सावधान होने पर शिकार चंपत हो जाता है ।"

चंपा बोली—"असंभव है भैया । ज्ञान जायगा कहाँ । अभी वह उचटा-सा ही व्यवहार करता है । पहले उसके मन में विश्वास पैदा कराना होगा, तब दूसरी योजना काम में लाऊँगी ।"

भवानी बाबू बोले—"तकाज़ों से तंग आ गया हूँ । साहब का बैंक-एकाउंट मेरे ही नाम से रहता है । करीब बीस हज़ार रुपये तो उसमें से लेकर इज्ज़त बचाई । इतना कमाता हूँ, पर पता नहीं चलता, क्या हो जाता है । कॉलेज खोलने के लिये चंदे के नाम पर चालीस हज़ार उगाहा, वह भी नहीं रहा, साहब की वर्ष-गाँठ मनाने के लिये जो कुछ बटोरा, वह भी साफ़ हो गया । जिनका-जिनका काम हो गया, उनका रुपया तो रह गया, किंतु जिनका काम नहीं हुआ, वे रात-दिन सिर खाए जाते हैं । आज मैंने हिसाब जोड़ा, तो माथा घूम गया—क़रीब चालीस हज़ार लौटाना है ।"

चंपा बोली—"जिस काम को तुम कर नहीं सकते, उसके लिये पैसे क्यों ले लेते हो भैया ?"

भवानी बाबू ने कहा—"ऑफ़िसवालों ने धोखा दिया ।"

चंपा बोली—"तुम उन्हें कभी कुछ नहीं देते। डरा-धमकाकर काम लेते हो, और सोलहो आने हड़प कर जाते हो। यह तरीका ग़लत है। कल साहब पावर में नहीं रहे, तो जेल जाना पड़ेगा, यह याद कर लो।"

भवानी बाबू ने कहा—"यह असंभव है चंपा। साहब को कोई अपनी जगह से खिसकानेवाला आज तक पैदा ही नहीं हुआ।"

चंपा बोली—"जो भी हो, ज्ञानदेव अब धीरे-धीरे खिसकता जा रहा है। वह अब कभी-कभी हँसता भी है, मगर तुरंत फिर पत्थर की मूर्ति बन जाता है। मैं तो थक गई। न-जाने किस धातु का बना है वह मूजी।"

भवानी बाबू ने कहा—"निराश होने से काम नष्ट हो जायगा। मैं कभी निराश नहीं होता। कोई यदि आकाश का चाँद लेना चाहे, तो मैं तुरंत उससे मामला तय कर लूँगा। यह कभी नहीं सोचूँगा कि मैं चाँद नहीं दिला सकता। आशा का त्याग करना जीवन का त्याग करना होता है। जैसे साँप चुपचाप अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता है, उसी तरह बढ़ना चाहिए। मौक़ा मिलते ही झपट्टा मारो, विजय तुम्हारे हाथ में है। मैं तो अपना काम साधना चाहता हूँ। मुसलमान दोस्तों के यहाँ जाता हूँ, तो दिल खोलकर गोमांस तक खाता हूँ, और पोंगापंथियों के यहाँ जाता हूँ, तो श्रद्धा से सिर झुकाकर उनके भगवान् का प्रसाद लेता हूँ। मेरा तो अपना लक्ष्य प्रधान है—मेरे लिये न मुसलमान महत्त्व-पूर्ण और न हिंदू। हिंदुओं को भड़काकर मुसलमानों के घर लुटवाए हैं मैंने, और मुसलमानों पर पानी चढ़ा कर कितने ही मंदिरों का सफ़ाया करा दिया। सोचना यह है कि कब, कहाँ, किस नीति से अपना काम बनता है।"

चंपा बोली—"यह तो इस युग का प्रधान धर्म है। बिना अनेक रूप धारण किए न तो धन मिलेगा, और न यश। आप उचित ही करते हैं भैया।"

भवानी बाबू बोले—"देखती नहीं, कितने तिलक-चंदन वाले और विद्वान्, पंडित, प्रोफ़ेसर मेरे जूतों पर नाक रगड़ा करते हैं। उन्होंने युग-धर्म का पालन नहीं किया, इसीलिये भूखों मरना पड़ता है, कर्ज़ खाना पड़ता है, और कहीं उनकी पूछ भी नहीं होती—मारे-मारे फिरते हैं अभागे।"

चंपा श्रृंगार करने चली गई, और भवानी बाबू अपने कमरे में बैठ गए। दरबार लग गया। तरह-तरह के लोग आकर बैठ गए, और जो कमरे में नहीं घुस सके, वे बाहर खड़े-खड़े सिगरेट और बीड़ी फूँकते रहे। चंपा श्रृंगार करके शीशे के सामने खड़ी हुई, तो कुमारी ने पूछा—"आज का क्या प्रोग्राम है, मिस साहबा ?"

चंपा ने कहा—"मैं तुमसे कभी पूछती हूँ कि कहाँ का प्रोग्राम है, जो तुम यात्रा पर टोक रही हो ?"

कुमारी बोली—"बीस दिन तक खाट पर करवटें बदलती रही। अब शरीर कुछ ठीक हुआ है, फिर भी सिर चकराता ही रहता है।"

चंपा ने मुस्किराकर पूछा—"फिर शिकार का शौक चर्राया है क्या ?"

कुमारी ने कहा—"और जो आप तीन दिन तक अस्पताल की शरण में रहीं, सो क्यों ?"

चंपा को यह बात तीर-सी लगी। वह झलाकर बोली—"शर्म नहीं आती मुझ पर छींटाकशी करते। अपनी शकल तो शीशे में देखो। चली थीं अप-टु-डेट बनने, कैसा मज़ा चखा।"

कुमारी भी गरम हो गई, पर कुछ बोली नहीं। होठ चबाकर रह गई।

चंपा ने फिर प्रहार किया—"वह डेढ़ हाथ का घूंघट क्या हुआ, बहनजी ? सावित्री, सीता का वह आदर्श क्या हुआ ? कहाँ हैं आप, इसका भी कुछ ख्याल है।"

इतना कहकर चंपा कमरे के बाहर हो गई, और चप्पल फटफटाती

हुई नीचे उतर गई । मानो कोई निर्दय शिकारी शिकार को घायल करके ही चला जाय, शिकार को तड़प-तड़पकर मरने के लिये छोड़कर। चंपा सीधे ज्ञानदेव के यहाँ पहुँची । पद्मा अकेली ही बैठी थी । ज्ञान बाहर गया था । संध्या का समय था । जैसे ही चंपा बैठी, चाय की सुनहली ट्रे आई । पद्मा ने ट्रे को चंपा के आगे खिसकाकर कहा— "चाय तैयार करो बहनजी, मैं आई ।"

वह इतना कहकर सीढ़ियों को तय करती हुई ऊपर चली गई । चंपा ने सोचा, यह मौका अच्छा है । उसने अपना हैंड-बेग खोला, और एक प्याली में इधर-उधर देखकर कुछ डाल दिया । एक क्षण में ही यह काम हो गया । चंपा का हाथ काँप गया, और दिल भी दहल गया । वह क्षण-भर रुकी, और सोचने लगी कि वह क्या कर रही है । एक बार उसने अपने सिर को झटका दिया, और ज़ोर लगाकर मन को टिका लिया, जिसका उसे अभ्यास था । जब पद्मा नीचे उतरने लगी, तो चंपा ने दोनो कपों को भरना शुरू कर दिया । पद्मा आकर कुर्सी पर बैठ गई । चाय की प्याली वह उठाना ही चाहती थी कि चंपा का हृदय फिर धड़क उठा । वह चाहती थी कि पद्मा को चाय पीने से रोक दे, किंतु ऐसा करना खतरे से खाली न था । एक-एक क्षण चंपा के लिये घोर हृदय-मंथन का था । पद्मा आकर कुर्सी पर हाँफती हुई बैठी, क्योंकि वह तेज़ी से भागती आ रही थी । प्याली की ओर एक बार हाथ बढ़ाकर पद्मा ने फिर हाथ खींच लिया । चंपा में इतना साहस न था कि वह चाय पीने का आग्रह करती ।

पद्मा न-जाने क्या सोचने लगी । चंपा कभी चाय की प्याली को और कभी पद्मा के अत्यंत सुंदर मुँह की ओर देखती रही । उस समय पद्मा उसे बहुत ही सुंदरी और प्यारी लग रही थी । भरी जवानी और भरा सुहाग—चंपा के मुँह से एक अव्यक्त कराह निकली, और हवा में विलीन हो गई । वह कितनी सुंदर प्रतिमा को नष्ट

करने जा रही है, इसका खयाल भी चंपा के मन में पैदा हुआ, किंतु जब मानव की खुदगर्ज़ी प्रबल हो जाती है, तब वह राक्षस से भी अधिक दया-ममता-हीन बन जाता है। चंपा ने सोचा, यदि पद्मा को दुनिया से मिटा देने के बाद भी ज्ञान को वह नहीं फँसा सकी, तो नर-हत्या का यह पाप अकारण ही उसके सिर पर चढ़ा। साहसी और मक्कार होने पर भी वह स्त्री थी, और कभी-कभी उसके भीतर मातृत्व की संवेदनशीलता ज़ोर मारने लगती थी।

इसी समय लीला ने कमरे में प्रवेश किया। पद्मा उठ खड़ी हुई, और पूर्ण आदर से उसे बैठाकर अपने आगे की चाय की प्याली उसके आगे खिसकाकर कहा—बहन, स्वीकार करो।"

चंपा चौंक उठी—अरे, यह क्या हो गया। लीला चुपचाप चाय पीने लगी, एक शब्द भी नहीं कहा।

ज्यों-ज्यों लीला चाय पीती जाती थी, चंपा के चेहरे का रंग उड़ता जाता था। दिन का प्रकाश होता, तो यह बात किसी पर भी छिपी नहीं रहती। वह इतना व्यग्र हुई कि बोल उठी—"यह बुरा हुआ।"

पद्मा ने चौंककर पूछा—"क्या बुरा हुआ ?"

चंपा बोली—"यही कि आपने चाय नहीं पी।"

लीला मुस्किराकर बोली—"बहनजी, आप क्या कह रही हैं ? मैं तो आप दोनों की बहन हूँ। मैं तो कभी आपका हिस्सा और कभी इनका हिस्सा खाकर ही जीवन-निर्वाह करूँगी। आप इतने ही से घबरा गईं।"

चंपा मुस्किराई, और कुर्सी से उठती हुई बोली—"आज कुछ जल्दी में हूँ। आप लीला बहन से मनोरंजन कीजिए, और मैं कल आऊँगी।"

पद्मा ने कहा—"काम क्या है, यह तो बतलाए जाइए।"

चंपा ने जल्दी-जल्दी कहा—"कुछ नहीं। भैया बाहर जानेवाले हैं। उन्हें कुछ कहना है—बस, यही काम है। अच्छा, प्रणाम।"

तेज़ चाल से चंपा कमरे के बाहर हो गई। उसके पैर इस तरह डगमगा रहे थे, मानो शराब के नशे का ज़ोर हो। अपने आपको सँभाली हुई चंपा चली गई, किंतु वह बेहोश-सी थी, अर्ध-मूर्च्छितावस्था में।

वह बहुत दूर तक पैदल ही चली गई, तब उसे चेत हुआ कि उसे रिक्शा की आवश्यकता है। वह रुकी, और फिर चल पड़ी। वह प्रयास करके अपने मन को बहिर्मुख करना चाहती थी, किंतु विफल हो जाती थी। उसने चाहा कुछ करना, और हो गया कुछ—यह विचित्र संयोग था।

चंपा पगली की तरह घर पहुँची, और धड़धड़ाती हुई अपने भाई के कमरे में घुसी। पता चला कि भवानी बाबू देश में जीवन और चेतना पैदा करने टूर पर अपने साहब के साथ गए हैं।

चंपा असहाय-सी होकर बिलखने लगी। वह किधर गए, कहाँ गए, पता नहीं। घर में फ़ोन था नहीं, जो साहब के बँगले से पता चलाया जाय कि किस दिशा की ओर यह दल गया है।

छटपटाती हुई चंपा फिर घर से निकली, और साहब की कोठी की ओर भागी। वहाँ कोई निश्चित पता बतलानेवाला न था—हाँ, इतना पता तो चला कि टूर-प्रोग्राम एक सप्ताह का है।

अब चंपा क्या करती—घंटे-दो-घंटे में भाग्य का सबसे भयानक नाटक प्रकाश में आनेवाला था। यदि पता भी चल जाता कि उसके भाई किस ओर यात्रा कर रहे हैं, तो वह अभी ट्रेन पर ही होंगे, चंपा अपना दुखड़ा सुनाती, तो कैसे।

अर्ध-विक्षिप्तावस्था में चंपा फिर अपने घर लौटी, और अच्छी तरह भीतर से दरवाज़े बंद करके अपनी कोठरी में कैद हो गई।

कुमारी ने आँख के इशारे से एक नौकरानी से पूछा—"क्या मामला है ?"

नौकरानी ने फुसफुसाकर कहा—"पता नहीं, क्या बात है।"

चाय पीकर लीला कुछ देर ठहरी, और फिर अपनी कोठी पर लौट आई। वह स्वस्थ थी, किंतु दो घंटे बाद उसका सिर चकराने लगा। उसने कुछ खाया नहीं। सिर का चकराना कुछ तेज़ हुआ, और उबकाई भी आने लगी। एकाएक ज़ोर की उबकाई आई, और मुँह से चुल्लू-भर ताज़ा खून फ़र्श पर गिरा—छाती में ज़ोर से दर्द शुरू हो गया।

लीला चीख उठी। उसकी मा, जो सोने की तैयारी कर रही थी, दौड़ी आई, तो फ़र्श पर खून देखकर, अधीर होकर जॉर्ज साहब को बुलाने दौड़ी। वह भी आए।

जब उन्होंने भी खून देखा, तो लीला से कहा—"बेटी, यह तूने क्या किया ?"

लीला ने कराहते हुए जवाब दिया—"नहीं पापा, मैंने कुछ नहीं किया। मैं मरना नहीं चाहती। डॉक्टर बुलाओ।"

जॉर्ज साहब ने फ़ोन न करके गाड़ी दौड़ाई। वह आध घंटे के भीतर ही दो-तीन डॉक्टरों के साथ लौटे। लीला लेटी हुई थी। दूसरी कै नहीं हुई थी। छाती में दर्द ज्यों-का-त्यों था। डॉक्टरों ने राय दी कि अस्पताल ले जाना ठीक होगा। सभी पुराने और अनुभवी डॉक्टर थे—घबरा उठे। लीला को अस्पताल पहुँचाया गया। जाँच शुरू हुई, और यह पता चल गया कि विष का प्रयोग हुआ है।

यह एक भयानक बात थी। लीला से कहा गया कि वह अपना बयान दर्ज कर दे। मैजिस्ट्रेट और पुलिस के अधिकारियों को भी खबर दे दी गई। मामला संगीन हो गया।

लीला की चेतना आहत नहीं हुई थी। वह सजग थी, और साहस का भी अभाव नहीं हुआ था। वह यह सोच नहीं सकती थी कि पद्मा उसे विष देगी। उसने वहीं चाय पी थी, और तो कुछ खाया नहीं था। जो अंतिम बार भौतिक वस्तु उसने अपने पेट में

डाली थी, वह थी चाय, उसने पद्मा के यहाँ पी थी। वह जानती थी कि जो विष उसके पेट में गया है, वह किसी दूसरे के लिये ही था; विष किसी के लिये था, किंतु मौत थी लीला की, तो इस विधि के विधान का क्या इलाज हो सकता है।

लीला मन-ही-मन सोचने लगी। वह जब पद्मा के कमरे के दर-वाज़े पर आई, तो उसने चंपा को ही देखा। वह बाहर ही रुकी रही। उसने फिर देखा कि पद्मा सीढ़ियों पर से उतरती हुई कमरे में आई, तब लीला अंदर गई। चंपा की पीठ की ओर से लीला आई थी। उसने देखा था कि एक कप चाय तो चंपा पी रही है, दूसरा भरा हुआ प्याला उसके निकट ही पड़ा है। चाय की ट्रे भी चंपा के ही निकट थी। चंपा ने लीला के सामने ही उस चाय के प्याले को पद्मा के आगे खिसकाया, जिसे पद्मा ने लीला के आगे बढ़ा दिया। जब लीला चाय पीने लगी, तो चंपा एकाएक बोल उठी—
"अरे, यह क्या हो गया!"

धीरे-धीरे लीला के सामने वस्तु और उसकी स्थिति अपने असली रूप में स्पष्ट होने लगी। यह साफ़ हो गया कि वह विष, जो घटना-क्रम से लीला के पेट में चला गया, पद्मा के लिये था। लीला चंपा को और उसके आचार-व्यवहार को जानती थी, वह जानती थी कि इधर दो-तीन महीने से चंपा पद्मा के यहाँ करीब-करीब रोज़ ही जाती है। उसने एक बार ज्ञानदेव को भी चंपा के साथ मोटर पर देखा था, जब वह बाज़ार से लौट रही थी। लीला सोच ही रही थी कि वह पद्मा को सावधान कर दे कि भगवान् ही ने उसे सावधान कर दिया। लीला मन-ही-मन प्रसन्न हुई, इसलिये कि उसने अनजाने ही सही, पद्मा को तो अकाल मृत्यु के शिकंजे से बचा लिया। शायद पद्मा की मृत्यु के बाद ज्ञानदेव का मन भी उचट जाता, तो यह सारा परिवार ही समाप्त हो जाता। लीला ने यह भी जान लिया कि जिस लेडी डॉक्टर के यहाँ चंपा उसे कभी ले गई थी, उसी की [illegible] का परिणाम लीला भुगत रही है।

सभी बिखरी हुई बातों को एक ही सूत्र में पिरोकर लीला ने आत्मतोष का ही अनुभव किया।

मजिस्ट्रेट आ गए। बयान लेने की तैयारी हो गई। यह शायद उसका अंतिम बयान था।

करीम साहब, जो सिटी एम्० पी० की जगह पर थे, सदल-बल आए। लीला ने बहुत ही स्पष्टता-पूर्वक बयान लिखवा दिया, और अंत में कहा—"अगर इस संसार में कोई मेरा हित चाहनेवाला है, तो वह ज्ञानदेव है, और उनकी पत्नी पद्मसंभवा देवी। चंपा से भी उसका कोई बैर नहीं है। यह कुकांड कैसे हो गया, यह तो भाग्य का खेल ही समझा जा सकता है। मैं किसी की शिकायत नहीं करती, और न मेरे मन में किसी के प्रति कोई द्वेष ही है।"

करीम साहब ने गुर्राकर कहा—"समझ गया।"

छोटे दारोग़ा को तो पद्मा का बयान दर्ज करने भेज दिया, और स्वयं करीम साहब पुलिस-फ़ोर्स के साथ भवानी बाबू के घर की ओर लपके। सारा काम चुपचाप और अनायास ही हो गया।

डॉक्टरों ने लीला को जिलाने के लिये जी तोड़ परिश्रम आरंभ कर दिया। एक दारोग़ा ने जाकर उस लेडी डॉक्टर को हिरासत में ले लिया। उसके घर पर पुलिस का पहरा बैठा दिया गया।

पद्मा का बयान भी वही था, जो लीला का था। ज्ञानदेव ने शांत स्वर में कहा—"यह भी उत्तम ही हुआ। उफ़्!"

पद्मा बहुत ही घबरा गई थी, और लीला के लिये फूट-फूट कर रो भी रही थी। जब बयान दर्ज कर लिया गया, तो पद्मा ज्ञान के साथ अस्पताल की ओर भागी। अर्ध-मूर्च्छितावस्था में लीला पड़ी थी, और उसके सुई-पर-सुई लगाई जा रही थीं। डॉक्टरों ने कहा—"ज़हर बहुत तेज़ है, किंतु इसका असर धीरे-धीरे होता है शायद दो-चार दिन भी रोगी जी सकता है।"

ज्ञानदेव ने कहा—"आप लीला को बचाने के लिये कोई उपाय

बाकी न रक्खें। मैं सात बार भी इने रुपयों मे तोल देने में मूर्ख ही मानूँगा। यह मेरी बहन है।"

डॉक्टर ज्ञानदेव को जानते थे। उन्होंने कहा—"आप चिंता न करें। आशा तो है कि रोगी को हम बचा लेंगे।"

करीम साहब ने उसी तरह भवानी बाबू के घर पर हमला किया, जैसे कोई दुश्मन किसी राज्य पर करता है।

लाला के प्रति यह उनकी सदयता नहीं थी, बल्कि भवानी बाबू के प्रति रोष था। चंपा भीतर से दरवाजा बंद किए थी, और खोलना नहीं चाहती थी।

सड़क पर हजारों आदमियों की भीड़ थी—शोर मच रहा था। करीम साहब ने ज़ोरदार धक्का मारकर किवाड़ खोल दिया। चंपा आलमारी के पीछे आँचल से मुँह छिपाये खड़ी थी।

करीम साहब बोले—"क्या अदा है खड़े होने की। कुर्बान जाऊँ। चलिए, नीचे सवारी तैयार है।"

इतना कहकर क्रोध से पैर पटककर करीम साहब ने कहा—"यों नहीं जाती, तो हाथों में हथकड़ियाँ डाल दो, और घसीटते हुए नीचे ले आओ।"

चंपा थर-थर काँप रही थी। उपाय ही क्या था। वह रोने और करीम साहब के पैर पकड़ने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकती थी। करीम साहब की भयानक मूर्ति उसके सामने खड़ी दाँत पीस रही थी।

मुहल्ले की दो औरतों से यह पहचान करवाई गई कि यही चंपा है, और पुलिस चंपा को लेकर चली गई। कुमारी घर के एक कोने में छिपी बैठी रही। जो नौकर थे, वे भाग गए थे। चलते समय करीम साहब ने कहा—"कुमारी साहबा कहीं से सुन रही हों, तो सुन लें—मेरा नाम अब्दुल करीम खाँ है। अपने भाई साहब को मेरा सलाम कहिएगा और कह दीजिएगा कि मिस चंपा को जेल में

कोई तकलीफ़ नहीं होगी, बशर्ते यह सही-सही बयान दर्ज कराकर मुझे परेशानी से बचा लें।"

चंपा थाने पर चली गई। भीड़ भी तितर-बितर हो गई। किसी ने कहा—"अच्छा ही हुआ। भवानी बाबू की सारी शेखी हवा हो गई। साला किसी से सीधे मुँह बात भी नहीं करता था।"

किसी ने कहा—"भगवान दूर नहीं हैं जी, इन दलालों और बेई-मानों ने ही सरकार को इतना बदनाम कर रक्खा है कि लोग अपनी गुलामी को ही अब अच्छा समझने लगे थे।"

किसी ने कहा—"भवानी बाबू को आने दो। वह सारा मामला चाट जायगा। ऐसे शैतानों के ही चलते जनता का विश्वास न्याय पर से भी उठता जा रहा है। चोर-डाकुओं की हिफ़ाज़त यहाँ भवानी बाबू जैसे ही पाजी करते हैं, और जनता लूटी जाती है।"

किसी ने कहा—"रुपया बटोरने का चस्का जिसे लग जाता है, वह क्या नहीं कर सकता? भवानी बाबू ने भी कितनों के घर लुटवाए, खून कराए, घर फुँकवा दिए, तो क्या हुआ। इस बार भी कुछ न होगा। पापियों की सहायता सभी करते हैं, ग़रीबों के आँसू भगवान भी नहीं पोंछता।"

किसी ने कहा—"यह छोकरी भी अजीब थी। रोज़ नए-नए मित्र बनाती ही रहती थी। भवानी बाबू ने इसे मालदारों को फँसाने की पूरी छूट दे रक्खी थी। ऐसा भी पतित व्यक्ति कहीं होता है!"

किसी ने कहा—"देखते नहीं, भवानी बाबू के यहाँ कैसे-कैसे लोगों की भीड़ लगी रहती है। सरकार का पूरा सेक्रेटरियट ही उठ-कर इनके कमरे में चला आया है।"

किसी ने कहा—"यदि सरकार किसी दिन डूबेगी भी, तो अपने ऐसे ही मित्रों और सहायकों के पाप से।"

जन-मत को क्या कहा जाय—जिसके मुँह में जो आया, कह गया। रात अधिक बीत गई थी। चंपा को थाने की हवालात में

बंद करके करीम साहब ने मातहत ऑफ़िसरों को हुक्म दिया कि मैं मामले को खुद देखूंगा ।

हवालात में चंपा ने जब लेडी डॉक्टर को देखा, तो सिहर उठी । पुलिस ने यहाँ तक दौड़ मारी ।

अपने बयान में चंपा ने सब कुछ स्वीकार कर लिया—करीम साहब को केवल बेत लेकर एक बार ही धमकाना पड़ा । उसने यह स्वीकार कर लिया कि वह पद्मा को विष देना चाहती थी, धोखे से लीला वह चाय पी गई ।

लेडी डॉक्टर ने भी कुछ प्रयत्न के बाद यह स्वीकार कर लिया कि चंपा के कहने से उसने उसे विष दिया । बदले में चंपा ने उसे एक हज़ार देने का वायदा किया था ।

करीम साहब ने पूछा—"श्रीमती पद्मसंभवा की मौत के बाद ही तुम्हें यह रकम मिलती न ?"

लेडी डॉक्टर ने कहा—"मैं नहीं जानती कि इस विष का प्रयोग चंपा किस पर करना चाहती थी ।"

करीम साहब ने पूछा—"तुमने जान-बूझकर विष क्यों दिया ?"

वह चुप हो गई ।

करीम साहब ने कई बार ज्ञानदेव को चंपा के साथ पहाड़ियों की ओर जाते देखा था । उन्हें पता था कि चंपा लेडी डॉक्टर के यहाँ बराबर आती-जाती रहती है ।

करीम साहब ने इस मामले को अपने हाथ में रक्खा, और सख्ती से जाँच-पड़ताल का काम शुरू कर दिया ।

अखबारों में यह समाचार जब छपा, तो भवानी बाबू के हाथ के तोते उड़ गए । वह अपने साहब के साथ ही वायु-वेग से लौटे ।

इधर करीम साहब ने तूफ़ान पैदा कर रक्खा था, और उधर महातेजस्वी भवानी बाबू आए ।

घर पहुँचते ही भवानी बाबू का ध्यान चंपा के उन ज़ेवरों की

और गया, जो समय-समय पर उन्होंने उसे खुश करने के लिये दिए थे। भवानी बाबू ने कुमारी से पूछा—"चंपा के ज़ेवर कहाँ हैं?"

कुमारी ने बतला दिया। भवानी बाबू ने ताले तोड़कर हज़ारों के ज़ेवर निकालकर आनंद का ही अनुभव किया, और मन-ही-मन कहा—"चलो, इतना तो लाभ हुआ। दस-पंद्रह हज़ार का यह माल दूसरे के हाथ में था।"

अवसर और लाभ

सुअवसर हो या कुअवसर, बुद्धिमान व्यक्ति उससे लाभ उठाने की चेष्टा करता है। तुलसीदास जी को पिशाच मिला तो, उन्होंने उस भयानक पिशाच से अपने अराध्यदव राम के दशन करने का रास्ता खोज निकाला। यही है अवसर से लाभ उठाना।

भवानी बाबू भी इस चिंता में लगे कि चंपा के हांन-गुनाह में फँस जाने से कैसे लाभ उठाया जाय। पहले तो उन्होंने उस अभागी का सारा माल हथिया लिया। सोच-विचार कर वह करीम साहब के यहाँ रात को पहुँचे। करीम साहब ने जब सुना कि भवानी बाबू पधार रहे हैं, तो सिर स पैर तक वह जल उठे, किंतु दिखाऊ भद्रता का घनघोर परिचय दिया—चाय, नाश्ते तक की व्यवस्था की गई। भवानी बाबू का उत्साह बढ़ा, तो उन्होंने अपनापन दिखलाते हुए कहा—"साहब बार-बार मुझसे पूछा करते हैं कि मि० करीम कैसा काम कर रहे हैं। मैं क्या बतलाऊँ उन्हें। सारा शहर आज आपका नाम ले रहा है।"

करीम साहब विनय-पूर्वक बोले—"यह तो साहब की और आपकी मुझ नाचीज़ पर मेहरवानी है। काम क्या करता हूँ जनाब, अपनी डिउटी को किसी तरह अंजाम देता हूँ।"

भवानी बाबू बोले—"इस बार एस्० पी० के लिये आपका नाम गया है। साहब मेरे आगे फ़ाइल खिसकाकर कहने लगे—यह तो तुम्हारे दोस्त हैं, जैसा कहो।"

मैंने ज़ोर देकर कहा—"अगर करीम साहब जैसे दो-चार ऑफ़िसर भा पुलिस-विभाग में हों, तो सारा कलंक ही धुल जाय।"

इतना कहकर भवानी बाबू करीम साहब के डरावने चेहरे की ओर देखने लगे—वह यह भाँपना चाहते थे कि इन बातों का कैसा असर पड़ा। करीम साहब ने न तो खुशी ज़ाहिर की, और न उदास ही नज़र आए। भवानी बाबू ने सोच-समझकर तीर मारा था, मगर उन्हें ऐसा लगा कि वार खाली गया।

करीम साहब के गंभीर रुख ने भवानी बाबू को आगे बढ़ने से रोका, आगे बातचीत से भी रोका। वह बिदा हो गए।

दूसरे दिन करीम साहब के यहाँ साहब का फ़ोन आया। साहब बोल रहे थे। उन्होंने कहा—"आप जानते ही हैं कि भवानी मेरे छोटे भाई की तरह हैं। इससे ज्यादा मैं क्या कहूँ।"

करीम साहब ने जवाब में कहा—"हुज़ूर, मैं उनकी इज्ज़त करता हूँ।"

बात यहीं समाप्त हो गई। संध्या-समय भवानी बाबू फिर आए। करीम साहब ने पूर्ववत् उनका स्वागत-सत्कार किया। आज भवानी बाबू नया बल प्राप्त करके आए थे। बातों-ही-बातों में उन्होंने कहना शुरू किया—"चंपा मेरी बहन है। यह तो आपको मालूम ही होगा।"

करीम साहब बोले—"हुज़ूर, सब मालूम है।"

भवानी बाबू बोले—"उसे सज़ा देने की ताक़त किसी भी मैजिस्ट्रेट या जज में नहीं है। वह तो छूटेगी ही, मगर एक बात मैं आपसे कहना चाहता हूँ।"

अपना ग़ुस्सा रोककर करीम साहब ने पूछा—"वह कौन-सी बात है?"

भवानी बाबू ने कहा—"अभी मामले की जाँच आप कर रहे हैं ?"

करीम साहब बोले—"जी हाँ, कर तो रहा हूँ ।"

भवानी बाबू ने कहना शुरू किया—"ज्ञानदेव लखपति आदमी है । अगर उसकी औरत को इस मुकदमे में फँसाया जाय, तो दस-बीस हज़ार की रकम तो अनायास ही आपकी मेज़ पर आ जायगी ।"

अब करीम साहब का धीरज छूट गया । क्रोध से वह उबल रहे थे, मगर फिर भी शांत बने रहे, और बोले—"तो मुझे क्या करना चाहिए ?"

उत्साहित होकर भवानी बाबू बोले—"चंपा फँस ही नहीं सकती यह आप जानते ही हैं । आपकी सारी कोशिश अकारथ जायगी तो क्या बुरा है कि कुछ काम ही बना लिया जाय ।"

करीम साहब होंठ चबा रहे थे । उन्होंने शांत स्वर में पूछा—"तो आप यही चाहते हैं न कि मैं ज्ञानदेव साहब की बेगुनाह बीबी को केस में फँसा दूँ ? इस तरह पैसे कमाऊँ ?"

भवानी बाबू का ध्यान बेगुनाह शब्द पर नहीं गया । उन्होंने धीरे से कहा—"यह तो साफ़ बात है । लीला को ज्ञानदेव प्यार करता था । उसकी औरत पद्मा को यह बात मालूम हो गई । उसने लीला को ज़हर देकर दुनिया से हटा देना चाहा । यह क़िस्सा ऐसा है कि कोई अविश्वास नहीं कर सकता ।"

करीम साहब ने कहा—"और लीला का बयान ? चंपा का बयान ?"

भवानी बाबू ने कहा—"बयान बदलवा देना मेरे बाएँ हाथ का खेल है ।"

करीम साहब ने कहा—"आप इतना नीचे उतर आएँगे, यह मुझे मालूम न थी भवानी बाबू ।"

इतना कहकर करीम साहब ने घंटी बजाई । छः फ़ुट का एक जवान आकर, अटेंशन में सलाम ठोंक कर खड़ा हो गया । करीम

साहब ने हुक्म दिया—"इन साहब को गर्दन पकड़कर बाहर निकाल दो ।"

भवानी बाबू सन्नाटे में आ गए, और बोले—"देखिए जनाब, इसका नतीजा खराब होगा ।"

करीम साहब गरजकर बोले—"निकालो, मुँह क्या ताक रहे हो ।"

लपककर उस अर्दली ने भवानी बाबू की गर्दन पकड़ी, और एक ही झटके में कमरे के बाहर पहुँचा दिया ।

जिस नाटक को भवानी बाबू ने बड़ी आशा से आरंभ किया था, वह न केवल दु:खांत ही हुआ, बल्कि अपमानजनक भी सिद्ध हुआ ।

लीला, जो अस्पताल में पड़ी थी, प्रत्येक क्षण क्षीण होती जा रही थी । एक सप्ताह बीत चुका था । डॉक्टरों ने आशा छोड़ दी थी । ज्ञानदेव और पद्मा की खोज वह बराबर करती थी । दोनों में से कोई-न-कोई वहाँ मौजूद रहता था । जॉर्ज साहब की हालत पागलों-जैसी थी । रानी तो अधमरी हो गई थी । वह लीला के सिरहाने बैठी बिलखती रहती थी, और जॉर्ज साहब चुप थे—बिलकुल मौन ।

सीमा पार कर लेने के बाद दु:ख भी अनिर्वचनीय बन जाता है, जिसे न तो वाणी से प्रकट किया जा सकता है, और न आँसुओं से बाहर उलीचा ही जा सकता है ।

ज्ञानदेव ने जॉर्ज साहब को साहस दे रक्खा था । वह बार-बार पूछते—"क्या होगा ज्ञान बाबू ?"

दो शब्दों के इस भयानक सवाल का जवाब न तो ज्ञान के पास था, और न डॉक्टरों के पास ।

संध्या-समय लीला ने पद्मा से कहा—"बहन, आज तुम यहीं रहो, और भैया से भी कहो कि कहीं न जायँ ।"

ज्ञानदेव बोला—"हम यहीं हैं । चिंता मत करो बहन ।"

दोनो रह गए । पद्मा ने कहा—"आज ही लीला बिदा होगी क्या ? मुझे तो कुछ ऐसा ही लगता है । डॉक्टर क्या कहते हैं ?"

ज्ञानदेव बोला—"डॉक्टर कहते हैं कि दीपक का तेल शेष हो गया है। बत्ती जल रही है, वह भी कब तक जलेगी। बड़ा भयानक विष था—आह !"

सिविल-सर्जन ने आकर लीला की जाँच की, और पूछा—"आप और कुछ बयान देना चाहती हैं, तो मैं मैजिस्ट्रेट को खबर दे दूँ।"

लीला ने कहा—"हाँ, आप खबर दे दीजिए।"

थोड़ी देर में मैजिस्ट्रेट आ गए। लीला ने कहा—"अभी मैं ठीक हूँ। मैंने जो बयान दिया है, वह सही है। एक बात केवल यही कहना भूल गई थी कि चंपा के प्रति मेरे हृदय में ज़रा-सी भी कटुता नहीं है। वह बेचारी जिस वातावरण में पाली-पोसी गई, उसी का यह दोष है। चंपा एक नेक औरत है, किंतु उसने अपने को पैसों के चरणों पर न्योछावर कर दिया। जो पैसों का ग़ुलाम हो जाता है, वह जो भी न कर डाले। कानून उसे भले ही क्षमा न करे, किंतु भगवान् के सामने जाकर मैं कहूँगी कि मैंने उसे क्षमा-दान दिया है, आप भी क्षमा कर दीजिए—बस यही मुझे कहना था।"

मैजिस्ट्रेट की आँखें भी भर आईं। वह बोले—"आप विश्वास रखिए, हम ऐसा प्रयत्न करेंगे कि सचाई क्या है, यह न्याय को समझने का पूरा अवसर मिले।"

मैजिस्ट्रेट ने कमरे के बाहर जाकर ज्ञानदेव से कहा—"आज मेरा पुण्य जागा है कि ऐसी देवी के दर्शन करने का मौका मिला। जो अपने जीवन से बढ़कर क्षमा का आदर करती है, वह वंदनीय है।"

लीला ने पद्मा को अपने निकट बुलाया, और कहा—"दीदी, मेरे सेफ़ में बहुत रुपए पड़े हैं। आप बाबा से कहिए कि वे ....।"

लीला एकाएक चुप हो गई। उसे उबकाई आई, और मुंह से बहुत-सा ताज़ा खून गिरा। डॉक्टर, जो वहीं मौजूद थे, उसके हृदय की गति देखने लगे। ज्ञानदेव, पद्मा, जॉर्ज साहब, सभी लीला पर झुक गए जो, यहाँ से बिदा हो चुकी थी।

अपनी जीवितावस्था में लीला जितनी सुंदर दिखलाई पड़ती थी, मृतावस्था में वह उससे कहीं अधिक सलोनी नज़र आती थी। उसके चेहरे पर तोष और अशेष शांति का प्रकाश झलमला रहा था।

दिन बीत जाता है, रात बीत जाती है, सप्ताह के बाद मास आता है, और फिर दीवार पर का कलैंडर पुराना हो जाता है। जो कलैंडर वर्त्तमान का साक्षी था, वह अतीत का मूक गवाह बनकर रह जाता है। लीला भी अतीत की कहानी बन गई। अब उसकी याद ही शेष थी, और उसका नाम बार-बार मुकदमे में ही लिया जा रहा था, और कहीं नहीं।

भवानी बाबू ने यह कहना आरंभ किया कि "चंपा ने भयानक पाप किया है। वह सदा न्याय का ही साथ देते आए हैं, अन्याय का नहीं। जो पापी है, कुकर्मी है, उससे नाता कैसा।"

वह जहाँ भी जाते, इसी तरह की बात कहते फिरते। एक दिन जब वह जेल में चंपा से मुलाकात करने गए, तो चंपा ने कहा—"यह मेरा भाई मेरे विनाश का कारण है। इसी ने मुझे उत्साहित किया था कि जैसे भी हो लक्ष्य की सिद्धि तो होनी ही चाहिए। मैं नादान अपने भाई के उत्साह-दान से पाप करने को तैयार हो गई। आज वह क्यों आया है मुझसे मुलाकात करने। मैं उसकी शकल भी देखना नहीं चाहती।"

इसके बाद से ही भवानी बाबू ने अपना प्रचार आरंभ कर दिया। एक खतरा और भी था। चंपा के ज़ेवर और नकदी वह हड़प चुके थे। यदि चंपा जेल से छुटकारा पा जाती, तो खाई हुई चीज़ों को उगल देना पड़ता। भवानी बाबू इस प्रयत्न में लगे कि किसी भी उपाय से हो, चंपा फाँसी पा जाय, या यावज्जीवन जेल में ही पड़ी रहे। अब वह इतनी बदनाम हो गई थी कि उससे भवानी बाबू लाभ उठा नहीं सकते थे, फिर चंपा को जेल से छुड़ाकर वह उसका

नया युग कहता है कि जिसका तुम मनचाहा उपयोग कर सको, उसी का सम्मान करो, उसी की रक्षा करो, उसी के हित की बात सोचो। जिसका तुम जी भरकर उपयोग न कर सको, वह चाहे तुम्हारा देश ही क्यों न हो, जहन्नुम की आग में झोंक देने में आगा-पीछा मत सोचो। आज के नए मानव के सामने उसका उल्लू रहता है, जिसे वह हर उपाय से सीधा करना चाहता है। इसी का नाम है उल्लू सीधा करना। उल्लू वह होता है, जिसे नया मानव उल्लू बनाता है। जो आसानी से उल्लू बनाया जा सकता है, उसी को नया मानव प्यार करता है।

भवानी बाबू नए युग के महामानव थे। वह जनता और सरकार, दोनो के विश्वासपात्र और प्रिय थे, तो इसमें संदेह कहाँ है।

भवानी बाबू ने सोचा, उनकी बहन चंपा इतना बदनाम हो चुकी है कि अब उसका उपयोग वह किसी भी हालत में नहीं कर सकते। वह बदनामी, जो छिपा-छिपी होती है, आज के नए युग के लिये गुण है। दिन के प्रकाश में यदि मुँह काला करके निकलना पड़े, तो ज़रूर बुरी बात है—बिजली की रोशनी में रात को मुँह पर ही क्यों, सारे शरीर में भी कालिख पोतना कोई दोष नहीं है।

चंपा दिन के प्रकाश में बदनाम हो चुकी थी, अतः उसका बाज़ार-भाव बहुत गिर गया था—लोग कहते कि यह औरत खूनी है, खतरनाक है। भवानी बाबू ने कितनी गोदें सूनी की थीं, कितनों के सुहाग में आग लगाई थी, कितने घरों का चिराग़ गुल किया था, उसका कोई गवाह न था। जिस तरह कभी यज्ञ में अंधाधुंध पशु-हत्या पुण्य माना जाता था, उसी तरह आज राजनीति में अंधाधुंध नर-हत्या सफलता मानी जाती है—यह नए युग का नारा है।

भवानी बाबू नए युग के अग्रदूत थे, और उनका प्रत्येक काम नए युग की प्रतिष्ठा बढ़ानेवाला ही होता था। फिर लज्जा क्यों, और शिकायत कैसी। भवानी बाबू ने सर्वत्र प्रचार कर दिया कि चंपा

के पाप-पूर्ण कृत्य को वह बहुत ही बुरा समझते हैं। पापी के प्रति दया दिखलाना तो चाहिए, किंतु पापी का साथ देना तो बहुत ही बुरी बात है। न्याय की प्रतिष्ठा का भी सवाल था। भवानी बाबू यह कैसे पसंद करते कि उनके कारण न्याय की प्रतिष्ठा पर ठेस लगे। सत्य और न्याय का आश्रय ग्रहण करके भवानी बाबू सर्वत्र विचरण कर रहे थे, और यही कहते फिरते थे कि "चाहे मेरा सब कुछ समाप्त हो जाय, किंतु मैं सत्य और न्याय की रक्षा करूँगा, और ज़रूर करूँगा"।

सत्य और न्याय का आश्रय ग्रहण करनेवाले भवानी बाबू ने यह भी सोच लिया था कि चंपा यदि छूट गई, तो वह अपना रकम वापिस करने के लिये ज़रूर ऊधम मचाएगी, अतः सत्य और न्याय की दुहाई देकर उसे रसातल में ढकेल देना ही अधिक उपयुक्त होगा, और उन्होंने यही किया भी।

जज के यहाँ चंपा ने अपना बयान दिया। उसने साफ़ शब्दों में यह स्वीकार कर लिया कि "वह अपने भाई की प्रेरणा से पद्मा को ज़हर देना चाहती थी, किंतु यह धोखा हुआ, जो एक निरपराधिनी की जान चली गई।" उसने यह भी कहा कि "मुझे मेरे भाई यहाँ से वहाँ दलाली के काम से भेजते ही रहते थे। मैं अपने जीवन से तंग आ गई थी, और चाहती थी कि ज्ञानदेव से विवाह करके कहीं स्थिर हो जाऊँ, किंतु पद्मसंभवा देवी बाधा थी। भाई की नीति कुछ दूसरी थी। उन्होंने यही कहा कि पहले तो पद्मा का अंत करो, और ज्ञानदेव को अपनी मुट्ठी में करके उसका भी अंत कर दो। ज्ञानदेव एक संपत्तिशाली व्यक्ति है, और इस उपाय से मेरे भाई उसकी संपत्ति को हथियाना चाहते थे। योजना यह थी। मैं पद्मा को तो समाप्त करना चाहती थी, किंतु ज्ञानदेव को नहीं, क्योंकि मैं अपने वर्तमान जीवन से छुटकारा पाकर कहीं टिक जाने को अत्यंत उत्सुक थी।"

:

इतना बयान देकर चंपा रोने लगी। ज्ञानदेव, जो कोर्ट में बैठा था, सन्नाटे में आ गया। पद्मा भी निकट ही बैठी थी। ज्ञानदेव ने पद्मा की ओर देखा, और पद्मा ने ज्ञानदेव की ओर। जो-जो अदालत के कमरे में थे, वे सभी ज्ञान और पद्मा को देखने लगे।

अंत में चंपा ने उत्तेजित होकर कहा—"आप मुझे फाँसी की सज़ा दीजिए, नहीं तो जेल से छूटते ही मैं आत्महत्या कर लूँगी। मेरा जीवन भार बन गया है।"

इतना कहकर वह चुप हो गई।

उसी संध्या को शहर के सभी पत्र-प्रतिनिधियों को अपने यहाँ बुलाकर भवानी बाबू ने इस शान से खिलाया-पिलाया कि वे वाह-वाह करते अपने-अपने घर लौटे।

ज़ाहिर था कि चंपा का ज़हरीला बयान किसी भी पत्र में नहीं छपा। उसकी तेज़ आवाज़ अदालत के कमरे में ही गूँजकर शून्य में विलीन हो गई। अदालत की पथरीली दीवारों में ऐसे-ऐसे बयानों को पचा जाने की असीम शक्ति होती है—न्याय तो सदा से मूक रहता है, वह बोलता नहीं, काम करता है।

पद्मा का भी बयान लिया गया।

एक दिन ज्ञानदेव के साथ ही पद्मा भी चंपा से मुलाकात करने जेल में गई। जेल-सुपरिन्टेंडेंट के कमरे में चंपा आई। वह बहुत प्रसन्न थी। उसने आते ही पद्मा से कहा—"पद्मा, आप बच गईं, इसका मुझे आनंद है। मैं चाहती थी कि आपको समाप्त करके ज्ञानदेव को अपना लूँ, पर यह न हो सका।"

पद्मा ने कहा—"बहन, उस बात को भूल जाओ। अपने पाप और पुण्य सबको भगवान् के चरणों पर न्योछावर करके मन को हल्का कर लो। यह सब तो संसार में होता है, कोई नई बात नहीं है बहन।"

चंपा ने कहा—"तुम मुझे क्षमा करती हो दीदी ?"

पद्मा बोली—"पगली, इसमें तुम्हारा अपराध ही क्या है ? अपना हित सभी को प्रिय होता है, सभी अपने को सुखी देखना चाहते हैं। अब रही तरीके की बात, सो बहन, यह तो संग-दोष है। तुमने जिस वातावरण में अपने आपको रक्खा, उसी का यह दोष है, जो आज जीवन-मरण के बीच में झूल रही हो।"

चंपा ने सिर झुका लिया, वह रोने लगी। चंपा हज़ारों बार रोई थी, किंतु उसका उस दिन का रोना बहुत ही पवित्र था। ज्यों-ज्यों उसके आँसू गिरते जाते, त्यों-त्यों वह अपने को प्राप्त करती जाती। धोखा देने के लिये आँखें रोती हैं, और भीतर का मल धोने के लिये हृदय रोता है। उस दिन चंपा का हृदय रो रहा था, आँखें तो रोना भूल ही गई थीं। जब फिर चंपा अपनी छोटी कोठरी में लौट आई, तो उसे ऐसा बोध हुआ कि उसके अंतर-बाहर प्रकाश-सा फैल रहा है। वह पूर्ण सुखी थी।

अनिश्चितता ही मानसिक शांति की जड़ को हिलाया करती है—इस पार या उस पार, कहीं भी पहुँचकर मानव स्थिर ही हो जाता है। चंपा ने यह मान लिया था कि उसे ज़रूर फाँसी होगी। लेडी डॉक्टर का बुरा हाल था। वह बुढ़िया हृदय के रोग से अधमरी जेल के अस्पताल में पड़ी थी।

चंपा ने उस दिन खूब रुचि के साथ भोजन किया, और काग़ज़-कलम माँगकर कई पत्र भी लिख डाले। वह सबसे क्षमा-याचना कर रही थी।

एक सप्ताह के बाद चंपा को उस कोठरी में रख दिया गया, जिसमें फाँसी के कैदी फाँसी के पहले रक्खे जाते थे। चंपा ने सोचा—अब वह लक्ष्य के निकट पहुँच रही है। एक-एक दिन का विलंब उसे असह्य था। वह मरने के लिये व्यग्र थी, क्योंकि जीवन का भयानक स्वरूप वह देख चुकी थी, उस जीवन का, जिसे उसने प्रगतिशील जीवन समझकर अपनाया था, और जिस जीवन का नाता मानवता से बिलकुल ही नहीं है, और शैतान जिसका रक्षक माना गया है।

फाँसीवाली कोठरी में पहुँचकर चंपा ने उसकी काली धुँधली दीवारों को देखा—एक बार वह काँप उठी, किंतु फिर स्थिर हो गई। उस कोठरी का वातावरण कितने मरनेवालों की गरम आहों से उत्तप्त था, इसका इतिहास कौन बतलावे।

कैदी वहाँ कुछ दिनों तक रहते थे, उँगलियों पर अपनी साँसों को गिनते थे, और एक दिन पिछली रात को वे वहाँ से सदा के लिये बिदा हो जाते थे, फिर लौटकर नहीं आते थे।

उस कोठरी की दीवारों पर तरह-तरह के चिन्ह भी नजर आते थे, और कुछ अस्पष्ट शब्द भी। चंपा ने पढ़ा, एक जगह लिखा था—"प्रायश्चित्त करने से होता है, कराने से नहीं। मुझे फाँसी क्यों देते हैं। क्यों देते हैं। यह तो दंड हुआ—खून का बदला खून. प्रायश्चित्त नहीं।"

दूसरी जगह लिखा था—"जगरूप, मरकर फिर तुझे मारूँगा। नरक में तो मुलाकात होगी ही।"

तीसरी जगह चंपा ने पढ़ा—"प्यार किया, यह तो मैंने सही किया, किंतु प्यार पाने के लिये जो छुरा चलाया, यही ग़लती हो गई।"

चौथी जगह किसी ने लिखा था—"जो मुझे फाँसी पर लटकाएगा, भूत बनकर मैं मारूँगा। यह मेरा प्रण है, दृढ़ निश्चय है।"

चंपा खिलखिला कर हँस पड़ी, और बोली—"हे मरनेवाले भाई, तुम तो मरने के पहले ही भूत बन चुके थे, फिर भूत बनने की लालसा क्यों?"

एक-एक दिन करके छः मास बीत गए। नित्य चंपा पूछती कि "मुझे कब फाँसी दी जायगी। बहुत विलंब हुआ।"

जेलर इस सवाल से घबरा उठता। उसने एक दिन पूछा—आप फाँसी को कोई खूबसूरत चीज़ समझती हैं क्या?"

चंपा बोली—संसार में कोई भी वस्तु निश्चित रूप से असुंदर या कुरूप नहीं होती। समय के परिवर्तन के अनुसार रूप और गुण में

भेद पैदा होता रह ... जगह पर पहुँच जायँ, और आपका जीवन ... क बन जाय, तो अपने को सुखी रखने के लि ... ग को ही पसंद कीजिएगा।

जेलर छटपटा उठा, भाग गया। चंपा ने हँसकर कहा—"भागते हो जी, मौत से भी कोई भागकर बच सकता है। तेज़ दौड़नेवाला हिरन भी मरता है, और धीरे-धीरे खिसकनेवाला घोंघा भी।"

चंपा बहुत देर तक हँसती रही।

धीरे-धीरे वह समय आ गया, जब चंपा को इस दुनिया से बिदा होना था। जेल-सुपरिंटेंडेंट ने आकर कहा—"आप किससे मुलाकात करना चाहती हैं?"

चंपा बोली—"आप मेरे भैया को बुला दीजिए।"

दूसरे दिन भवानी बाबू आए। उन्होंने बहुत प्रयास करके अपने चेहरे को उदास बनाया था। किसी के दुःख से दुःखी होने की आदत न थी। हाँ, किसी को सुखी देखकर दुःखी होना नए युग का नियम है।

भवानी बाबू आए, और चंपा भी आई। वह मुस्किराती हुई आई, और भवानी बाबू के सामने आकर खड़ी हो गई। एक क्षण स्थिर आँखों से अपने भाई को चंपा देखती रही। इसके बाद उसने पूरा ज़ोर लगाकर उनके चेहरे पर थूक दिया।